लघु शक्तिस्तोत्रकाव्यों का साहित्यक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोधकर्त्री :

कु० हृदयावती कुमारी

निर्देशक

प्रो० चण्डिका प्रसाद शुक्ल

पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

1992

प्राक्कथन

आज मैं एक अजीब सी प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ क्योंकि ऐसा लगता है कि आज मेरी वर्षों की साधना पूर्ण हो गयी है । इस शोध-प्रबन्ध के रूप में मेरे मन की अभिलाषा ने एक साकार रूप धारण कर लिया ।

परास्नातक के उत्तरार्ध के बाद शोध के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर शोध करने का मैंने निर्णय लिया । भगवती की कृपा से और गुरु डा0 हरिशंकर त्रिपाठी जी की प्रेरणा से 'लघु शक्ति स्तोत्रकाव्यों का साहित्यिक अध्ययन' विषय जून 1988 में निर्धारित हो गया तथा गुरुवर्य प्रो0 शुक्ल ने इसके लिये मुझे सहमति दे दी । मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा मेरी आराध्या भगवती के अनुग्रह से ही हुआ है ।

संस्कृत साहित्य की समृद्धि दर्शाने हेतु संस्कृत सृजन को प्रकाश में लाने के लिए संस्कृत साहित्यकारों और उनकी कृतियों का शोध करना अत्यन्त आवश्यक है । संस्कृत साहित्य के अवलोकन से ज्ञात हो जाता है कि इस देश में संस्कृत भाषा के माध्यम से अनेक साहित्यकारों ने महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य आदि काव्यों का सृजन किया । गीति काव्य विधा के कुछ ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनमें देवताओं की स्तुतियाँ हुयीं हैं, ये स्तोत्रकाव्य कहे जाते हैं । इन स्तुतियों में शक्ति {देवी} से सम्बन्धित स्तोत्र हैं तथा जिनमें चरित्र वर्णन नहीं है वे लघुशक्तिस्तोत्र काव्य कहे जाते हैं ।

मानव ने अपने को असहाय पाकर शक्ति की कल्पना की और यह ऋग्वैदिक काल से अब तक समाज में अपने विभिन्न नामों से पूजी जाती है ।

शक्ति के तन्त्र, बौद्ध, जैन इत्यादि साहित्यों में विविध रूप हैं । गंगा, यमुना, सरयू इत्यादि नदियों की भी शक्ति के रूप में पूजा की गयी है । पुराणों में तथा अन्यान्य स्थलों पर विभिन्न प्रकार के शक्तिस्तोत्र हैं । इन स्तोत्रों में शक्ति के अवदान हैं । इनमें मुख्य सामग्री देवविषयक स्तुतियाँ हैं । इन स्तुतियों के भी क्रमश: परवर्तीकाल में विभिन्न प्रकार एवं शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें देवीविषयक वर्णन के अतिरिक्त स्तुतिकर्त्ता के अनेकानेक सिद्धान्तों का भी समायोजन प्राप्त होता है । अत: इन स्तुतियों की सीमा मात्र तत्-तत् देवियों का पाठ करना ही नहीं अपितु ये स्तुतियाँ विभिन्न दृष्टियों से गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं ।

विषय के विस्तृत होने के कारण साहित्यिक अध्ययन के लिये मन्द - स्मितशतक, कटाक्षशतक, लक्ष्मीलहरी, गंगालहरी और शंकराचार्यकृत सौन्दर्य - लहरी, देव्यपराधक्षमापन, भवान्यष्टक, कनकधारा, आनन्दलहरी इत्यादि स्तोत्रों को ही मैंने साहित्यिक अध्ययन का विषय बनाया है ।

दुर्भाग्यवश शक्ति स्तोत्रों पर विद्वानों का ध्यान नहीं गया इसलिये अनुसन्धान - सरणि में समस्त स्तोत्रों की तो बात छोड़ दें, प्रसिद्ध शक्ति - स्तोत्र ग्रन्थों का यथायोग्य साहित्यिक परिशीलन भी किसी ने नहीं किया । प्रो० शुक्ल ने इस ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया और एतदर्थ मैंने 'लघु शक्ति स्तोत्र काव्यों का साहित्यिक अध्ययन' शोध-विषय के रूप में ग्रहण किया । पुनश्च कालिदास सरीखे महाकवियों की कृतियों को शोध का विषय न बनाने का कारण इन महाकवियों की कृतियों पर हो चुके विशाल साहित्य का

निर्माण था । इन पर लिखना केवल नीरस पिष्ठपेषण मात्र ही सिद्ध होता है, इसलिये भी मेरे हृदय में उपरोक्त विषयों से थोड़ा हटकर नवीन अनुसंधान योग्य विषय शक्ति स्तोत्रों को ही शोध का विषय बनाने की इच्छा हुयी ।

मुझमे शोध की रूचि का उन्मेष मेरे माता-पिता की प्रेरणा के फलस्वरूप ही हुआ । उनका आशीर्वाद ही मेरा सम्बल है । जिनके प्रति मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है । उनको शब्दों द्वारा धन्यवाद देकर मैं उऋण नहीं हो सकती ।

शोध प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान कर तथा हर सम्भव सहायता प्रदान कर मेरे गुरूवर 'गुरूनाम गुरू' प्रो० चण्डिका प्रसाद शुक्ल जी ने जो उपकार किये हैं तथा उनकी धर्मपत्नी (माओ) जी ने जो प्यार प्रदान किया है उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना मुझ जैसे व्यक्ति से सम्भव नहीं है क्योंकि शब्दकोश में वे शब्द ही नहीं हैं । उनका सतत् आशीर्वाद ही मेरा सम्बल रहेगा साथ ही जिस उत्तरदायित्व, रूचि और स्नेह के समन्वय द्वारा शोध-प्रबन्ध को व्यवस्थित रूप दिया उसका प्रतिपादन मैं आजन्म नहीं कर सकती थी ।

मैं इस शोध-प्रबन्ध के लिये अतीत एवं वर्तमान के सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनकी विद्वतापूर्ण रचनायें मेरे लिये सहायक सिद्ध हुयी हैं । मैं केन्द्रीय गंगानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारियों विशेषकर प्राचार्य डा० गयाचरण त्रिपाठी जी की मैं आभारी हूँ जिन्होंने अपने पुस्तकालय में अध्ययन के लिये मुझे अनुमति दी । इसी विद्यापीठ के प्रतिष्ठित विद्वान

डा0 किशोर नाथ झा जी की मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ जिन्होंने विषय सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने में मेरी सहायता की ।

समय-समय पर प्रेरणा एवं सुझाव देने वाले अपने गुरूजनों एवं विद्वानों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा कर्त्तव्य है । विभाग के उन गुरूओं के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने विभागीय छात्रवृत्ति प्रदान कर मुझे इस शोध कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान किया । मुझे अनवार अहमद जी ने इस शोध-कार्य में विशेष रूप से प्रेरणा एवं सहयोग प्रदान किया है जिनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ । मैं अपने मित्रों में डा0 कपिलदेव मिश्रा, माया दूबे एवं संयुक्ता मुखर्जी को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे सुझाव एवं सहयोग दिया

टंकणकर्ता उमाशंकर पाल हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने शोध प्रबन्ध को टंकित करने में प्रमुख भूमिका निभायी तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिन लोगों ने शोध-प्रबन्ध में सहायता प्रदान की है उन समस्त जनों के प्रति हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता ज्ञापन मेरा परम धर्म है ।

शोध-कार्य के टंकण के सन्दर्भ में समस्त विद्वज्जनों से अनुरोध है कि इसमें पंचम वर्ण से संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया गया है । अतः अंक, व्यंजना, शृंगार आदि संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध शब्द विवशता की स्थिति में, इसी रूप में टंकित हुये हैं । अनुनासिक [ँ] के स्थान पर अनुस्वार से ही काम चलाया गया है । हिन्दी के अंकों

के स्थान पर अंग्रेजी के अंकों का ही प्रयोग किया गया है । इसका कारण टंकण मशीन में व्यवस्था का न होना है । इन त्रुटियों के लिये विद्वत्जनों से क्षमा चाहती हूँ ।

मेरा यह शोध-कार्य अपनी इष्टसिद्धि में सफल हो यही ईश्वर से मेरी अभ्यर्थना और इस शोध - कार्य के निर्णायक विद्वानों से मेरी प्रार्थना है ।

हृदयावती मिश्रा

दिनांक
25-10-1992

(हृदयावती मिश्रा)
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

पृष्ठ संख्या

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पृष्ठ संख्या

पंचम अध्याय

-: भूमिका :-

स्तोत्र साहित्य

अति प्राचीनकाल से ही संस्कृत वाङ्मय में आध्यात्मिकता किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है । इसका प्रमाण स्वयं कवियों द्वारा रचित उनके काव्य ही हैं, जिन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके इष्टदेवता कौन हैं और देवताओं के प्रति उनकी कितनी प्रगाढ़ निष्ठा है । प्रारम्भ में तो संस्कृत के इन कवियों की आध्यात्मिकता काव्यों के मंगला - चरण तक ही सीमित रहा, परन्तु बाद में इस परम्परा का विकास अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया और मात्र स्तुतिपरक गीतिकाव्यों की रचना होने लगी जिन्हें स्तोत्रों की संज्ञा से अभिहित किया गया । धीरे -धीरे स्तोत्र साहित्य इतना समृद्ध हो गया कि काव्य के अन्य भेदों की भाँति स्तोत्र काव्य की रचना की जाने लगी । स्तोत्रों की रचनाओं में जीवन के विविध - यातनाओं से मुक्ति प्राप्ति के लिये, कवियों ने अर्चन, वन्दन इत्यादि विविध प्रकार के भावों का समावेश किया । मानव जीवन की विविध जटिल समस्याओं के समाधानार्थ लिखे जाने के कारण ही ये स्तोत्र ग्रन्थ जनमानस में सर्वाधिक महत्व प्राप्त किये । कवियों ने स्तोत्रों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया कि जो कोई भी स्वाभाविक रीति से स्तुति करेगा वह निश्चित रूप से अपने इष्टदेव का साक्षात् करेगा ।

'स्तोत्र' शब्द का अर्थ स्तुति है - स्तूयतेऽनेनेति - स्तु धातु से करणार्थक 'ष्ट्रन' प्रत्ययान्त यह स्तोत्र पद स्तुतिपरक-प्रशंसापरक वचन एवं गीति से सम्बन्ध रखता है । इन स्तुतियों का भक्ति भावनापूर्ण तथा अतिशयोक्ति-पूर्ण होना स्वाभाविक ही है , क्योंकि भक्त अपने आराध्य की महिमा से अभिभूत होकर उसे ही सबसे बड़ा समझता है । इस प्रकार इन स्तुतियों में भक्त अपनी भावना को तो अतिशयोक्ति रूप में व्यक्त करता ही है । उस आराध्य के रूप में माधुर्य एवं उसके अवदानों { कार्यों एवं लीलाओं } की बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर वर्णित करना एवं अपने इष्टदेव को सर्वोच्च देव एवं देवाधिदेव के रूप में प्रतिष्ठित करना उसका स्वभाव हो जाता है । इन स्तुतियों में भक्त का भावनापरक - सम्बन्ध इष्ट का गुणानुकीर्तन रूप में दृष्टि - गत होता है ।

इस तरह ये स्तोत्र भावपरक एवं ज्ञानपरक इन दो रूपों में प्राप्त होते हैं । भाव परक स्तोत्र वे हैं जहाँ भक्त अपनी समस्त अहंता एवं ममता प्रभुचरणों में समर्पित करके, सृष्टि विकासादि को उसकी लीला समझता हुआ उनसे अभीष्ट रागात्मक सम्बन्ध को स्थापित करके उनके साथ तादात्म्य का अनुभव करके उनके प्रति अपनी अकिंचनता एवं दैन्यप्रधान वाङ्मयी आराधना करता है ।

ज्ञानपरक स्तोत्रों में भक्त अपने आराध्य को सर्वोच्च देव रूप में समझता हुआ उनके सृष्टि-लीला-आदि अनेकानेक अलौकिक कार्यों तथा

उसके निर्गुण एवं सगुण रूप का वर्णन करता है ।

इन स्तोत्रों में भक्त के सभी भावों का पर्यवसान अन्तत: भक्ति में होता है एवं ग्रन्थ भक्त एवं भक्तिरस की साकार प्रतिमा रूप में ही उपस्थित होते हैं । वस्तुत: तो भक्त इनमें कहीं इष्टदेव की वीरता का वर्णन करता है, कहीं उनकी श्रृंगारलीला नख-शिख वर्णन करने में ही अपनी लेखनी को कृतार्थ करता है । कहीं उनके अद्भुत एवं अलौकिक स्वरूप तथा अवदान को अपने विवेचन का विषय बनाता है । पुराण प्रसिद्ध चरित तो इन स्तोत्रों में मात्र संकेतित होता है, किन्तु इसी चरित को सम्बल बनाकर ही भक्त अपने अति - शयोक्तिरूप कल्पना वितान के माध्यम से उसे देवाधिदेव रूपी सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा देता है ।

इन स्तुतियों में हम भक्ति की अपेक्षा प्रपत्ति का महत्व अधिक पाते हैं, साथ ही इन स्तुतियों में प्रसाद का सिद्धान्त भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । भगवान के अनुग्रह से भक्त की कामना पुष्पित तथा फलित होती है । ब्रह्म सर्वकाम तथा सत्य संकल्प है । उसके प्रसाद से ही लोकोद्धार सम्भव है । यद्यपि रामायण एवं महाभारत में भी स्तुतियाँ प्राप्त होती है, किन्तु बहुत ही विरल रूप में । वैसे तो वैदिक काल से स्तोत्रों के प्रणयन की परम्परा प्रचलित थी किन्तु स्वतन्त्र रूप से नहीं ।

अत: समस्त स्तोत्र साहित्य का प्रारम्भ ही पुराणों से होता है । वैदिक त्रिदेवोपासना ही पुराणों में पंचदेवोपासना के रूप में विकसित हुई ।

स्तोत्रों में सकाम और निष्काम दोनों प्रकार की स्तुतियाँ पायी जाती हैं । सकाम स्तुतियाँ किसी कामना से प्रेरित होकर की गई है । स्तोत्र साहित्य के विवेचन में यह भी अवधेय है कि अधिकांशत: ये सकाम स्तुतियाँ सकाम है - भक्त इनका पाठ या स्तवन अपने इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये करता है । प्राय: समस्त स्तोत्रों में उनके पठन एवं श्रवण का स्वतन्त्र फल विधान किया गया है । स्तोत्रों के वर्ग कवच जैसे भेद रक्षात्मक हैं । इसी प्रकार उपदेशक स्तोत्र भी प्राप्त होते हैं, जिनमें तत्व का उपदेश सा किया गया है, तथा उनमें भगवत्प्राप्ति का उपदेशात्मक विवेचन है । इस प्रकर अधिकांश स्तोत्र उपदेशात्मक, रक्षात्मक तथा इष्टलाभात्मक रूप में सकाम ही है ।

वाचस्पत्यम् में 'स्तवे गुणकर्मादिभि: प्रशंसने अमर: ' कहकर स्तोत्रों को चतुर्विध निरूपित किया है ।[1]

स्तुति काव्य के स्वरूप और उसके तत्व :-

आप्टे ने रघुवंश के 'स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते' उद्धरण को प्रस्तुत कर प्रशंसापरक सूक्त अथवा गुणकीर्तन को स्तुति कहा है ।[2] स्तुति की उत्पत्ति हृदय से होती है । भक्त हृदय स्वतन्त्रतापूर्वक अपने भावों

1- द्रव्यस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं विधिस्तोत्रं तथैव च ।
तथैवाभिजनस्तोत्रं, स्तोत्रमेतत् चतुष्टयम् ।।

2- संस्कृत - हिन्दी कोश, पृ0 1136

को इष्टदेव के सम्मुख प्रस्तुत करता है । हृदय बिना आवरण के ही मुक्त रूप से अपनी वास्तविक स्थिति में उपस्थित हो जाता है । स्तोता की भाषा विशुद्ध मानव हृदय की भाषा होती है, जिस पर बुद्धि और उससे उत्पन्न प्रपंचों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । मधुर अनुभूतियाँ स्वत: ही मधुरम शब्दों में अभिव्यक्त होती जाती है । सावन में जिस प्रकर जीवनदायक बादलों की फुहार बीजों को अंकुरित कर देती है, उसी प्रकार हृदय की सघन अनुभूतियाँ मधुमय शब्दों में रससंचार करती हुई आराध्य के चरणों में स्वत: प्रस्तुत हो जाती है । तात्पर्य यह है कि स्तुतियाँ भगवान के चरण कमलों में आत्मसमपर्ण को तो अभिव्यक्त करती ही हैं साथ ही वे विभिन्न मन: स्थितियों को भी अभिव्यंजित कर देती हैं । अत: सुख और दु:ख की अनुभूति का प्रकाशन स्तुति साहित्य में स्वतन्त्ररूप से होता जाता है ।

भावातिरेक ही स्तुतिकाव्य का जीवन है । इसमें वस्तुतत्व तो गौण रहता है, पर भावतत्व की परिव्याप्ति मुख्य रूप से पायी जाती हैं । गेयता और हृदयोदगार सन्तुलित रूप में काव्य का सृजन करते हैं । 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्,'[1] 'रम्णीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्'[2] आदि काव्य के लक्षण स्तुति साहित्य में घटित होते हैं । तात्पर्य यह है कि विशिष्ट आनन्दानुभूति को

1- साहित्य दर्पण, 1/5
2- रस गंगाधर, 1/1

उत्पन्न करने वाले अर्थ की अभिव्यंजना स्तुति काव्य में पायी जाती है । भक्त का आत्मनिवेदन अपने में अनेक भावनाओं को समेटे रहता है । अतः वैयक्तिक अनुभूतियाँ एवं मर्मभेदी भाव वाणी के द्वारा स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होते हैं । हर्ष - विषाद, राग-द्वेष, संयोग - वियोग इत्यादि शाश्वत मनोवृत्तियाँ स्तुतिकाव्यों में भी प्रविष्ट रहती हैं । प्रायः समस्त अनुभूतियाँ आत्माभिव्यंजन प्रधान होती है, अतः जीवन तत्व की सघनता उनमें समाविष्ट रहती है । संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार ए0 बी0 कीथ ने स्तोत्रों को धार्मिक गीत या कविता कहा है । उन्होंने लिखा है "- - - - - परन्तुः स्वभावतः उच्चस्तर की कविता ने इस क्षेत्र को भी आक्रान्त कर लिया और दार्शनिकों द्वारा उन देवताओं के विषय में जिनकी वास्तविकता को व्यावहारिक दृष्टि से निषेध करते थे - स्तोत्र रचना में भाग लेने की प्रवृत्ति ने इस कला को और भी अधिक गरिमा प्रदान की ।[1]

दार्शनिक दृष्टि से स्तुति के अन्तः भाग में प्रवेश करने पर ज्ञात होता है कि मनुष्य को कर्म की प्रेरणा भाव केन्द्र से प्राप्त होती है । भावना ही उसे बाह्यगोचर पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्रियाशील बनाती है । प्रत्यक्ष पदार्थों के ज्ञान और प्रयोग के पश्चात उक्त भावना ही उसे अप्रत्यक्ष और अलौकिक तत्वों के खोज में प्रवृत्त करती है । प्राकृतिक पदार्थों के मूल में किसी अप्राकृतिक

1- ए हिस्ट्री आफ संस्कृत . लिटरेचर - पृ0 210 ।

एवं दिव्य विभूति का आभास प्राप्त कर मानव का भावकेन्द्र स्पन्दित होने लगता है और उसमें ज्ञान एवं भाव का पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो जाता है । ज्ञान से उस विभूति के प्रति आदर और पूज्य भाव की ओर पूज्य भाव से प्रेम की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार श्रद्धा और प्रेम से मनुष्य के मन हृदय में एक ऐसी संयुक्त भावना का सृजन होता है जिसे आराध्य के प्रति भक्ति अथवा उनके गुणों में अनुरक्ति की संज्ञा दी जा सकती है । अनुरक्ति अथवा भक्ति के आवेग से स्तुति काव्य का प्रादुर्भाव होता है । अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा को स्तुति कहा जाता है । स्तुति में भक्ति, श्रद्धा , अनुराग एवं आत्मनिवेदन की भावना का रहना परम आवश्यक है । मानवमन अपने को असमर्थ और हीन समझकर आराध्य के गुणों से प्रेरणा ग्रहण करता है । भगवान की उदारता और उनके प्रेम का स्पर्श पाकर भक्त निहाल हो जाता है । अत: स्तुति काव्यों में गीति-काव्य के प्राय: समस्त गुण पाये जाते हैं । जॉन ड्रिंकवाटर ने लिखा है - "जब हम गीति काव्य की बात कहते हैं तो हमारा उद्देश्य कवित्व शक्ति के इसी गुण से होता है और हम समझते हैं कि विशुद्ध कवित्व शक्ति की अभिव्यक्ति तथा गीतिकाव्य एक ही वस्तु है ।[1]

वस्तुत: स्तुतिकाव्य में आत्माभिव्यंजन उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और हृदय के विभिन्न भाव नादमाधुर्य से भावित होकर संगीत ध्वनि के रूप में अभिव्यक्त होते हैं । इस काव्य में अनुभूति की सघनता और औचित्य तो अपेक्षित

1- दी लिरिक, पृ0 29 ।

रहते ही हैं, कला का चमत्कार, पदलालित्य और शब्द तथा लय का सामंजस्य भी उसमें पाया जाता है ।[1] जब हम स्तुति काव्य के साथ गीतिकाव्य के तत्वों का अध्ययन करते रहते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि स्तुतिकाव्य गीतिकाव्य का ही एक रूप है । भावमयता कल्पना का पुट एवं श्रद्धा का चित्रण इस विधा में पूर्णतया पाया जाता है । आत्मनिष्ठता और वैयक्तिकता भी स्तुतिकाव्य में गीतिकाव्य के समान उपलब्ध हैं । संक्षेप में स्तुतिकाव्य में निम्नलिखित सात प्रमुख तत्व पाये जाते हैं - (1) आत्माभिव्यक्ति (2) भावसान्द्रता (3) भावान्विति (4) सहज अन्त: प्रेरणा (5) सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति (6) आराध्य के प्रति समर्पण की प्रवृत्ति (7) संगीतात्मकता ।

स्तोता अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को आराध्य के चरणों में रखकर अपने सुख - दु:ख का भार उसी पर छोड़ देता है । अतएव आत्मानुभूति की सबसे अधिक प्रबलता इस काव्यविधा में पायी जाती है । यह आत्मानुभूति जब स्वाभाविक स्वर में निजी सुख दु:ख की अभिव्यंजना के लिये प्रस्तुत होती है और आराध्य से सहायता की अपेक्षा करती है तब स्तुति काव्य का प्रादुर्भाव होता है । विषय और विषयी दोनों की प्रेरणा का अस्तित्व इस कोटि की काव्य रचना में रहता है । विश्वात्मा अथवा किसी विशेष आराध्य के प्रति आत्माभिव्यंजन की व्यापक प्रवृत्ति स्तुति या स्तोत्र को प्रादुर्भूत करती है । अत: स्तोत्र काव्य में भावों का सघनतम व्यापार गेयता या लयात्मकता के साथ अभिव्यक्त होता है ।

1- एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आँव इंगलिश लिटरेचर - पृ0 126 - 127 ।

स्तोत्र में भावसान्द्रता अवश्य रहती है । कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से आराध्य को भी भावात्मक बना देता है जिस प्रकार सांसारिक वस्तुएँ स्वयं जीवन का साध्य नहीं, साधन हैं, उसी प्रकार स्तुति - काव्य भी विषय अनुभूति का साधनमात्र है । जब भाव विगलित होकर आराध्य के गुणों का स्पर्श करता है तो अनुभूति सान्द्र होती जाती है । यही कारण है कि अनुभूति के अनुसार एक ही आराध्य के प्रति विभिन्न स्त्रोताओं की मानसिक प्रतिक्रियाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं । आराध्य के अनन्त गुण स्तोता को आनन्दविभोर बनाते हैं । वह नाम रूप अथवा गुणों के स्मरण चिन्तन अथवा भजन से विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ अर्जित करता है ।

स्तुति का विषय अत्यल्प होने के कारण इसमें अभिव्यक्त अनुभूति एक ही मूलभाव से अनुप्रमाणित रहती है और उसका केन्द्रविन्दु भी यही मूलभाव होता है, जिसका विश्लेषण और विस्तार स्तोता स्तुति के कलेवर में करता है । प्रारम्भ में स्तोता अपने किसी विशेष भाव को उपस्थित करता है । तत्पश्चात रागविस्तार, स्वर आलाप आदि साधनों से उसे व्यापक उत्कर्ष तक पहुँचाता है । वैसे तो स्तोता अपने आराध्य को अनेक रूपों में देखता है, कभी उसे आराध्य हर्षित और पुलकित मुद्रा में, कभी दुष्ट-संहारक और सज्जन-उद्धारक के रूप में परिलक्षित होता है । आराध्य के अनेक रूप अवश्य होते हैं परन्तु उनका मूल केन्द्र कोई एक ही भाव रहता है । जब सुख दुःख की अनुभूति तीव्रतम होती जाती है,

तब स्तुतिकाव्य स्वत: नि:सृत होता है । इस प्रकार एक ही भावानुभूति से ओत प्रोत होने के कारण उसमें स्वत: पूर्णता एवं संवेदयता समाविष्ट हो जाती है । आराध्य की आधारभूमि पर अंकुरित होकर तथा उससे रसग्रहण करके भी वह भाव के उन्मुक्त वातावरण में विकसित हो अपने मधुर सौरभ को प्रसारित करता है । अत: स्पष्ट है कि भाव की अन्विति स्तुतिकाव्य में अपना प्रमुख वैशिष्ट्य रखती है । वैसे तो इस काव्य में अनेक रस रह सकते हैं, परन्तु प्रधानत: किसी एक रस का ही अस्तित्व पाया जाता है । अत: स्तुति काव्य में भावान्विति नामक तत्व व्याप्त रहता है ।

काव्य की प्रत्येक विधा का जन्म ही अन्त: प्रेरणा से होता है । उसमें विषय का आधार तो नाम मात्र का होता है । कविता मात्र में ही अन्त: प्रेरणा निहित रहती है, परन्तु स्तुतिकाव्य में इनका अस्तित्व सर्वाधिक रूप में वर्तमान रहता है । मनुष्य के मन को सांसारिक ऐश्वर्यों, भौतिक सुखों एवं ऐन्द्रिक भोगों की ओर आकर्षित या उनसे विकर्षित करना भी स्तोताओं का एक लक्ष्य है । जो स्तोता आराध्य से कुछ प्राप्त करना चाहता है और उसकी अनन्त शक्ति का बल प्राप्त कर जागतिक कार्यों में विजय प्राप्त करना चाहता है, वह अपनी सहज अन्त: प्रेरणा से प्रेरित हो आराध्य के गुणों में लीन हो जाता है । यह लीनता ही सहज अन्त: प्रेरणा का प्रतिफलन है । चित्त की चंचलता और अनुभूति की प्रगाढ़ता भले ही क्षणपर्यवसायिनी हो, परन्तु सहज अन्त: प्रेरणा का उच्छ्वसित रूप गीति काव्य में अवश्य पाया जाता है ।

स्तुति काव्य का कोमल स्वरूप कठिन शब्दाडम्बर को सहन करने में असमर्थ होता है, अत: भाषा की जटिलता को उसमें प्रोत्साहन नहीं मिलता। स्तुतिकाव्य में भावना का उमड़ता हुआ प्रवाह शैली को सरल और सुबोध बनाता है। शाब्दिक चमत्कार और अर्थगाम्भीर्य को यहाँ उतना अवकाश नहीं मिलता जितना अवकाश प्रबन्ध काव्य में मिलता है। सरलता, सौन्दर्य और आवेग ये तीनों स्तुति में समवेत रहते हैं। कम से कम शब्दों में भाव की पूरी-पूरी अभि-व्यक्ति कर हृदय को रसप्लावित कर देना स्तुति का एक विशेष गुण है। वास्तव में स्तुति काव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं रहती अत: स्तोता सरल और संक्षिप्त शैली का अवलम्बन ग्रहण कर अपने भावों को व्यक्त करता है। आराध्य का व्यापक सौन्दर्य उसके मानस को अभिभूत करता है जिसके फलस्वरूप वह अपनी कल्पना शक्ति का प्रस्फुटन अनेक रूपों में अंकित करता है।

आराध्य के अनन्त गुणों का भावात्मक विवेचन भी संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत रहता है।

भक्तिभावना का विकास ज्यों - ज्यों प्रबलतम होता गया त्यों-त्यों आराध्य देवों की स्तुति में स्तुतिकाव्यों का सृजन भी बढ़ता गया। लोक कल्याण और वैयक्तिक सुख-समृद्धि के माध्यम अप्रत्यक्ष ईश्वरशक्ति ने समर्पण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। परमात्मा की सत्ता के जो विविध रूप प्रादुर्भूत हुए उनके असीम सौन्दर्य, वैभव और शक्ति की कल्पना ने स्तोताओं को आत्मसमर्पण के हेतु प्रभावित उपास्य के अंग-प्रत्यंगों एवं सौन्दर्य तथा व्यापार आदि का मनोरम वर्णन किया

गया है । स्तोता अपनी समस्त चिन्ताओं का भार उस अदृश्य शक्ति पर डालकर निश्चिन्त हो जाता है । वह शान्ति और आशा के सहारे जीवन के अस्पृहणीय क्षणों को भी स्पृहणीय बना लेता है । अतएव आराध्य के प्रति समर्पण की भावना स्तुति काव्य में अनिवार्य रूप से पायी जाती है । जब तक स्तोता या भक्त को अपनी शक्ति पर विश्वास रहता है और वह सम्पूर्ण भाव से आत्मसमर्पण नहीं करता, तब तक उसे आराध्य से पूर्ण शक्ति की प्राप्ति नहीं होती । सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण के पश्चात् ही भगवान या अदृश्य शक्ति आराधक की सहायता में प्रवृत्त होती है । पौराणिक काल में रचे गये स्तोत्रों में आत्मसमर्पण की यह प्रवृत्ति सर्वाधिक रूप में मुखरित है ।

गेयता गीतिकाव्य के किसी भी अंग का आवश्यक धर्म है । ओम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है - "संगीत गीतिकाव्य की अनिवार्य विशेषता है । गीतिकाव्य में काव्य की अपेक्षा संगीत की ही मात्रा अधिक होती है, कारण यह है कि गीति - काव्य का उद्देश्य आत्मकल्याण और परमानन्द की प्राप्ति करना है और इसका सर्वोत्कृष्ट साधन है संगीत ।"[1]

स्पष्ट है स्तुति काव्य में भी संगीत का पाया जाना अनिवार्य है, क्योंकि स्तोता भावविभोर होकर आराध्य के गुणों का गायन करता है, अत:

1- हिन्दी गीतिकाव्य - पृ० 12, विशेष के लिये दृष्टव्य "गीतिकाव्य" डा० रामखेलावन पाण्डेय, वाराणसी, पृ० 36 - 58

प्रणय निवेदन या भक्ति-निवेदन में संगीतात्मकता का पाया जाना स्वाभाविक है । यह सम्भव है कि शास्त्रीय संगीत स्तुति माव्य में न पाया जाय पर गेयता का पाया जाना आवश्यक है । नाद-सौन्दर्य और भाव संगीत स्तुति के प्रवाह में स्वयमेव समाहित हो जाते हैं । जब हृदय की भावावस्था सहज संवेदनशीलता का रूप धारण कर उपास्य की ओर अनुधावित होती है, तो स्तुतिकाव्य में संगीतमाधुर्य सहज में आ जाता है । अन्तर्वेग की तीव्रता को छन्द का वातावरण गेयता प्रदान करता है । यह सर्वविदित तथ्य है कि स्तुतिकाव्य छन्दोहीन नहीं होता । छन्द की सरलता स्वयमेव गेय रूप में परिवर्तित हो जाती है । स्तोता स्तुतियों में शिखरिणी, बसन्ततिलका, उपजाति जैसे छन्दों का प्रयोग गेयता के सृजन के लिये ही करता है, क्योंकि जब वह भावविभोर होकर आराध्य का गुणगान करता है उस समय उसके हृदय के कोने-कोने से लयात्मक गेयता का संचार होता है । स्तुति की गेयता कानों पर ऐसा सम्मोहन डालती है कि समुचित ढंग से किया गया स्तुति-पाठ प्रभाव और आनन्द का सृजन करता है । स्तुतिकाव्य में छन्द के सद्भाव के कारण ही लयात्मकता और संगीतात्मकता विद्यमान रहती है ।

स्तोत्रों का उद्भव और विकास :-

स्तुतिकाव्य का प्रादुर्भाव भारतीय साहित्य में ऋग्वेद से माना जाता है । ऋग्वेद कालीन ऋषियों ने प्रकृति की शक्तियों में देवत्व का दर्शन कर उनके विग्रह की अनेकधा स्तुति की है । स्तुतियों की यह परम्परा सुदूर प्राचीन काल

से चली आ रही है, जिसका विकसित रूप ऋग्वेद में देखा जा सकता है । डा0 भोलाशंकर व्यास ने लिखा है - "वैदिक कालीन कवि ने प्रकृति की कोमल और रौद्र दोनों तरह की शक्तियों को कुतूहल और आश्चर्य से देखा । उसने इसमें दिव्यत्व का आरोप कर समय-समय पर अपने योगक्षेम की कामना करते हुए इनका आवाहन किया तथा इनकी कृपा की प्रार्थना की ।" वैदिक काल के ऋषियों ने अन्य देवताओं के साथ प्राकृतिक शक्तियों की भी स्तुति की है इनका यह स्तुति काव्य कल्पना भावना और संगीत तीनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

अनादि काल से मनुष्य का प्रकृति के साथ अविच्छिन्न और अविच्छेद्य सम्पर्क चला आ रहा है । प्रकृति में एकऐसी रमणीयता व्याप्त है जो सहज में ही मानव को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और उसकी हृदयतंत्रियों को स्पन्दित कर देती है । वैदिक ऋषियों ने जादूभरी प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव किया और उसके प्रभाव से उनके हृदय में आनन्द रस का ऐसा प्रवाह उमड़ा कि उसने समस्त भावुक वर्ग को आप्लावित किया । ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों की महत्ता अवगत कर उनकी स्तुतियां आरम्भ की ।

ऋग्वेदकालीन स्तुतिकाव्य और उसका सौन्दर्य :-

वैदिक ऋषियों ने दिव्य शक्तियों को गुणों से आकृष्ट हो उन्हें देवरूप में स्वीकृत किया है । उन्होंने प्रकृति की ही मोददायिनी गोद में आंखें खोली थीं उसी से उसका जीवन विकसित, पुष्पित और पल्लवित हुआ और अन्त में उसने अपना सौरभ प्रकृति की गोद में ही विलीन कर दिया । ऋषियों ने प्रकृति

और जीवन के सम्बन्ध को तथा प्रकृति के अनुपम लावण्य को स्तुतियों में व्यक्त किया है । अतएव ऋग्वेद में निबद्ध स्तुतियों का निम्नांकित दृष्टि से महत्त्व है -

§1§ प्रकृति सौन्दर्यानुभूति की शक्ति के रूप में अभिव्यंजना - ऋग्वेदकालीन ऋषियों ने मानव-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को उषा, मरुत् एवं सवितृ आदि के रूप में व्यक्त किया है ।

§2§ धन, ऐश्वर्य, पुत्र आदि की प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रकार की कामनाओं की अभिव्यक्ति - वैदिक ऋषि कामनाओं की पूर्ति के हेतु देवताओं का आह्वान करते हैं । इस प्रकार का स्तुति-साहित्य ऋग्वेद में सर्वाधिक है ।

§3§ स्तुतियों में उपास्यमान देवों के स्वरूप परिवार, शक्ति एवं उनकी कार्यक्षमता का उदात्त निरूपण - स्तोता स्तुति करते समय अपने आराध्य का सांगोपांग रूप में चित्रण प्रस्तुत करता है अतएव वह आराध्य की वाह्य आकृति के साथ उसके गुण और परिवार आदि का सविस्तार चित्रित करता है ।

§4§ स्तुतियों में उपमान और रूपक के तत्वों का नियोजन ।

§5§ आधिभौतिक उन्नति के निरूपण के साथ आधिदैविक अभ्युदय की सरस योजना ।

§6§ वैदिक देवताओं की शक्ति के निरूपण के साथ संस्कृति तथा समाज की मान्यताओं के निरूपण का यत्न ।

§7§ काव्यत्व के साथ संगीत का संयोजन - मैक्डनल [1] का अभिमत है कि ऋग्वेद में छन्दोमयता के साथ गेयता भी पायी जाती है तथा समस्त स्तुतियों में संगीत तत्व की पूर्णयोजना उपलब्ध है । मैक्समूलर ने स्तुतियों में संगीत के साथ

1- ए वैदिक रीडर, पृ0 27 - 28

काव्यत्व की उपस्थिति को भी मान्यता प्रदान की है उनमें स्वाभाविक सरलता और प्रासादिकता के साथ अव्यक्त दैवी शक्तियों के प्रति जिज्ञासाएं उपलब्ध हैं।

{4} संविदनशीलता और बोधवृत्ति के समन्वय का प्रयास - वैदिक ऋषि अनुभूति से द्रवित हो संविदनशील हो उठते हैं और वे प्राकृतिक शक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने लगते हैं। अतएव ऋग्वेद की स्तुतियों में संविदनशीलता और बोधवृत्ति का सामंजस्य पाया जाता है।

{9} सरल एवं प्रभावोत्पादक शैली की योजना - ऋग्वेद की स्तुतियों में सरलता विशेष रूप से पायी जाती है। ऋषियों ने जिन प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति की है उनका निरूपण अत्यन्त सरल ढंग से किया है।

ऋग्वेद की कतिपय स्तुतियां और उनका काव्यमूल्य

ऋग्वेद में इन्द्र, वरूण, मित्र, अग्नि, उषस, अश्विन् प्रभृति देवताओं का अनेक रूप में आह्वान और स्तवन किया गया है। देवों की शक्तियां अनेक रूपों में है। स्तुतियों के द्वारा वर्णित की गयी हैं। सोम की स्तुति करते हुए उसके गुणों और शक्तियों का पूर्णतया चित्रण किया गया है।[1] संस्कृति और काव्य का समन्वय करते हुए ऋभुओं की स्तुति में उपमा, उत्प्रेक्षा, एवं रूपक का प्रयोग सुन्दर रूप में किया गया है। ऋग्वेद की स्तुतियों में सुकुमार और मनोहर कल्पनायें

1- ऋग्वेद 9/79

तो है ही परन्तु कोमलकान्त पदावली में निबद्ध हृदयस्पर्शिनी भावनायें भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

ऋग्वेद में कुल 1117 सूक्त हैं । हम प्रत्येक सूक्त को एक सुन्दर स्तोत्र कह सकते हैं । इस प्रकार ऋग्वेद में स्तुतिकाव्य के समस्त गुण पाये जाते हैं । दसममण्डल के एक सौ उन्तीसवें सूक्त का नाम नासदीय सूक्त है । इसमें परमात्मा का सुन्दर चित्रण आया है । लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य के विषय प्रवेश में इसे मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ चिन्तन कहा है ।

ऋग्वेद की स्तुतियों में दार्शनिक चिन्तन का सूत्रपात भी समाहित है । ऋषियों के हृदय में सत्-असत् को अवगत करने की इच्छा अभिव्यक्त हुई थी । उनकी चिन्तनधारा बहुदेववाद के प्रति आशंकित थी 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' मन्त्र से उक्त तथ्य की स्पष्ट व्यंजना होती है । आचार्य बलदेव उपाध्याय ने एक स्थान पर वैदिक धर्म के विश्लेषण के प्रसंग में लिखा है "सबसे सरल और प्राचीन पूजा-पद्धति प्रार्थना थी जो सबके लिए सुलभ थी । वेदों के सूक्त और उनके मन्त्र वास्तव में प्रार्थनाओं के संग्रह हैं । सूक्ति, स्तुति, स्तवन, प्रशंसा आदि से देवताओं को प्रसन्न किया जाता था और पार्थिव सुखों की प्राप्ति की आशा उनसे की जाती थी ।[1]

वस्तुत: वैदिक आर्य आशावादी थे । वे अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र को आह्लाद और उत्साहवर्द्धक ही नहीं समझते थे अपितु यह भी मानते थे कि उनके अनुग्रह से ही

1- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग खंड - 3, अध्याय 1, पृ0 426

जगत के समस्त कार्य संचालित होते हैं । ऋग्वेद का 'पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्' [1] मन्त्र से प्रकट है कि दार्शनिक चिन्तन का आरम्भ हो चुका था ।

विचार की दृष्टि से ऋग्वेद के देवगण को द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और पृथ्वीस्थानीय इन तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । अन्तरिक्ष स्थानीय इन्द्र दस्युओं के विजेता, पराक्रमशाली, वलिष्ठ और ओजस्वी देव के रूप में स्तुत्य है । सर्वाधिक स्तुतियाँ इन्द्र को आधार मानकर प्रस्तुत की गई है । इन स्तुतियों में विभिन्न रसों की धारा प्रवाहित हुई है ।

दस्युओं के हनन के अवसर पर स्तुतियों में वीररस का परिपाक हुआ है । इन्द्र जब पराक्रमशाली कार्यों को प्रस्तुत करता है, तो उसके समक्ष सभी शत्रु नतमस्तक हो जाते हैं । ऋग्वेद {2/12/4} में वीररस का परिपाक हुआ है ।

इन्द्र की स्तुतियों में भयानक रस का परिपाक भी उपलब्ध होता है । ऋग्वेद में इन्द्र की जो स्तुति की गयी है, उसमें इन्द्र का भयानक रूप चित्रित है ।[2] वरूण नितान्त उदात्त, जगत् के नैतिक नियन्ता एवं ओजस्वी देव के रूप में वर्णित हैं । अग्नि का वर्णन तो अनेक सूक्तों में आया है । सविता सूर्य के गुणों का ही प्रतिनिधि है । गायत्री मन्त्र का अधिष्ठाता यही देवता है । विष्णु की स्तुतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं । ऋग्वेद [3] में इन्हें उरूगाय और उरूक्रम विशेषणों से वर्णित किया

1- ऋग्वेद पुरूष सूक्त

2- ऋग्वेद 8•1-5

3- ऋग्वेद 1•3•

गया है । रूद्र त्रिदेवों में अन्यतम देव होने से सातिशय श्रद्धा के पात्र हैं । इस प्रकार ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ काव्यरूप में वर्णित हैं ।[1] काव्य - मूल्य की दृष्टि से समग्र ऋग्वेद अत्यधिक महनीय है ।

अन्य वेदों में निबद्ध स्तुतियाँ और उनका काव्यरूप

यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में भी स्तुतियाँ उपलब्ध हैं । यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता का 41 वाँ अध्याय ऋग्वेद का पुरूष सूक्त है । यह स्तुति की दृष्टि से महनीय है । यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' है । इस प्रकार यजुर्वेद में स्तुतियों का संग्रह सम्पन्न हुआ है । इस प्रकार शिवसंकल्प सूक्त में ऋषि ने उपास्य देव से अपने देव से अपने मन को कल्याण की ओर अग्रसर करने की प्रार्थना करने समय उसे सारथि की उपमा दी जो रश्मियों को पकड़कर घोड़ों को ठीक मार्ग पर ले जाता है ।

सामवेद का संकलन उद्गाता के निमित्त हुआ है । साम का आधार ऋग्वेद की ऋचा ही है । सामवेद की स्तुतियाँ संगीत की दृष्टि से विशेष महत्व - पूर्ण हैं ।

अथर्ववेद में ऋग्वेद के मन्त्रों का ही संकलन है । लगभग इसका पंचमांश तो ऋग्वेद से ही गृहीत है । अवशेष मन्त्रों में जादू और लौकिक उपयोगी बातों का विवेचन किया गया है । अथर्ववेद की स्तुतियाँ लौकिक दृष्टि से अधिक उपयोगिनी हैं ।

1- आचार्य बल्देव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति , पृ0 484-520

वैदिक स्तुतियों में काव्य भावना और कल्पना के अनलंकृत और स्वाभाविक रूप उपलब्ध होते हैं । संगीतात्मक भावना और कल्पना में मणि - कांचन संयोग घटित करती है । ये स्तुतियां लोकगीतों का स्वाभाविक साहित्य हैं ।

महाकाव्यों और पुराणों में समाहित स्तुतियां

विकसनशील महाकाव्यों में स्तुति साहित्य का स्वरूप

वैदिक काल में जो स्तुति-साहित्य निर्मित हुआ वह बहुविषयक है । समाज, संस्कृति और जीवन सभी को स्तुतियां में समेटा गया है । परन्तु महाभारत और रामायण काल में रची गयी स्तुतियां किसी देव-विशेष से ही सम्बद्ध है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप त्रिदेव की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और इन देवों से महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कराने के लिये स्तुति और प्रार्थनाएं की जाती थीं । उद्धार के लिये त्रिदेव में से किसी एक देव की स्तुति की जाती थी । स्तोता स्तुत्य की शक्ति की महत्ता प्रकट करता और उसी को जगदुद्धारक के रूप में मानता था । महाकाव्यकाल में जो स्तुतियां निबद्ध की गयी हैं, उन्हें हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

§1§ त्रिदेव सम्बन्धी स्तुतियां - दानव जब यज्ञीय संस्कृति का विध्वंस करते हैं और आर्य संस्कृति छिन्न-भिन्न होती हुई दृष्टिगोचर होती है तब समस्त देव ब्रह्मा या विष्णु की उनकी शक्ति की याद दिलाते हुए स्तुति करते हैं । इस

प्रकार की स्तुतियों में दार्शनिक और सांस्कृतिक तत्वों के साथ काव्यात्मक कल्पना या भावना भी निहित रहती है । स्तुतिकर्त्ता उपास्य के गुणों के विवेचन में अलंकारों और विभिन्न प्रकार के भावों का पूर्णतया प्रयोग करता है । यद्यपि विकसनशील महाकाव्यों में जो स्तुतियाँ ग्रथित है, उनमें शाब्दिक चमत्कार का प्राय: अभाव है पर भावों का नैसर्गिक रूप इन स्तुतियों में पाया जाता है ।

§2§ ऋषि और मुनियों की स्तुतियाँ - विकसनशील महाकाव्यों में अदृश्य शक्तियों के देवत्व के साथ मानवीय शक्तियों का महत्व भी स्वीकृत हो चुका था, अतएव विभिन्न देवों परन्तु महान् तपस्वी ऋषियों की भी स्तुतियाँ सम्पन्न की जाती थीं । इस श्रेणी की स्तुतियों में मुख्यत: जीवन-तत्व एवं अध्यात्म भावों की अभिव्यक्ति हुई है ।

§3§ अनुभव-जगत् के सौन्दर्य और मर्म को उद्घाटित करने वाली स्तुतियाँ - मनुष्य के प्रकृति के विभिन्न व्यापारों के मार्मिक रूप को समझने की चेष्टा करता रहता है । उसकी मन: स्थिति प्रकृति के नाना रूपों से आकर्षित होती रहती है । यही आकर्षण की प्रक्रिया प्राकृतिक शक्तियों को महत्व प्रदान करती है । गीतों, मुक्तकों और स्तोत्रों में प्रकृति के रम्य रूप सहज रूप में उद्घाटित होते हैं. अत: एक निष्ठता की भावना इन रूपों में पायी जाती है । वैदिक काल से ही आकर्षण अनुभूति उत्तरोत्तर बुद्धिगत होती गयी और महाकाव्यों के युग में इसका रूप चेतन और मानव तक विस्तृत हो गया । अत: महाकाव्यों के रम्य रूपों के

उद्घाटन के लिये समुद्र, नदी, पर्वत, चन्द्र एवं ऋतु विशेषों की स्तुति अंकित की गयी है। भावुक कवियों ने प्रकृति के रूपों का समावेश नारी के सुकोमल अंग - उपांगों में भी किया गया। इस प्रकार स्तुति का धरातल विकसित हो गया।

पुराणों में समाहित स्तुति साहित्य का स्वरूप

पुराण तो स्तोत्रों का भण्डार है। अग्नि पुराण, लिंग पुराण, वायु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, देवी-भागवत पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण इत्यादि पुराणों में स्तोत्र सहस्रों की संख्या में उपलब्ध हैं। जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्यान्य देवताओं से सम्बन्धित स्तोत्र हैं। जिनमें शक्ति स्तोत्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सर्व - प्रथम रामायण और महाभारत में शिव और विष्णु देवों की स्तुतियाँ सहस्रनामों से की हुई उपलब्ध होती हैं, इसके पश्चात ही पौराणिक युग में भक्ति-भावना का प्राबल्य होने से तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के प्राधान्य एवं राम, कृष्ण आदि अवतारों के वैशिष्ट्य के कारण इन पुराणों में अनेक देव स्तुतियाँ पायी जाती हैं और पृथक रूप में अनेक स्तोत्र ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। जिनमें अपने इष्टदेवों के प्रति अनेक प्रकार के भक्ति परक स्तोत्र हैं।

इन स्तोत्रों में स्तोत्रा भक्ति की अन्तश्चेतना का स्वरूप सुन्दर मार्मिक शब्दों में प्रकट हुआ है। इसमें भक्त ने अपनी दीनता एवं असमर्थता प्रकट करते हुए अपने इष्टदेव से अपनी उद्धार की प्रार्थना की है। इन स्तोत्रों में दो ही बातें मुख्य रूप से वर्णित हैं। भक्तजन का आत्मनिवेदन और इष्टदेव के स्वरूप

का वर्णन तथा उनकी समुद्धारिणी शक्ति की प्रशंसा जिससे कि वे उसका भी उद्धार कर सकें। चूंकि यह बहुदेववाद का समय था अतएव इस समय एक नहीं अनेक देवी देवताओं की स्तुति में अनेक प्रकार के स्तोत्र लिखे गये थे, जो भक्त जिस देवता का उपासक था उसने उसी को सर्वशक्तिमान देवता मानकर उसकी स्तुति की है। इनमें कुछ स्तोत्र ऐसे भी हैं, जहाँ कवि ने अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिये चमत्कारी शब्दचित्रों को प्रदर्शित किया है। अनुप्रासमयी शब्दाडम्बरपूर्ण ऐसी भाषा में लिखित स्तोत्रों में भक्त हृदय की वह मार्मिकता एवं आत्मप्रदर्शन की वह भावना नहीं है जो कि इन स्तोत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य होना चाहिये था। पर कुछ स्तोत्र ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनमें भक्त हृदय की अनुभूति की मार्मिक व्यंजना है। अपने इष्टदेव के प्रति हृदय का सच्चा निवेदन है और आत्मविस्मृति - पूर्ण स्तुति है। ऐसे ही स्तोत्रों में स्तुति कर्त्ता की अपने उपास्य देव के प्रति सच्ची भक्ति प्रदर्शित हुई है। यद्यपि ऐसे स्तोत्र कम हैं तथापि इन स्तोत्रकारों में भक्ति भावना के साथ उच्च कोटि की कवित्व शक्ति भी देखी जाती है।

इन स्तोत्रों में देवस्वरूप चित्रण में तथा उसके महत्त्व एवं शील के स्तवन में कवि भावनाओं की अत्यन्त मनोरम अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है, ऐसे ही स्तोत्र काव्य कोटि में परिगणित होने योग्य हैं और इसके रचयिता को किसी काव्यकार से निम्न श्रेणी का नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि मम्मट आदि आलंकारिकों ने भक्ति को रस नहीं माना है, अपितु उसे देवविषयक रति कहकर भाव के अन्तर्गत ही रखा है, परन्तु कुछ स्तोत्रों में अनुभूति की ऐसी मार्मिकता

है कि हम उसे काव्यानन्द से कम सुखद नहीं कह सकते । भले ही स्तोत्रों का देवविषयक रति प्रधान होने से उच्चकोटि के काव्यों में न रखा जाय, परन्तु इनमें कवित्व की कमी नहीं है । कितने ही महाकाव्यकारों ने अथवा उच्चकोटि के कवियों ने इन स्तोत्रों को लिखा है अतएव इनमें भी उतना काव्यसौष्ठव है जितना कि अन्य कवियों में देखने को मिलता है । कालिदास, भारवि, माघ आदि महाकवियों की रचनाओं में ऐसे स्तुतिपरक पद्य दिखायी पड़ते हैं और वे कवित्वपूर्ण हैं ।[1]

इन स्तुतिपरक गीतिकाव्यों का इतना प्रभाव पड़ा कि अन्य सम्प्रदाया - नुयायी बौद्ध और जैनों ने भी अनेक स्तोत्रों की रचना अपनी-अपनी भाषा में की । आज बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य में भी अनेक स्तोत्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । इन स्तोत्रों में धार्मिक एवं दार्शनिक दोनों ही प्रकार की भावनायें देखने को मिलती हैं और इनमें काव्यसौष्ठव भी है । संस्कृत के स्तोत्र काव्य से इनमें अन्तर इतना ही है कि इन संस्कृत स्तोत्रों में जैन तीर्थंकरों तथा बौद्धों का उल्लेख नहीं है । संस्कृत काव्यों में जिन उपास्य देवों की स्तुतियाँ की गयी हैं, इन स्तोत्रों में उन देवताओं से भी बढ़कर अपने उपास्य देवों को बतलाया गया है और कहीं - कहीं उनका उपहास भी किया गया है यह सब साम्प्रदायिक भावना का ही फल है । जहाँ तक स्तोत्रों का सम्बन्ध है ये अपने-अपने सम्प्रदाय में समादृत हैं ।

1- बाबूराम त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 122-23

यद्यपि लौकिक वांगमय में स्तुतिपरक इन गीत काव्यों में महाकवि कालिदास कृत श्यामलदण्डक को प्राचीनतम स्तोत्र ग्रन्थ माना जाता है । इसी प्रकार 'गाण्डीस्तोत्रगाथा' नामक स्तोत्र के रचयिता अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई०) का माना जाता है ।[1] परन्तु यह सन्देहास्पद है । अत: आज इस क्षेत्र में स्वतन्त्र स्तुति गीत काव्य के प्रथम रचयिता के रूप में मातृचेट (100 ई०) को ही माना जाता है । यह सम्राट कनिष्क के आश्रित कवि थे । ये उच्चकोटि के बौद्ध कवि थे, इनके पद्यों में रमणीयता के साथ - साथ उच्च सिद्धान्तों का भी संकेत है । बौद्ध होने के कारण इन्होंने बुद्ध और संघ की स्तुति में पद्य लिखे हैं । इस स्तोत्र ग्रन्थ का नाम 'शतपंचाशतिक' स्तोत्र है जिसके दो रूप चतु:शतक और अध्यर्ध शतक हैं ।[2] मातृचेट से प्रभावित होकर जैन आचार्यों ने अपने तीर्थंकरों की स्तुति में कई स्तोत्र गीति काव्य लिखे हैं । सामन्तभद्र, सिद्धसेन और हेमचन्द्र के स्तोत्र निश्चयत: मातृचेट के आदर्श एवं आधार पर लिखे गये । वस्तुत: यहीं बौद्ध एवं जैन स्तुति कर्त्ताओं के प्रेरक थे । आचार्य सामन्तभद्र (तृतीय और चतुर्थ शती के मध्य) ने 'स्वयम्भू स्तोत्र' ग्रन्थ लिखा । इसके अतिरिक्त 'जिनशतक', 'देवागम - स्तोत्र' और युक्त्यानुशासन का प्रणयन किया । पाँचवीं शताब्दी में सिद्धसेन दिवाकर ने 'कल्याणमंदिर' और 'द्वात्रिंशिका' स्तोत्र ग्रन्थ की रचना की । इसी प्रकार राजा

1- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 108

2- बल्देव उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 203

हर्ष ने सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सुप्रभावस्तोत्र और अष्टमहात्री चैत्य स्तोत्रों का प्रणयन किया । इसी परम्परा में बाणभट्ट ने ‌§ 606-647 § ने 'चण्डीशतक' मानतंग ने 'भक्तामरस्तोत्र' मयूर ने 'सूर्यशतक' तथा बौद्ध विद्वान सर्वज्ञ मिश्रा ने 'स्रग्धरा स्तोत्र' लिखा ।

सप्तम शताब्दी में रचित स्तोत्र काव्य 'मूकपंचशती' है रचयिता अज्ञात है । शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में इनका 'प्रकृत्या मूकानामपि च कविता करनतया' कह कर उल्लेख किया है ।

अद्वैत वेदान्त के सुप्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य के स्तोत्रों में विष्णुपादादि के शान्त वर्णन स्तोत्र, अम्बाष्टक, शिवापराधक्षमापन स्तोत्र, देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र, भवान्यष्टकम्, आनन्दलहरी, चतुष्पष्टयुपचारमानसपूजा स्तोत्र, शिवानन्द - लहरी, अन्नपूर्णादिशंक , अन्नपूर्णाष्टिक, कनकधारास्तव, दक्षिणामूर्तिअष्टक, रामभुजंग स्तोत्र, लक्ष्मीनृसिंह स्तोत्र, सौन्दर्यलहरी इत्यादि स्तोत्र काव्य है, जो अपनी ललित पदावली, सरस शैली, गहन भक्ति तथा तीव्र वैराग्य भावना के लिये प्रख्यात हैं ।

बौद्ध कवि वज्रदन्त ने नवम् शतक में 'अवलोकितेश्वर शतक' स्तोत्र की रचना की । नवम् शताब्दी में रत्नाकर ने 'वक्रोक्ति पंचाशिका' की रचना की । कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के आश्रित ध्वनि सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने 'देवीशतक' लिखा ।[1] प्रत्यभिज्ञाचार्य उत्पलदेव ने 'शिवस्तोत्रावली' का प्रणयन किया । इसमें विभिन्न स्तोत्रों का संग्रह है ।

1- ध्वन्यालोक, पृ0 8

दशम शतक में केरलाधिपति कुलशेखर ने 'मुकुन्दमाला' की रचना की । इसी प्रकार दशम शतक के रामानुज के गुरू यमुनाचार्य ने 'अलवन्दार स्तोत्र', चतु:श्लोकी एवं स्तोत्ररत्न की रचना की । दसवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने 'भैरव स्तोत्र' लिखा । रामानुजाचार्य (ग्यारहवीं शताब्दी) गद्यत्रय नाम से शरणागति गद्य, वैकुण्ठगद्य, एवं श्रीरंगगद्य लिखे । रामानुज के शिष्य श्रीवत्सांग ने पंचस्तव नाम से अतिमानुषस्तव, वरदराजस्तव, सुन्दरबाहुस्तव की रचना किया । इसके पुत्र पराशरभट्ठ के नाम से भी "श्रीरंगराजस्तव' तथा 'श्रीगुणरत्नकोश' दो स्तोत्र सुने जाते हैं । गीतिगोविन्दकार जयदेव ने गीतिगोविन्द की शैली में गंगास्तव लिखा । मालावार निवासी विल्वमंगल ने 'कृष्णकर्णामृत' की रचना की । 12 वीं शताब्दी में द्वैतमतानुयी आचार्य आनन्दतीर्थ ने 'द्वादशस्तोत्र' लिखा । 12 वीं शताब्दी में ही सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्यकार कल्हण ने 'अर्धनारीश्वर - स्तोत्र' काव्य की रचना की ।

वेदान्तदेशिक (1368-69 ई0) ने लगभग 25 स्तोत्रपरक ग्रन्थों की रचना करके इस परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया । उनके वरदराज पंचाशत्, अष्टभुजाष्टक, अच्युतशतक, गरूड़पंचाशत, यतिराज सप्तति, दयाशतक, गोदास्तुति, पादुकासहस्र, रघुवीर गद्य आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं । इसी शताब्दी में रत्नधर के पुत्र जगद्धरभट्ट ने 'स्तुतिकुसुमांजलि' की रचना की । भर्तृहरि रचित 'वैराग्यशतक' को भी स्तोत्र ग्रन्थों में स्थान मिला है ।

16 वीं शताब्दी में वर्तमान मधुसूदन सरस्वती ने 'आनन्दमन्दाकिनी' स्तोत्र ग्रन्थ का प्रणयन किया । 16 वीं शताब्दी में ही अप्पयदीक्षित ने 'वरदराज - स्तव' तथा नारायणभट्ट ने 'नारायणीय काव्य' नामक स्तोत्र की रचना की ।

कश्मीर निवासी अवतार कवि ने 17 वीं शताब्दी में 'ईश्वरशतक' स्तोत्र रचना की । 17 वीं शताब्दी में ही वेंकटाध्वरी ने वेदान्तदेशिक के काव्य से प्रेरणा तथा स्फूर्ति ग्रहण कर अपने अनुपम काव्य 'लक्ष्मीसहस्र' का निर्माण किया ।

स्तोत्रकाव्यकारों में पण्डितराज जगन्नाथ का नाम उल्लेखनीय है । इनके काव्यग्रन्थों में पाँच लहरियों का स्थान मुख्य है । (1) करुणा लहरी (2) गंगालहरी या पीयूष लहरी (3) अमृत लहरी (4) लक्ष्मी लहरी (5) सुधा लहरी इसमें गंगालहरी ही अधिक लोकप्रिय हुई है ।

शाक्तस्तोत्र

<u>ललितास्तवरत्न</u> - महर्षि दुर्वासा की रचना है । 213 आर्यावाली यह स्तुति 'आर्याद्विशती' के अन्वर्थक नाम से भी विश्रुत है । दुर्वासा रचित 'त्रिपुरसुन्दरी - महिम्नस्तोत्र' के नाम से प्रख्यात इतर स्तुतिनामा छन्दों में 58 पद्यों से युक्त है ये दोनों स्तुतियाँ शाक्त - सम्प्रदाय के अन्तस्तत्त्व को प्रकट करने वाली गम्भीरार्थ-प्रकाशिनी मानी जाती हैं ।

पंचस्तवी - कालिदास के रचनारूप में विश्रुत पंचस्तवी पाँच विभिन्न स्तवों के समूहरूप में प्रस्तुत हैं। स्तवों के नाम हैं (क) लघुस्तुति (21 पद्य), (ख) घटस्तव (21 पद्य), (ग) चर्चास्तुति (23 पद्य), (घ) अम्बास्तुति (32 पद्य), तथा (च) सकल जननीस्तव (35 पद्य)। इन स्तवों में साहित्यिक सौन्दर्य के साथ तान्त्रिक तथ्यों का भी मनोरम उद्घाटन है।

श्यामलदण्डक[1] - इस नाम से विख्यात पाँच दण्डकों से समन्वित एक प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें मातंगी देवी की परम रम्य स्तुति की गई है। इस स्तोत्र का साहित्यिक चमत्कार निश्चयेन उच्चकोटि का माना गया है।

चण्डीशतक - बाणभट्ट (7वीं शती का पूर्वार्द्ध) रचित चण्डीशतक भगवती दुर्गा की स्तुति में स्रग्धरा वृत्त का प्रशस्त शतक स्तोत्र है। इसमें बाण की परिचित शैली, लम्बे - लम्बे समास, नोंक झोंक के शब्द कानों में झंकार करने वाले अनुप्रास तथा उच्चकोटि के उत्प्रेक्षा का चमत्कार पाया जाता है।

सुभगोदयस्तुति - शंकराचार्य के दादा गुरू गौड़पादाचार्य की यह रचना तान्त्रिक तथ्यों के विश्लेषण तथा श्रीचक्र के विवरण के लिये नितान्त प्रख्यात है। इसमें 52 शिखरिणी वृत्त हैं।

शंकराचार्य - आचार्य शंकर त्रिपुरासुन्दरी के महनीय उपासक थे और इसीलिये श्रृंगेरी मठ में भगवती की उपासना परम्परया आज भी प्रचलित है। आचार्य ने 'त्रिपुरसुन्दरी मानसिकोपचार पूजा' तथा 'चतुःषष्टिउपचारमानसपूजा' में भगवती की मानसपूजा का वर्णन बड़े ही समारम्भ के साथ किया है। इनमें से

1- का० मा० गु० प्रथम में प्रकाशित

प्रथम स्तोत्र 128 पद्यों से समन्वित है और दूसरा 73 पद्यों से युक्त है । परन्तु आचार्य का सर्वोत्तम शाक्तस्तव 'सौन्दर्यलहरी' ही निःसन्देह है । भगवती के दिव्य सौन्दर्य की छटा इस लहरी में जितनी प्रस्फुटित हुई है, उतनी शायद ही अन्यत्र हो ।

इनके अन्य स्तोत्रों में ललितापंचकम्, मीनाक्षीपंचरत्नम, भवान्यष्टकम्, आनन्दलहरी, अन्नपूर्णाष्टक, महालक्ष्म्यष्टक, गंगाष्टक, यमुनाष्टक, त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्रम् देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र इत्यादि हैं ।

शंकरचार्य का 'कनकधारास्तव' भगवती लक्ष्मी की स्तुति में विरचित नितान्त मनोरंजक तथा कवित्वपूर्ण है । श्लोकों की संख्या 22 है । लक्ष्मी केवल कटाक्ष का आलंकारिक वर्णन है ।

शंकराचार्य की एक अन्य विशिष्ट शाक्त रचना है अम्बाष्टक, जिसमें अम्बा की प्रशस्त स्तुति एक अप्रसिद्ध वृत्त में की गयी है ।[1]

<u>मूकपंचशती</u> - मूक कवि के द्वारा रचित पाँच शतकों का यह पुंज है, जिसमें शतकों के क्रमश: अभिधान है । (क) कटाक्षशतक (ख) मन्दस्मितशतक (ग) पादारविन्दशतक (घ) आर्याशतक (ङ) स्तुतिशतक । शतकों के नाम से ही वर्ण्य विषय का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

<u>देवीशतक</u>[2]- ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन की यह कृति कलापक्ष के प्रदर्शन का एक अनुपम स्थल है । यह शतक स्तोत्रकाव्यों में अपना अनूठा स्थान रखता है

1- का० मा० गु० 2 में प्रकाशित

2- का० मा० गु० नवम में प्रकाशित

चित्रकाव्य का इसमें सुन्दर निदर्शन पाया जाता है । काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने उदाहरण रूप में देवीशतक से अनेक श्लोक भी उद्धृत किये हैं ।

श्रीस्तोत्र एवं अष्टाभजाष्टक - यह दोनों स्तोत्र वेदान्तदेशिक §1368-69 ई0§ द्वारा रचित हैं ।

त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजास्तोत्र[1] - मथुरा के निवासी सामराज दीक्षित §16वीं शती का उत्तरार्द्ध§ का यह स्तोत्र शंकराचार्य के एतन्नामक स्तोत्र से प्रभावित है ।

गीतिशतक[2] - सुन्दराचार्य नामक किसी द्रविण कवि ने इस शतक स्तोत्र की रचना की । इसमें भगवती अम्बा की प्रार्थना की गयी है । इसमें 102 पद्य हैं । यह स्तोत्र अपनी रमणीय आर्याओं के लिये विख्यात रहेगा ।

आनन्दसागर स्तव - नीलकण्ठ दीक्षित §17 वीं शती§ विरचित यह स्तोत्र काव्य की श्रेणी में आता है । इसमें 108 श्लोकों में देवी की भक्तिमय वन्दना की गयी है । पार्वती की स्तुति में दीक्षित जी ने अत्यन्त मार्मिक भावों में विषय वस्तु को संजोया है ।

चण्डीकुचपंचाशिका - लक्ष्मण कवि रचित यह स्तोत्र पौढ़ भावों से सम्पन्न है तथा कल्पना से मण्डित है ।

लक्ष्मीसहस्र - वेंकाटाध्वरि §17वीं शती§ का पूर्वार्द्ध ने इस स्तोत्र में भगवती लक्ष्मी की स्तुति किया है । इसमें लक्ष्मी का नख-शिख वर्णन है । इस काव्य में शब्दालंकारों की छटा अवलोकनीय है ।

1- का0 मा0 गु0 नवम में प्रकाशित

2- का0 मा0 गु0 नवम में प्रकाशित

3- का0 मा0 गु0 11 में प्रकाशित

पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शती का पूर्वार्द्ध) की कृतियों में पाँच लहरियों का स्थान मुख्य है। लक्ष्मीलहरी में लक्ष्मी का स्तवन आपने देवी रूप में तो किया ही है साथ ही विष्णु की प्रियतमा के रूप में किया है। उन्होंने नख- से लेकर शिख तक भगवती का सौन्दर्य वर्णन किया है। 'गंगालहरी' में कवि की उदात्त कल्पनायें सर्वथा विलक्षण हैं। उन कल्पनाओं में कवि की भावुक मन की ऊँची उड़ान के साथ ही लोकोत्तरवर्णना के भी दर्शन होते हैं। 'अमृतलहरी' में यमुना का विस्तृत वर्णन है।

कृष्णक पण्डित रचित महाराज्ञी स्तोत्र - अनेक विशिष्टता से मण्डित है। कश्मीर में 'महाराज्ञी' नाम से भगवती की एक विशिष्ट मूर्ति की उपासना के आवश्यक पटल पूजा कवच सहस्रनाम-स्तोत्र प्रकाशित है। इसमें 59 पद्य हैं।

<u>आनन्दमन्दिरस्तोत्र[2]-</u> की रचना कवीन्द्र बहादुर लल्ला दीक्षित ने 1802 ई० में काशी की प्रख्यात देवी संकटा जी की स्तुति में लिखी। इसमें देवी की वन्दना तथा नख-शिख वर्णन है। इनका समय 1802 है।

<u>शक्तिशतक[3]-</u> यह शतक श्रीश्वर विद्यालंकार प्रणीत है। इनका समय 1850 में माना जाता है। इस शतक में कवि ने दुर्गा देवी की स्तुति की है तथा उन्हें आदि शक्ति स्वीकार किया है।

1- 'मलयमारुत' में के० स० वि० तिरुपति से 1966 में प्रकाशित।

2- का० मा० गु० 14 में प्रकाशित।

3- हिस्ट्री ऑफ क्लैसिकल सं० लि०, एम० कृष्णमाचारियर, पैरा- 737

दुर्गा सौन्दर्य शतक[1]- इस शतक के रचयिता काशी नाथ गौतम गौड़ी वेंकटशास्त्री के पुत्र थे । इनका समय {1857-1917} माना जाता है । ये विजयनगरम के महाराजा आनन्द गजपति {1851-1857} के समय में थे । ये महाराजा संस्कृत कालेज विजयनगरम में व्याकरण के प्रोफेसर थे । इनके गंगा स्तव तथा गोदावरी स्तव दो अन्य स्तोत्र काव्य भी उपलब्ध हैं ।

शारदा शतक[2]- यह स्तोत्र श्रीनिवास शास्त्री द्वारा प्रणीत है । इन्होंने अनेक शतक लिखे हैं । इनका समय 19 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है । इन शतकों में शारदा की स्तुति की गयी है ।

गंगालहरी शतक[3]- यह लक्ष्मी नारायण कवि की रचना मानी जाती है । जो तीन व्याख्याओं के सहित बम्बई से प्रकाशित है । पण्डितराज के गंगा लहरी के ही समान यह भी भावपूर्ण रचना है ।

लक्ष्मी नृसिंह शतक[4]- यह श्रीनिवासाचार्य की कृति मानी जाती है । इसमें लक्ष्मी तथा नृसिंह भगवानकी स्तुति की गयी है ।

तारावली शतक, दयाशतक, मातृभूत शतक[5]- ये शतक श्रीधर वेंकटेश रचित हैं । ये दक्षिणी भारत में अपनी दया तथा त्याग के लिये प्रसि हैं । ये इनके धार्मिक काव्य हैं ।

1- हि0 आफ क्लै0 सं0 लि0 एम0 कृष्णमाचारियर, पैरा- 492

2- हि0 आफ क्लै0 सं0 लि0 एम0 कृष्णमाचारियर, 254

3- बम्बई तथा बनारस से प्रकाशित

4- मद्रास से प्रकाशित

5- सम्पादित - श्रीविद्या प्रेस कुम्भकोनम

इन उपर्युक्त शक्ति स्तोत्रों के अतिरिक्त भी बहुत से शक्ति स्तोत्र पाये जाते हैं जिनका समय अज्ञात है तथा हस्तलेख रूप में ही सुरक्षित है । इन स्तोत्र शतकों में श्रीश्वर का देवीशतक[1], भवन स्तव शतक[2], अन्नपूर्णा शतक[3], गुरू त्रिशती स्तोत्र[4], इत्यादि । बीसवीं शती के नवम दशक में रचित इलाहाबाद विश्व विद्यालय के प्रो० राजेन्द्र मिश्रा द्वारा रचित 'नवाम्बाष्ट' और नपाष्टमालिकायें इससे ज्ञात होता है कि स्तोत्रों की रचना आधुनिक काल में भी हो रही है ।

इस तरह संस्कृत में शक्ति स्तोत्र रचना की परम्परा आज भी चल रही रही है । अनेक शक्ति स्तोत्र आज भी लिखे जा रहे हैं पर इनमें से अनेक अभी अज्ञात हैं अतः उन सबका विवेचन यहाँ नहीं किया जा सका ।

शक्ति स्तोत्र साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात प्रश्न ये उठता है कि इन शक्ति स्तोत्रों के भेद कितने हैं ? परवर्ती समालोचकों ने शक्ति स्तोत्रों के प्रमुख रूप में मुक्तक एवं प्रबन्ध ये दो भेद किये हैं । जिनमें मुक्तक स्तोत्र साहित्य के अन्तर्गत आर्ष महाकाव्यों तथा लौकिक संस्कृत वाङ्मय में उल्लिखित शक्ति स्तुतियाँ आती हैं एवं प्रबन्धात्मक स्तोत्र साहित्य के अन्तर्गत कालिदास प्रणीत् श्यामलदण्डक, शंकराचार्य प्रणीत सौन्दर्यलहरी तथा बाणभट्ट प्रणीत चण्डीशतक आदि महाकाव्यों का परिगणन किया जाता है ।

1- नोटिस आफ सं० मैनु० इन अलवर स्टेट2438 बाई,राजेन्द्रलाल मित्रा

2- वही

3- मैनुस्क्रिप्ट्स सूचीपत्र आफ फोर्ट वि० एसि० सो०, कलकत्ता 1838 ।

4- ए हेन्डलिस्ट आफ दि सं० मैन० एक्वायर्ड फार दि त्रावणकोर यूनि० मैनु० लाइब्रेरी त्रिवेन्द्रम 6300 ।

5- संस्कृत साहित्य का इतिहास- बल्देव उपाध्याय,प्र०भाग पृ० 367-371

प्रथम अध्याय

1- शक्ति की कल्पना एवं महत्त्व

(वैदिक काल से ———————)

2- शक्ति के विविध रूप

प्रथम अध्याय

शक्ति की कल्पना एवं महत्व

शक्ति तत्व का विकास

शक्ति की पूजा और उपासना कहाँ से प्रारम्भ हुई इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नही है । जिस समय हम किसी सिद्धान्त या विषय की परम्परा या मूल स्रोत पर विचार करने चलते है उस समय हमारे साहित्यिक पुरातात्विक साक्ष्य अवलम्बन रूप में दीख पड़ते हैं । साहित्यिक साक्ष्य में अधिक से अधिक वेदों तक और पुरातात्विक साक्ष्य में मोहनजोदड़ो हड़प्पा , कालीबंगन आदि के उत्खनन तक हम जाते हैं । जब भी हम किसी विषय की प्राचीनता को स्पर्श करते हैं , तत्काल हम उस विषय को हटात आकृष्ट कर वैदिक संहिताओं को ले जाकर उसकी प्राचीनता दिव्यरचना धर्मिता तथा महत्ता का वर्णन करते हैं । जबकि यह भी निश्चित नही है कि वैदिककाल क्या माना जाय , इसलिये शाक्त सम्प्रदाय या शाक्तमत के विकास अथवा शक्ति पूजा के प्रारम्भ के विषय में निश्चित समय का निर्धारण सम्भव ही नही है । हमारा यह विश्वास होना चाहिये कि जब भी पृथ्वी पर मानव की अवधारणा या अवतारणा हुई होगी , निश्चित ही तभी से कुछ अज्ञात प्राकृतिक उपलब्धियों (जन्म मृत्यु आदि) के कारण मानव किसी शक्ति को मानने के लिये तैयार हुआ होगा और तभी से अपने सहज जीवन की अनुकूल वेदनीयता के लिये उसको आदर दिया होगा , उसकी पूजा की होगी , श्रद्धा की होगी और उस पर विश्वास किया होगा फिर भी हम भौतिक स्तर के प्राणीपरिपक्व बुद्धि के अभाव मे शक्ति की पूजा या शाक्त मत के उद्भव और विकास के लिये साहित्यिक या

पुरातात्विक को ही प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं ।

पुरातात्विक प्रवेश - पुरातात्विक खनिज के माध्यम से सिन्धु नदी की सभ्यता का ज्ञान कराने वाले साक्ष्य रूप में प्राप्त यौनि - आकार की मूर्तियों से ताम्रयुगीन सैन्धव प्रदेश में शक्ति या माँ की उपासना प्रचलित थी । यह माना जाता है । सर जान मार्शल तो यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय शक्तिवाद के समान एशिया माइनर मिश्र. , तथा यूनान में भी किसी न किसी रूप में शक्ति उपासना प्रचलित है । [1] इससे यह भी तथ्य प्रमाणित होता है कि शक्ति उपासना अनादिकाल से सार्वभौमिक रही है । इस प्रकार यदि शक्ति उपासना के प्रारम्भ की सीमा में बाँधने का दु:साहस करे तो हम कह सकते है कि ईसा के लगभग 4 हजार वर्ष पूर्व वैदिक काल (ऋग्वेद 10 - 125 ,1 -8) देवी सूक्त या वाक्सूक्त से यह परम्परा चली आ रही है । विद्वानों की यह मान्यता है कि वैदिक संहिताओं की संस्कृति सिन्धु सभ्यता की पूर्वगामिनी है । [2] इसलिये शक्ति उपासना को हम वैदिक काल तक ले जाते है किन्तु कष्ट यह है कि वेदों का काल - निर्धारण भी तो विवाद का विषय है इस स्थिति में कुछ भी निर्णय करना कठिन लगता है ।

शक्ति उपासना की जड़े जितनी गहराई तक भारत में हैं उतनी

1- मोहन जोदड़ी एण्ड इण्डियन सिविलाइजेशन पृ0 5-1-58

2- कल्याण शक्ति अंक, पृ0 244

किसी अन्य देश में नहीं है । शक्ति उपासना के चिन्ह प्रत्येक नगर और देश के कण-कण में मिलते हैं । सिन्धु घाटी तथा सुमेरियन सभ्यता को काफी समीप सिद्ध करने वाले कुछ तथ्य मिलतें हैं , जिससें शक्ति उपासना की तत्कालीन सार्वभौमिकता की सिद्धि होती है । प्राचीन विश्व द्वारा पूजित होने के कारण देवी को 'लोकमाता' कहा जाता था -

1- दोनों देशों में देवी का वाहन सिंह माना जाता हैं ।

2- शक्ति को ' युद्ध - देवी ' के रूप में माना जाता था ।

3- देवी के कुमारी तथा विवाहित दोनों रूप दोनों देशों में थे ।

4- दोनों देशों में देवी प्राय: पहाड़ियों या पर्वतों से सम्बद्ध देखी जाती हैं ।

5- सुमेरिया में देवी को 'नाना' नाम से जाना जाता था जो गुजरात (अब पाकिस्तान में) के पास ' हिंगलाज ' में नाना देवी के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त है ।

इससे स्पष्ट है कि भारत में शक्ति की उपासना का उद्भव मातृदेवी की उपासना के रूप में हुआ और यह उपासना शिवोपासना से अत्यधिक सम्बद्ध थी ।

शक्ति उपासना के प्रारम्भ का एक ठोस आधार यह भी सम्भव है कि आदिकाल में मातृप्रधान युग में प्राणी अपनी मां के प्रति अति आदर

और श्रद्धा का भाव रखते थे और यही भाव मातृ- उपासना के रूप में पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ ।[1]

वैदिक साहित्य - यद्यपि वैदिक साहित्य में शक्ति शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है तथापि देवी के रूप में विभिन्न क्षमताओं से युक्त नाना प्रकार की शक्तियों का वर्णन किया गया है । प्रत्येक देवी 'शक्ति' की ही प्रतीक थी , यह बात सत्य है कि वैदिक संहितायें देवी के सूक्तों से भरी पड़ी हैं और कुछ ही सूक्त देवियों से सम्बद्ध हैं । यथा- ' रात्रि ' और 'पृथ्वी' के लिये तीन सूक्त , आप देवी लिये चार और उषस् के लिये बीस सूक्तों की रचना की गयी हैं ।[2] किन्तु इसके साथ ही ऋषियों की भावना शक्ति माहात्म्य से दूर थी - यह भी नहीं कहना चाहिये , क्योंकि ऋक् संहिताओं में 40 देवियों के नाम उपलब्ध होते हैं - उषस् ,रात्रि , राका , गंगु , पृथ्वी , अदिति , दिति , स्वस्ति , रेवती , पुरन्धि , अनुमति , आपदेवीस् , सरस्वती ,सिन्धु, इन्द्राणी, रूद्राणी, वरूणानी, सूर्या, रोदसी, सीता, दक्षिणा श्रद्धा, इला, मही, भारती, गौरी, उर्वशी आदि ।[3]

1- शक्ति कल्ट इन एनसिएन्ट इण्डिया, पृ0 ।

2- मैक्डानल: हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ0 81 ,92 ,102 ,103

3- इण्डियन कल्चर वाल्यूम - 8, जुलाई- सितम्बर 1942 ,पृ0-66

ऋग्वेद (10-127) खिलरात्रि सूक्त में शक्ति को 'माँ' कहा गया है, जो समस्त मानवजाति की शरण है, वह तब से देदीप्यमान होती है तथा भक्तों के द्वारा अपने कर्मफल की प्राप्ति के लिये पूजी जाती हैं । इस सूक्त के दोनों मन्त्र 'दुर्गा' का संकेत करते हैं, जिसे सायण परम शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं ।

ऋक् संहिताओं के परवर्ती संहिताओं में भी शक्ति के अनेक रूप प्राप्त होते हैं । वाजसनेयी संहिता [1] रुद्र की (बहन के रूप में अम्बिका को सम्बोधित किया गया है । इसके अतिरिक्त तैत्तरीय संहिता,[2] तैत्तरीय ब्राह्मण[3] तथा शतपथ ब्राह्मण[4] में अम्बिका का उल्लेख मिलता है । तैत्तरीय आ0 में उमा का तथा शिव के लिये उमापति का सन्दर्भ मिलता है ।

शक्ति की औपनिषदिक धारणा का विकास हमें श्वेताश्वतर उपनिषद में प्राप्त होता है । जहाँ शक्ति से संयुक्त ब्रह्म का निरूपण किया गया है,[5] वहाँ शक्ति को माया तथा शिव को मायिन कहा गया है ।[6]

श्रौत और गृह्यसूत्र में भी पहले से चली आ रही शक्ति उपासना का विकास देखा जाता है ।[7]

1- 11·53

2-1·3·64

3- 1·6·10

4- 11·6·29

5- श्वेताश्वतर उप॰1·3

6- वही 4·10

7- शांखायन श्रौत सूत्र 10·20 , गृहसूत्र 111·3·29

शक्ति उपनिषद् में शक्ति -

शाक्तमत का दार्शनिक आधार शाक्त उपनिषदों में प्राप्त होता है । ब्रहम की सर्जन शक्ति का क्रियात्मक रूप उसी शक्ति में उपलब्ध होता है जो ब्रहम से अभिन्न नही हैं । यही अभेद शाक्तमत का मूल है । शाक्त उपनिषद् यह स्वीकार करते हैं कि शिव बिना अपनी शक्ति के सृष्टि-कार्य नही सम्पन्न कर सकता ।[2] वह सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड की माँ है ।[3] वह पुरूष प्रकृति तथा जीवात्माओं और जगत का सर्जन करने वाली है । कभी-कभी वह प्रकृति और माया के रूप में जानी जाती है ।[4]

सुमुखी उपनिषद् में शक्ति का ध्यान षोडशवर्षी एक सुन्दरकुमारी के रूप में किये जाने का उल्लेख हैं , जो शिव पर विराजमान है, रक्तरंजित घर तथा आभूषणों से अलंकृत है । वहवृचोपनिषद् में अनेक प्रकार के देवियों का उल्लेख हुआ है- महात्रिपुर सुन्दरी, बालाम्बिका, बंगला, मातंगी, स्वयंवरा, कल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चन्द्रा, वाराही, तिरस्कारिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला,अश्वारूढ़ा,

---

1- देवी उपनिषद् 2 श्यामोपनिषद् ।।

2- त्रिपुरा तापिनी उपनिषद् 1·6·5·14 ।

3- त्रिपुरा उपनिषद् 13, सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद्,5·4 ।

4- सरस्वती उपनिषद् , 5·41·50 ।

धूमावती, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्माण्ड-कला आदि ।[1] शाक्त उपनिषदों का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह भी है कि तान्त्रिक शब्दावली से ओतप्रोत हैं ।

वह शक्ति ब्रह्मरूपिणी[2], जगद्रूपिणी[3] है उससे भिन्न कुछ नहीं है । वहीं नाना प्रपंच, देवता प्रपंच देवता तथा अन्य शक्तियों की सृष्टि करती है ।[4] वही महाविद्या और विश्वरूपिणी है ।[5]

शक्ति-उपासना संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, तथा उपनिषदों से विकसित होती हुई लौकिक संस्कृत-महाकाव्यों में विपुल अस्तित्व को प्राप्त करती है । लौकिक संस्कृत साहित्य के उपजीव्य काव्य रामायण महाभारत में 'शक्ति' का महात्वपूर्ण स्थान बताया गया है। रामायण-काल में यद्यपि शक्ति उपासना एक अलग स्वतन्त्र मत के रूप में नहीं दीख पड़ती, किन्तु शक्ति का महत्व इतना बताया गया है जो कार्य देवता नही कर सके उस कार्य को शक्ति ने सम्पन्न किया । यह तथ्य कुबेर को दिये गये देवी के शाप से स्पष्ट होता है ।[6] यहाँ भी

1- मन्त्र 81 ।

2- देवी उपनिषद्-21 ।

3- वही 3

4- वही 3, 181 ।

5- वही 15

6- रमायण, 1, 30, 21 -25 ।

वह शिव की शक्ति के रूप में वर्णित है। उसे उमा, गिरजा, रूद्राणी, और पार्वती नामों से अभिहित किया गया है ।[1] रामायण में अनेक प्रसंगों में शक्ति को अनेक नामों से पुकारा गया है - सुरसा, सिंहिका, विद्या, बला, अतिबला आदि ।

महाभारत काल में शक्ति उपासना ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया । दो सम्पूर्ण अध्याय देवी के लिये प्रयुक्त है ।[2] वह प्राणियों को कष्ट से बचाती हैं । वह तीनों लोकों की रक्षा के लिये देवों द्वारा पूजी जाती है । देवी की प्रातः उपासना करने वाले धन-धान्य से पूर्ण होते हैं ।[3] भीष्म पर्व में अर्जुन के द्वारा की गई दुर्गा की प्रार्थना उसके अनेक नामों कृष्णपिंगला, भद्रकाली, महाकाली, चण्डी, चण्डा तारिणी, वरवर्णिनी, कात्यायनी, कराली विजया-जया आदि का संकेत है । शक्ति पूजा या उपासना का यह क्रम पुराण, काव्य, नाटक आदि साहित्य में अब तक चला आ रहा है ।

महाभारत के देवी -तीर्थों का उल्लेख हुआ है । जैसे- कामाण्य तीर्थ, श्री पर्वत, भीमा देवी का स्थान, कालिका संगम, गौरी शिखर, शाकम्भरी, धूमावती का स्थान , श्री तीर्थ, देवी-तीर्थ, मातृतीर्थ ।

1- वही, 7,13,23 ।

2-महाभारत,4,6,और 6·23 ।

3- वही 4,6·19 ।

शल्य पर्व में भगवती के काली, कालिका, रौद्री, सौम्या, कौवेरी, वारुणी, माहेन्द्री, आग्नेयी, कामौरी ,ब्राह्मी,वैष्णवी, वाराही, आदि नामों का उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त हरिवंश पुराण में देवी के रूद्राणी,एकानंसा, कूष्माण्डी, भीमा, आर्या, अम्बिका, त्रिभुवनेश्वरी, सहस्रनयना, किराती, जगन्माता; आदि नामों का उल्लेख मिलता है ।

उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति की उपासना का क्रम आदिम जातियों के द्वारा प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है जहाँ तक वैदिक काल का प्रश्न है उस समय भी वैदिक धर्म मतावलम्बियों के द्वारा भी शक्ति की पूजा का अनुष्ठान किया जाता था ।[1]

अम्बिका का विकास -

वैदिक आर्यों ने किसी ऐसी प्रभावशालिनी देवी की कल्पना नही की जिसे वे संसार की अधिष्ठात्री तथा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण समझते हों । उषा की सुन्दर कल्पना की गयी है किन्तु उसका प्रभाव नही है। सरस्वती के स्वरूप में अवश्य देवी तत्व है । सम्भवतः उसकी धारणा सीमित और अस्थायी थी । ऋग्वेद में केवल एक सूक्त में उनका वर्णन है[2] और बाद की संहिताओं में उनके नाम का स्मरण मात्र रह गया ।

1- शक्ति कल्ट इन एनशियेन्ट इण्डिया पृ0 3-1 ।

2- अहंरूद्रेभिर्वसुभिः चराम्यहमादित्यैरूतविश्वदेवैः ।

अहंमित्रावरूणाउभोविभर्मि, अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनाउभा ।

ऋग्वेद- 10/125

शाक्त-तन्त्रों तथा आगम साहित्य में देवी की उपासना के प्रसंग में जिन वैदिक मन्त्रों का उदाहरण दिया गया है वे ऋग्वेद तथा अथर्ववेद संहिता के रात्रि, पृथ्वी, वाक्, श्री,[1] देवी इत्यादि सूक्तों से उद्धृत हैं। इससे स्पष्ट है कि देवी की स्तुति के लिये वैदिक संहिताओं में स्वतन्त्र मन्त्र नहीं थे।

मातृशक्ति का सर्वप्रथम अम्बिका नाम से उल्लेख वाजसनेयी संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त है तथा वे जनकल्याणकारिणी तथा मंगलमयी देवी दिखती है। ऐसा लगता है कि वैदिक आर्यों की किसी महत्वपूर्ण देवी के अभाव में लोकविश्वास की इस देवी को ब्राह्मण धर्म में स्थान मिल गया। सम्भवत: इस देवी में परवर्ती महाकाली या चामुण्डा जैसी देवियों के समान क्रूर रूप नही था। यह भी सम्भव है कि ब्राह्मण धर्म में समाविष्ट (समावेश) हो जाने के पश्चात इनका स्वरूप कुछ परिष्कृत होकर सौम्य हो गया हो। केन उपनिषद् के एक प्रसंग में उमा- हैमवती प्रकट होकर इन्द्र, वायु तथा अग्नि को यह उपदेश देती हैं कि वे अपनी शक्ति से एक तिनके को भी नष्ट नही कर सकते, ब्रह्म की शक्ति से ही वे सब कुछ करते हैं। शंकराचार्य ने अपने भाष्य में उमा- हैमवती को विद्या अथवा प्रज्ञा का प्रतीक माना हैं किन्तु सम्भवत: हैमवती का अर्थ यहां सुवर्ण वर्णा हैं।

1- ओं हिरण्यवर्णां हरिणीं, सुवर्ण-रजतस्रजां।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं, जातवेदो ममावह ।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद प्रमोदिनीम् ।
श्रियंदेवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्भिति ।। ऋग्वेद -श्री सूक्त - 1,3-

मैत्रायणी संहिता तथा तैत्तिरीय आरण्यक में देवी से सम्बद्ध ग्रन्थों में देवी के जो कात्यायनी, दुर्गा, कन्याकुमारी, गौरी आदि विशेषण हैं वे सर्वतः शिव की पत्नी पार्वती के लिये प्रयुक्त होते हैं । श० ब्रा० की अम्बिका सूत्रग्रन्थों में शिव की पत्नी बन गयी हैं । शांखा० श्रौत सूत्र[1] में इसके लिये भवानी, शर्वाणि, रूद्राणि तथा ईशानी आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं । बौधायन धर्म सूत्र [2] में इस देवी को स्पष्ट रूप से रूद्र की पत्नी कहा गया है ।

बौधायन गृ० सू०[3] में इस मातृशक्ति के वर्णन से ऐसा लगता है कि तत्कालीन दुर्गा की सौम्य-उपासना का लगभग वही रूप था जो महाभारत तथा पुराणों में प्राप्त होता है किन्तु उनकी प्रतिमा का वर्णन नहीं है । इस स्थल पर उनके लिये महायोगिनी जैसे विशेषणों के प्रयोग से लगता है कि उस समय उनके दार्शनिक स्वरूप का भी विकास हो रहा था । उनके महावैष्णवी नाम से प्रतीत होता है कि वर्ग विशेष में उन्हें विष्णु की शक्ति के रूप में जाना जाता था । मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य (दुर्गासप्तशती) वाले भाग में महामायी तथा योगनिद्रा कहा गया है । मधु और कैटभ से पीड़ित ब्रह्मा, विष्णु इसी योगनिद्रा की स्तुति करते हैं ।

तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्र-हृदय-स्थितः ।
विबोधनार्थाय हरेर्हरि-नेत्रकृतालयाम् ।।
ब्रह्मोवाच ।।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम्
स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुल-तेजसः।।[4]

1- शांखायान श्रौत सूत्र, 4/29/1

2- बौधायन धर्म सूत्र, 2/5/6

3- बौधायन गृह्यसूत्र, 3/3/2-5

4- मार्कण्डेय पु०, 1/70-72

एकादश अध्याय के 8 से 23 तक के श्लोकों में देवी को नारायणी शब्द के सम्बोधित करते हुए उनकी स्तुति की गयी है -

नारायणि । नमोऽस्तु ते ।

बौ० गृ० सू०[1] मे उल्लिखित महाकाली विशेषण उनके रौद्र रूप का द्योतक है । इस अंश में देवी की पूजा में केवल वैदिक मन्त्र ही प्रयुक्त हैं जिनमें अधिकांश अग्नि तथा अप् से सम्बद्ध हैं । दुर्गा की यह उपासना-पद्धति पुराण काल के सदृश है अन्तर केवल इतना है कि सूत्रकाल के वैदिक मन्त्रों के स्थान पर पुराण काल में लौकिक स्तोत्र तथा मन्त्र हैं । यहाँ उनका भगवती नाम लाल कमल पुष्पों द्वारा उनकी पूजा होने का तथ्य भी विचारणीय है ।

रामायण में देवकथाओं का जो स्वरूप प्राप्त होता है उसमें सूत्रग्रंन्थों में वर्णित दुर्गा का विरल रूप अधिक स्पष्ट हो जाता है । केनोपनिषद की उमा अब निश्चित रूप से शिव की पत्नी हैं ।[2] उन्हें हिमालय की पुत्री माना गया है ।[3] पर्वत की पुत्री होने के कारण उनका सर्वाधिक प्रचलित नाम पार्वती है ।[4] भवानी, रूद्राणी, शर्वाणी, ईशानी आदि शिव के विशेषणों से स्त्री प्रत्ययों द्वारा

1- बौ० गृ० सू० , 3/3/2-5

2- बालकाण्ड , 35/16-29, 36/14-29, 4-312; उत्तरकाण्ड, 4/28-30, 13/22, 16/32 आदि

3- - - - - ददौ शैलेश्वरः सुताम् ।
रूद्रायाप्रतिरूपाय उमां लोकनमस्कृताम् ।। बाल० 35/20

4- उत्तर॰ , 4/27

बने विशेषण अब उनके लिये बहुत कम प्रयुक्त होते हैं । प्राचीन काल में दुर्गा शिव की पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित थी इसलिये इन विशेषणों का औचित्य था । किन्तु महाकाव्य काल में पार्वती के स्वयं के कई नाम हैं । रामायण में अनेक स्थानों पर पार्वती के लिये आदर सूचक देवी शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[1] यद्यपि पार्वती का रूप यहाँ परवर्ती महाकाली के समान रौद्र नही अपितु अन्य प्रभावशाली तथा तेजस्वी है । पार्वती की कल्पना रामायण में दयालु, उदार तथा वरप्रदात्री रूप में है । महाभारत में आकर उनके स्वरूप का दूसरा पक्ष भी दिखायी पड़ता है जिसमें वे उग्र तथा विनाश कारिणी है यद्यपि वे मनुष्य या देवों को पीड़ित करने वाले दैत्यों का ही विनाश करती हैं । महाभारत काल में क्रमश: उच्च एवं निम्न वर्ग के धार्मिक विश्वासों की खाई पटने लगी थी । शनै:शनै: निम्न वर्ग में पूज्यमान देवी के भयंकर रूपों एवं उच्चवर्ग की अम्बिका के सौम्य रूपों का सम्मिश्रण हो गया और मातृ-शक्ति अनेक नामों, रूपों तथा आकारों में बँदकर हिन्दू धर्म में परित्याप्त हो गयी ।

महा० विराटपर्व, छठे अध्याय में अज्ञातवास के लिये राजा विराट के राज्य में जाते हुये युधिष्टिर द्वारा किये गये दुर्गा की स्तुति में एक महत्वपूर्ण श्लोक है ।[2] जिसमें दुर्गा को विन्ध्यनिवासिनी तथा मद्य मांस एवं पशु से प्रसन्न होने वाली बताया गया है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि रामायणकालीन

1- बाल० 35।21, 36।6

2- विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठ तव स्थानं हि शाश्वतम् । मांस पशुप्रिये ।।

उच्चवर्गीय समाज में पूजित पार्वती में ये विशेषताएं नही थी । इसके विपरीत आज भी विन्ध्य के वनों में निवास करने वाली भील, शबर इत्यादि जातियाँ इस कराल देवी की उपासना करती हैं और उन्हे मद्य, मांसादि चढ़ाती हैं । देवी के विन्ध्यनिवासिनी जैसे नाम भी इसी ओर संकेत करते हैं ।

भीष्म पर्व में श्रीकृष्ण के निर्देश से अर्जुन भी युद्ध में विजय के लिये दुर्गा की स्तुति करते हैं जिसमें प्रयुक्त नामों से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल तक दुर्गा ने भारत की अनेक जातियों की अनेक स्वभाव वाली देवियों को अपने में आत्मसात कर लिया था । ये विशेषण इस प्रकार है - काली, भद्रकाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, विजया, कौशिकी, उमा, सरस्वती, सावित्री इत्यादि ।

नमस्ते सिद्ध सेनानी आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कपालि कपिले कृष्णपिंगले ।।
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तुते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ।।
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरण भूषिते ।।
अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटक धारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ।।
महिषासृक् प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ।।
उमे शाकंभरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि धूम्राक्षि च नमोऽस्तु ते ।।

वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ।। - महा० भीष्म०23/4-।।

इस अर्जुन की स्तुति में प्रयुक्त 7 वें श्लोक में देवी को कृष्ण की बहन नन्दगोपकुलोद्भव कहा गया है । यह हरिवंश पु०[1], भागवत पु०[2] इत्यादि में कहा गया है कि विष्णु के आदेश से योगमाया यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुयीं । और अष्टभुजाओं से युक्त दुर्गा का रूप धारण कर कंस को चेतावनी देकर अदृश्य हो गयीं । भागवत पु०[3] में इसके आगे के श्लोक में उल्लिखित है कि इस घटना के अनन्तर वह देवी अनेक स्थानों में विभिन्न नामों से पूजी जाने लगीं । श्रीमद्भागवत के एक महत्वपूर्ण प्रसंग से ज्ञात होता है कि उस समय कामनाओं की पूर्ति के लिये देवी के भयंकर रूप भद्रकाली की उपासना नरबलि देकर होती थी ।

भागवत पु०[4] में चित्रित भद्रकाली उच्च हिन्दू - धर्म में पूजी जाने वाली मंगलमयी तथा सौभाग्यप्रदात्री देवी नहीं हैं । बल्कि बर्बर जातियों के धार्मिक विश्वासों की नरबलि एवं पशुबलि से प्रसन्न होने वाली रक्तपिपासिनी एवं भयंकर देवी हैं । इस विषय में हरिवंश पु० का एक श्लोक स्मरणीय है जिसमें देवी को

1- हरिवंश पु० - 2/2/37

2- भागवत पु० - 10/4/1-13

3- इतिप्रभाष्यं तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ।।

4- भागवत पु० - 5/9/12, 5/9/18

शबर, बर्बर तथा पुलिन्द आदि वन्य जातियों द्वारा पूजित[1] तथा सुरा और मांस की प्रेमी कहा गया है ।[2]

प्राचीन पुराणों में हमें देवी के ब्राह्मण धर्म में विकसित सौम्य तथा लौकिक क्षेत्र में विकसित घोर, दोनों ही रूप दिखायी देते हैं । विष्णु पु0[3] में शंकर ने अपने स्त्री रूप को सौम्य तथा असौम्य कई रूपों में विभाजित किया है । अग्नि पु0[4] में दुर्गा की स्तुति में उनका सौम्य तथा दयाशील रूप कल्पित किया गया है । उनकी पूजा सारा संसार करता है । मत्स्य पु0[5] में उन्हें जगत्माता, सर्वशक्तियों की अधिष्ठात्री तथा कल्याणमयी कहा गया है । वायु पु0[6] का उल्लेख है कि देवी पहले आधी श्वेत तथा आधी काली थी और बाद में उन्होंने अपने दोनों रूपों को अनेक भागों में विभक्त किया । यह अंश देवी की उपासना से सम्बद्ध दो भिन्न-भिन्न धाराओं की ओर संकेत करता है । इन दोनों धाराओं के देवी के विभिन्न रूपों को एक ही मातृशक्ति से सम्बद्ध करने और इस शक्ति को जगत् की आदिकारणभूता परब्रह्म की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय मार्कण्डेय पु0 में उल्लिखित देवी माहात्म्य को है । यह देवी माहात्म्य दुर्गासप्तशती नाम से आज भी देवी के भक्तों का कंठाहार बना हुआ है । मा0 पु0 के 81 से 93

1- शबरे बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता - हरिवंश पु0 1/3/37

2- सुरामांसप्रिया, हरिवंश पु0 1/3×39

3- सौम्यासौम्यैस्तदा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः ।-विष्णु पु0 1/7/12-15

4- अग्नि पु0 96/100-106

5- मत्स्य पु0 13/18 तथा आगे

6- वायु पु0 9/82

तक के 13 अध्याय दुर्गासप्तशती कहे जाते हैं[1]। इसमें देवी को महामाया-रूपिणी, परब्रह्म की शक्ति परम-विद्या रूप में मोक्ष की प्रदात्री इत्यादि कहा गया है। वही सांख्य[2] में वर्णित आद्य-प्रकृति हैं तथा सत-असत् की जननी हैं। विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण आदि देवों में जो भी शक्ति तथा सामर्थ्य है वह सब उसी का रूप है। इसीलिये 82 वें अध्याय में महिषासुर वध के लिये प्रत्येक देवता के शरीर से निकले तेज के पुंजीभूत होने से उनकी उत्पत्ति बतायी गयी है। 85 वें अध्याय में देवी को ही चेतना, बुद्धि, निद्रा, शक्ति तृष्णा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, दया इत्यादि बताया गया है।

सभी देवियों को एक ही मातृशक्ति पार्वती से सम्बन्धित करने का मा० पु० का प्रयास प्रशंसनीय है। देवों की स्तुति पर, पार्वती के शरीर से चण्ड, मुण्ड, शुंभ, निशुंभ महिषासुर तथा मधु कैटभ आदि राक्षसों का विनाश करने के लिये देवी का जन्म होता है।[3] देवी के शरीर से कौशिकी के निकल जाने पर पार्वती काली

1- ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।। मार्कण्डेय पु०81/55
- सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।। मा० पु०81/57 और 58

2- महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।। मा० पु०81/78
सौम्या सौम्यतरा शेषसौम्येभ्यस्त्वति सुन्दरी।
परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।। मा० पु०81/82

3- तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत् साऽपि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।। मा० पु० अध्याय, 85/38

हो जाती हैं । अम्बिका के ललाट से भद्रकाली का जन्म होता है[1] । चण्ड - मुण्ड वध करने से उनका नाम चामुण्डा पड़ता है ।[2] अम्बिकाके शरीर से चंडिका का जन्म होता है ।[3] युद्ध में देवी की सहायता करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, कार्तिकेय आदि देवों की शक्तियाँ भी उनके शरीर से निकल कर आती हैं । और जब शुंभ देवी को ताना देता है कि वे इस प्रकार दूसरों के बल पर गर्व कर रही हैं तो वे कहती हैं कि "मैं ही तो संसार की एकमात्र शक्ति हूँ और दूसरा कौन है ? वे सब मेरी ही तो विभूतियाँ हैं ।" और शुम्भ के देखते - देखते सारी शक्तियाँ देवी के शरीर में विलीन हो जाती हैं।

ग्यारहवें अध्याय में देवी विन्ध्याचल निवासिनी, रक्तदन्तिका, शताक्षी, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमादेवी तथा भ्रामरी आदि देवियों को अपनी ही विभिन्न रूप एवं विभूतियाँ घोषित करती हैं ।

शक्तिपूजा का यह चरम उत्कर्ष है । पार्वती से इस परम शक्ति का तादात्म्य होने के कारण और शिव की परमब्रह्म के रूप में मान्यता होने के कारण शिव और पार्वती हिन्दू धर्म में अद्वितीय महत्व रखते हैं । अर्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति की एक दूसरे के संपूरक के रूप में कल्पना भी इसी से उद्भूत हुई है ।

बलावलेपाद् दुष्टे ! त्वं मा दुर्गे ! गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्धयसे यातिमानिनी ।।

देव्युवाच - एकैवाऽहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट ! मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतय: ।।
तत: समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत् तदाऽम्बिका ।।

देव्युवाच - अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।। मा० पु०, 90/3-8

शक्ति के विविध रूप

नाना प्रपंचात्मक यह सृष्टि किसी शक्ति विशेष से नियन्त्रित एवं संचालितहोकर विविध रूपों को जगत् के समक्ष प्रस्तुत करती है, उसी शक्ति या सामर्थ्य के प्रतिपादित करने की आचार्यों की विविध अवधारणायें परिलक्षित होती हैं । स्वरूप की दृष्टि से शक्ति शब्द शक्लृशक्तौ धातु से पाणिनीय व्याकरणानुसार क्तिन्प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है । कर्त्ता अथवा करण अर्थ में क्तिन् का विधान करने पर शक्नोति इति शक्ति: अथवा शक्यते अनया इति शक्ति: इन दो अर्थों में यह शब्द निष्पन्न होता है । दुर्गासप्तशती में भी -"या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता"-इत्यादि श्लोक में देवी की शक्ति के रूप में आराधना की गयी है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में मूल प्रकृति को ही आद्या शक्ति के रूप में स्वीकार कर उसे त्रिगुणात्मिका प्रदर्शित किया गया है । इसी प्रकार विष्णु पु0 में भी शक्ति को परा, अविद्या एवं क्षेत्रज्ञ भेद से स्वीकार किया गया है -

विष्णो: शक्ति: परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा ।
अविद्या-कर्म संज्ञान्या, तृतीया शक्तिरिष्यते ।।[1]

शिव पुराण में तो यहाँ तक स्वीकार किया गया है कि शक्ति के अभाव में किसी भी देवत्व की भी स्थिति सम्भव नहीं है क्योंकि देवता कभी भी शक्ति निरपेक्ष नहीं हो सकते हैं ।[2] लक्ष्मीतन्त्र में शक्ति को स्वीकार करते

1- विष्णु पुराण 6/7/67

2- एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतो: स्थिता ।
न शिवेन बिना शक्ति: न च शक्त्या बिना शिव: ।। - शिव पु0 वायवयी संहितायां उत्तरखण्डे 4/5

हुये उसके पंचविध कार्यों को स्वीकार किया है - तिरोभाव, सृष्टि, स्थिति, संहृति और अनुग्रह ।

देवीभागवत में बताया गया है कि माया रचित सम्पूर्ण सृष्टि शक्ति के द्वारा ही संचालित है । शक्ति स्वतः ही प्रत्यक्ष रूप में इसकी उद्घोषणा करती है -

मन्मायाशक्ति-संक्लृप्तं, जगत्सर्वं चराचरम् ।

साप्मित्तः पृथग्माया, नास्त्येव परमार्थतः ।।[1]

शक्ति की संख्या एवं प्रकारों के विषय में विविध मत प्राप्त होते हैं । वस्तुतः वह शक्ति एक होते हुये भी अनन्त है तथा अनन्त होते हुये भी एक है फिर भी व्यवहार निर्वाह की दृष्टि से हम उसके तीन रूप मान सकते हैं - इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति । सृष्टि की आदि कारण रूपा देवी प्रकृति कहलायी । योग के द्वारा यह आत्मा [परमात्मा] दो रूपों में हो गयी - दक्षिण अर्धांग पुरूष और वाम अर्धांग प्रकृति हुयी । वह प्रकृति आदिस्वरूपा माया, नित्या और सनातनी है । गीता के 'प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' से यह सिद्धान्त मेल खाता है । इस प्रकार जैसे आत्मा [ब्रह्म], वैसे ही शक्ति है उदाहरणस्वरूप - जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति है वैसे ही ब्रह्म में प्रकृति है ।

इस प्रकृति के आविर्भाव का कारण श्रीकृष्ण की सिसृक्षा है उन्हीं की आज्ञा तथा भक्तों के अनुरोध से सृष्टिक्रम में वह प्रकृति पाँच प्रकार की है ।

1- देवीभागवत॰ स्कन्ध 7, अ0 33 श्लोक - ।

प्रकृति के जिन पाँच रूपों की व्याख्या की गयी है उनके नाम ब्रह्मवैवर्त पुराण के द्वितीय खण्ड के प्रथम श्लोक में बताये गये हैं -

गणेशजननी - दुर्गा - राधा लक्ष्मी: सरस्वती ।

सावित्री वैसृष्टि - विधौ प्रकृति: पंचधास्मृता ।।

दुर्गा

दुर्गा को गणेशमाता कहा गया है । दुर्गा का जो रूप मार्कण्डेय पु० में वर्णित है उसमें दुर्गा जगतमाता भले ही हो किन्तु वे किसी व्यक्तिगत मातृत्व को ग्रहण न कर सकीं, वहीं दुर्गा देवी की यह प्रतिज्ञा अन्त तक निभती है -

"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति ।

यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।। - सप्तशती अ० 5/120

वे किसी को पति रूप में ग्रहण नहीं करती अपितु दैत्यों का विनाश करके देवताओं के देखते - देखते अन्तर्ध्यान हो जाती हैं । वह देवों के कार्य-सिद्धि के लिये आवि - र्भूत होती रहती हैं अत: उन्हें नित्या भी कहा जाता है । मा० पु० में देवी माहात्म्य प्रसंग में वर्णित है कि शुम्भ और निशुम्भ के द्वारा जब सम्पूर्ण यज्ञीय देव-भाग अपहृत कर लिया गया तथा सम्पूर्ण देवगण असमर्थ हो गये तभी उन्हीं देवों ने अपराजिता को स्मरण किया । इन्हें सिद्धेश्वरी, सिद्धरूपा, माता, अनन्ता कहा गया है । दुर्गा का सर्वप्रथम अवतरण कृष्णदेह से हुआ । दुर्गा के ही अंश से सभी स्त्रियां उत्पन्न हैं । यह दुर्गा विविध रूपों में हैं -

---

क्षुत्पिपासादय: श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमाधृति: ।
शान्तिर्लज्जा तुष्टि-पुष्टि-भ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी ।।

दुर्गा के प्रथम आराधक सुरथ और द्वितीय रावणवध के इच्छुक राम हुए । मा० पु० में ब्रह्म वै० के अनुशा को दुर्गा माना गया है ।

दुर्गा भी उमा का एक रूप हैं । मुण्डकोपनिषद् में दुर्गा जातवेदसी, काली तथा अग्नि के लपटों के रूप में मानी गयी हैं ।[1] दुर्गा की स्तुति में दुर्गा के अनेक नामों का वर्णन हुआ है । महा० में दुर्गा ही पार्वती तथा महादेवी कही गयी हैं और महादेवी नाम को कुछ स्थान पर लक्ष्मी के लिये प्रयुक्त किया गया है ।[2] महाकाव्य में भी युधिष्टिर ने दुर्गा की स्तुति अनेक नामों से की है । दुर्गा-स्तुति राज्य से च्युत हुये युधिष्ठिर ने विजय एवं रक्षा करने के लिये की है जिससे प्रसन्न होकर दुर्गा ने उन्हें युद्ध में विजय प्राप्त करने तथा निष्कंटक राज्य करने का आशीर्वाद दिया ।[3] महाभारत के अन्य स्थल पर अर्जुन द्वारा दुर्गा की स्तुति की गयी है जिससे प्रसन्न होकर दुर्गा देवी ने अर्जुन को विजय - प्राप्तार्थ अमोघ वर प्रदान किया ।[4] इस दुर्गा स्तोत्र का पाठ करने से व्यक्ति सब प्रकार के भय से छूट जाता है । महाभारत के वर्णन में दुर्गा के दो रूप स्पष्ट हुआ - §1§ कल्याणकारी रूप और §2§ संहारकारी रूप । कल्याणकारी रूप में दुर्गा

1- मुण्डक उप० 1/2/4
2- महा० अनु० पर्व 62/6
3- विराट प० 4/27-29
4- भविम प० 23/18-19

दशभुजी, सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी तथा जगद्धात्री हैं, तथा भयानक एवं संहारकारिणी के रूप में काली, मुक्तकेशी, चिन्मुष्टिका, जगद्गौरी तथा तारा हैं। महा0 में आपत्ति से बचाने के कारण दुर्गा कही जाती हैं किन्तु पुराणों में दुर्ग नामक दैत्य का संहार करने के कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा। इस देवी का पार्वती रूप सौम्य तथा दुर्गा युद्ध प्रिय रूप है।

दुर्गा का तीसरा रूप चण्डी है जिसका प्रसंग महा0 में वर्णित दुर्गा स्तोत्र तथा पुराणों में, विशेष रूप से मा0 पु0 में, अधिक विस्तृत वर्णन हुआ है। मा0 पु0 तथा महा0 में दुर्गा का दूसरा नाम महामाया आया है। दुर्गा के एक कात्यायनी रूप का भी महाभारत में उल्लेख मात्र हुआ है तथा वामन पु0 में प्रसंग प्राप्त होता है। इस प्रकार महा0 में आये दुर्गा के अनेक नामों एवं सूक्ष्म रूपों का पुराणों में विस्तार हुआ है।

रामायण में राम की पूजा से प्रसन्न होकर दुर्गा ने उन्हें अपनी अपार शक्ति प्रदान की जिससे वे विजयी हुये।[1] यहाँ दुर्गा का दशभुजी रूप है। दुर्गा के इसी रूप को अपने वार्षिक पर्व के अवसर पर बंगालियों द्वारा अब भी स्थापित किया जाता है, किन्तु इसके मूल में महाभारत के सूत्र ही अन्तर्निहित हैं।

मा0 पु0 में वर्णन है कि शुम्भ, निशुम्भ इत्यादि राक्षसों को मारने के लिये दुर्गा ने दस रूपों को धारण किया - दुर्गा, दशभुजा, महिषमर्दिनी, जगद्धातृ, काली, मुक्तकेशी, चिन्मुष्टिका, तारा तथा जगद्गौरी।

1- रामायण, 1/62/77-87

दुर्गा रूप में देवी दैत्यों का संहार करती हैं । दशभुजा रूप में देवी धूम्रलोचन चण्ड, मुण्ड, शुम्भ, निशुम्भ दैत्यों का वध करती हैं, सिंहवाहिनी रूप में दैत्यों की सेना का नाश, महिषमर्दिनी रूप में शुम्भ का वध और जगद्धातृ रूप में वे विश्व की जननी हैं । यह दुर्गा का अत्यन्त कल्याणकारी एवं मनमोहक रूप है । महाभारत काल में काली को दुर्गा का अन्य रूप माना गया है किन्तु इस काल में इनका क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं हो पाया था । पुराणों में काली रूप में दुर्गा प्रदर्शित की गयी हैं । काली रूप में इन्होंने चण्डी ‡अपने ही दूसरे रूप‡ की सहायता से रक्त बीज को मारा था । रामायण में सीता को काली रूप माना गया है ।

इतिहास काल के इन्हीं आधारों पर पुराणों में काली बड़ी ही भयंकर स्वरूप वाली देवी मानी गयी हैं । स्कन्द पुराण[1] में चण्डी को काली का ही रूप माना गया है । दुर्गा का मुक्तकेशी रूप बड़ा भयानक है और दैत्य की सेना का संहार करती हैं, तारा रूप में शुम्भ का वध और छिन्नमुष्टका रूप में निशुम्भ का वध करती हैं । जगद्गौरी गौर वर्ण वाली हैं तथा देवों और मनुष्यों द्वारा पूजी जाती हैं । दुर्गा के प्रथम पाँच रूप कल्याणकारी तथा शेष पाँच रूप अत्यन्त भयंकर एवं संहारकारी है । दुर्गा का प्रत्यंगिरा रूप बहुत कम प्राप्त होता है और ये बहुत कम व्यक्तियों द्वारा पूजी जाती हैं । अन्नपूर्णा रूप में दुर्गा सम्पूर्ण विश्व की अन्नदात्री हैं ।

1- स्कन्द पु0 23/63-72

दुर्गा सप्तशती में नवदुर्गा का स्वरूप वर्णित है । जिसमें पहली शैलपुत्री, दूसरी ब्रह्मचारिणी, तीसरी चण्डघण्टा, चौथी कूष्माण्डी, पाँचवी स्कन्दमाता, छठी कात्यायनी, सातवीं कालरात्रि, आठवीं महागौरी और नवीं सिद्धदात्री - ये नवदुर्गा प्रसिद्ध हैं ।[1] यहाँ नवदुर्गा के केवल नाममात्र गिनायें गये हैं । मार्कण्डेय पुराण में केवल कात्यायनी का ही स्वरूप है । हरिवंश पुराण के शक्ति विषयक प्रसंगों में नवदुर्गा का समावेश किया गया है ।

उमा और पार्वती

पुराणों में उमा का विस्तृत विवेचन है । हरिवंश पु0 में शक्ति को बहुरूप कहा गया है तथा मुख्यत: उसके दो रूपों - कृष्णभगिनी आर्या एकनंशा तथा शिव की अर्धांगिनी पार्वती का वर्णन है । शक्ति के एक रूप का विकास एवं उसमें दूसरे का समन्वय मातृशक्ति के एकत्व की पुष्टि करता है । इन रूपों की स्तुति में अनेक नामों का समावेश उनकी परस्पर अभिन्नता एवं शक्ति तत्व की व्यापकता का परिचय देता है । इस पु0 में हिमवान की तीनों कन्याओं - अपर्णा,

---

1- प्रथमं शैलपुत्रीति द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ।।
पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनी तथा ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ।।
नवमं सिद्धिदात्रीति नवदुर्गा: प्रकीर्तिता: ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ।। - वराह पुराण से सप्तशती में संकलित श्री हरिहर ब्रह्म विरचित देवी-कवच ।

एकपाटला, एकपर्णा का उल्लेख है । कठोर तपस्या करने के कारण अपर्णा का उमा नाम पड़ा । इनमें उमा सर्वाधिक शक्तिशालिनी थीं ।

महाभारत में उमा सर्वश्रेष्ठ देवी रूप में स्वीकृत हैं । महाभारत में उमा के तीन रूप उल्लिखित हैं - उमा, पार्वती और दुर्गा । उमा की ह्री, श्री, कीर्ति, द्युति, पुष्टि अपने पतियों के साथ सदैव रक्षा करती हैं ।[1] रामायण में 'उमासहायोदेवेश: ' का प्रसंग प्राप्त है ।[2] महा० में वह पतिव्रता तथा साध्वी है और सावित्री, वारुणी, रोहिणी इत्यादि के साथ रहती हैं ।[3] उमा सभी स्त्रियों की गति हैं ।[4]

जब उमा ने पर्वतराज हिमालय के घर में जन्म लिया तभी से वह पार्वती हो गयीं । पार्वती से साम्य रखने वाले इनके पर्वतराज[5] - कन्या, शैलसुती[6], गिरीशा,[7] पर्वतराजात्मा,[8] शैलराज-सूता त्रिभुवनेश्वरी,[9] विन्ध्यवासिनी,[10] माहेश्वरी[11] इत्यादि नाम महाभारत में तथा पर्वती नाम रामायण में मिलता है ।[12] वह सुरकार्यकारिणी तथा लोकसंतानकारिणी हैं । इनका मूल पार्वती रूप

1- महा० वन प० 37/33
2- महा० रामा० 6/60/11
3- महा० अनु० प० 146/3-5
4- महा० अनु० प० 148/8-10
5- आदि प० 187/4
6- अनु० प० 140/23
7- महा० अनु 146/2
8- महा० अनु० 140/36
9- महा० विराट प० 6/1
10- महा० आश्वमे० 43/15
11-
12- रामा० 1/36/21

कृष्ण वर्ण का था किन्तु इनके गौरी रूप की कल्पना सूक्ष्म रूप से महाभारत काल में हुई है जो पुराणों में जाकर विस्तृत हो गयी । हरिवंश पु0 प्रद्युम्न संग्राम में विजय हेतु पार्वती की स्तुति में शिवप्रिया, गौरी, महादेवी, सिंहवाहिनी दुर्गा इत्यादि रूप दिया गया है । वैसे तो गौरी वरूण की स्त्री थीं किन्तु महाभारत में पार्वती को कहा गया है । शक्ति का यह नाम नवदुर्गा की महागौरी और सिद्धिदात्री का समन्वित रूप जान पड़ता है ।

पार्वती की उत्पत्ति के विषय में महाभारत के सूक्ष्म रूपों के आधार पर पुराणों में नवीन कल्पनायें हुयीं हैं । वराह पु0 में इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की पारस्परिक पड़ने वाली दृष्टियों से हुयी हैं । ब्रह्मवैवर्त में भी उत्पत्ति का वर्णन है । संसार की सारी शक्तियाँ इन्हीं की अंशभूता हैं । वे ही जगज्जननी, जगत्-पालयित्री कही गयी हैं । पार्वती के विषय में विस्तृत वर्णन शिव महापुराण में मिलता है ।

लक्ष्मी

ऋग्वेद में श्री सूक्त तथा ऋग्वेद के दशम मण्डल के परिशिष्ट में लक्ष्मी का स्वरूप स्पष्ट है । ब्रह्मवैवर्त पु0 के अनुसार श्री कृष्ण के वाम भाग से लक्ष्मी देवी दो भागों में - राधिका और लक्ष्मी - उत्पन्न हुयीं । इसी पु0 में लक्ष्मी की समुद्र से उत्पत्ति का वर्णन है । और इन्हें शुद्धस्वरूपा और पद्मा कहा गया है । ये सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवी हैं और वैकुण्ठ, स्वर्ग, राजाओं और गृहों में रहती हैं तथा क्रमशः महालक्ष्मी, स्वर्गलक्ष्मी, राजलक्ष्मी और गृहलक्ष्मी कहलाती

हैं ।[1] लक्ष्मी के प्रसंग में ब्रह्मवैवर्त के प्रकृतिखण्ड के 36 वें अध्याय में ज्ञान सार नामक अंश विशेष की रचना है । यह अंश देवीभागवत में उपलब्ध नहीं है । लक्ष्मी पूजन के मन्त्र प्रकृतिखण्ड के 39 वें अध्याय के 15 से 40 वें श्लोक तक है । तुलसीरूप में लक्ष्मी के अवतरण की कथा विस्तारपूर्वक प्रकृतिखण्ड के 13 वें से 23 वें अ0 तक वर्णित हैं । इसका विशेष भाग शिव पुराण में भी ज्यों का त्यों मिलता है । पद्म पुराण के अनुसार लक्ष्मी चराचर में व्याप्त हैं ।[2]

विष्णु पु0 के नवम अध्याय में लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन है ।[3] इसमें इन्द्र द्वारा लक्ष्मी की स्तुति करने पर प्रसन्न होकर लक्ष्मी ने कभी त्रिलोकी को न छोड़ने का वचन दिया । उनके परशुराम रूप में पृथ्वी, रामावतार रूप में सीता और कृष्णावतार रूप में रुक्मिणी लक्ष्मी ही हुयीं । ब्रह्माण्ड पु0 के अनुसार समुद्रोद्भूत लक्ष्मी ने विष्णु के वक्षस्थल का समाश्रय लिया ।[4] वैदिक काल की लक्ष्मी

1- ब्रह्मवैवर्त्त पु0 2/1/22-30

2- मेरुकण्ठे सुखासीनां लक्ष्मीं पृच्छति केशवः ।
केनोपायेन देवि त्वं नृणां भवति निश्चला ।।

3- त्वम माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम् ।। विष्णु पु0, नवम अध्याय 126

4- तया विलोकिता देवा हरिवक्षस्थलस्थया । ब्रह्माण्ड पु0, 1/8/35
लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्वृत्तिमागताः । वि0 पु0, 1/9/106
पश्यति स्म च सा देवि विष्णुवक्षस्थलालया । ब्रह्माण्ड पु0, 4/10/82

देवी विष्णु से नहीं अपितु आदित्य से सम्बन्धित थीं उदाहरणार्थ वा० स० में लक्ष्मी को उनकी पत्नी कहा गया है ।[1] वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों में अन्यत्र भी लक्ष्मी को विष्णु से सम्बन्धित किया गया है उदाहरणार्थ विष्णु स्मृति में लक्ष्मी सदा विष्णु के समीप रहती हैं ।[2]

महाभारत में लक्ष्मी के तीन रूप - कमला रूप, विष्णु की पत्नी रूप और भाग्य देवी रूप - की कल्पना की जा सकती है । लक्ष्मी सब देवियों के साथ मिलकर अर्जुन की रक्षा करती हैं [3] यह भाग्य देवी के रूप में स्वीकृत हैं और धनदात्री हैं ।[4] यह दुस्सहा, विधित्सा, भूति, लक्ष्मी तथा श्री के नाम से पुकारी जाती हैं ।[5] लक्ष्मी देवी स्वधा, स्वहा, शची आदि देवियों के साथ स्थित रहकर सदैव सबका कल्याण करती हैं । महा० में वर्णित इनके भाग्यदेवी का स्वरूप सबके द्वारा स्वीकृत है । लक्ष्मी[6] को आज भी ऐश्वर्य और धन की देवी स्वीकार किया जाता है और उनकी पूजा होती है । ऐश्वर्य और समृद्धि आदि

1- श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे - - - - । - वा० संहिता, 31/22

2- स्थिता सदाहं मधुसूदने तु । - विष्णु स्मृति, 99/22

3- महा० वन० प०, 37/33

4- महा० अनु० प०, 31/6-7

5- महा० शान्ति प०, 225/7-8

6- महा० द्रोण प०, 94/44

से लक्ष्मी को सम्बन्धित करने की प्रवृत्ति वैदिक काल से चली आ रही है । अन्यत्र उनका तादात्म्य पुण्य से किया गया है ।[1]

लगभग छठी शताब्दी के लक्ष्मी तन्त्र नामक ग्रन्थ में लक्ष्मी को ज्ञान-स्वरूप और परम ब्रह्म वासुदेव की परम-शक्ति कहा गया है ।[2] इस ग्रन्थ में वस्तुत: लक्ष्मी और विष्णु के एक होते हुये दो रूपों में व्यवस्थित हैं ।[3] इन दोनों में अपृथक्सिद्धि सम्बन्ध होने के कारण धर्मभूत लक्ष्मी का सर्गादि कर्तृत्व धर्मिभूत विष्णु में पर्यवसित हो जाता है ।[4] इस ग्रन्थ में इसे जगत्प्रकृतिभाव कहा गया है ।[5] जगत रूप में होने के लिये लक्ष्मी शब्द ब्रह्म के रूप को छ: रूपों में धारण करती हैं - वर्णाध्व, कलाध्व, तत्वाध्व, मन्त्राध्व, पदाध्व और भुवनाध्व अपनी शक्ति और अपनी इच्छा से ही लक्ष्मी जीवों पर अनुग्रह करने के लिये इन षडध्व रूपों को स्वीकार करती हैं । षडध्व की भाँति षट्कोष लक्ष्मी के छ: रूप हैं - शक्ति, माया, प्रसूति, प्रकृति, ब्रह्माण्ड और जीवदेह - यही छ: कोष हैं ।

पंडितराज जगन्नाथ ने अपने 'लक्ष्मी लहरी' में लक्ष्मी के रूप सौन्दर्य इत्यादि का सुन्दर चित्रण किया है ।

1- पुण्या: लक्ष्मी: - - - - । - अथर्व0, 2/5/6

2- लक्ष्मी तन्त्र 14/1,2

3- तावावां तत्वमेकं तु द्विधाभूतौ व्यवस्थितौ । - ल0 त0, 15/10

4- न विना देवदेवेन स्थितिर्मम हि विद्यते ।
मया विना न देवस्य स्थितिर्विष्णो: हि विद्यते ।। - ल0 त0, 11/38

5- जगत्प्रकृतिभावो मे य: सा शक्तिरितीर्यते । - ल0 त0, 2/29

सरस्वती
======

सरस्वती बुद्धि, विद्या, ज्ञान की देवी और मनुष्यों को मेधा, प्रतिभा और स्मृति देने वाली हैं ।[1] वह वेदशास्त्रादि की व्याख्या एवं बोधस्वरूपा, विचार प्रादुर्भूत करने वाली, ग्रन्थकर्तृत्व शक्ति प्रदान करने वाली तथा सभी संगीतों की मूलरूप हैं ।[2] सरस्वती वीणा और पुस्तक धारण करने वाली हैं,इस प्रकार वाणी के नाद एवं वेद दो रूप हैं ।[3] सभी विद्याओं के रूप में वही हैं । वह श्रीयुक्त जगत की अम्बिका हैं ।[4] सरस्वती के पति ब्रह्मा नहीं अपितु विष्णु बताये गये हैं ।[5] माघ शुक्ल पंचमी को विद्यारम्भ का शुभ अवसर माना गया है । षोडशोपचार पूर्वक सरस्वती की पूजा का विधान बताया गया है ।[6] सरस्वती का मन्त्र है - 'ॐ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' ।[7] वायु पु0 में देवी प्रसंग में महादेवी के कुल में प्रज्ञा और श्री ये दो देवियां मुख्य हैं ।[8] ब्रह्म वै0 में सरस्वती ने नदी रूप

1- ब्रह्म वैवर्त 2/1/31-32

2- वही - 2/1/33-35

3- वही - 2/1/36-38

4- वही- 2/1/36-38

5- वही - 2/4/22

6- वही - 2/4/23

7- वही - 2/4/52

8- महादेवि कुले द्वे तु प्रज्ञाश्रिच प्रकीर्त्यते ।
आभ्यं देवी सहस्राणि यै व्याप्तिमखिलं जगत् ।। - वायु0 पु0,नवम अ0 - 98

कैसे धारण किया, यह वर्णित है । सरस्वती का माहात्म्य क्यों है ? इसका कारण वेद में है । श्री कृष्ण ने पहले इन्हीं देवी की पूजा की, उसी समय से इस देवी की पूजा प्रचलित हुई । देवीभागवत के अनुसार अनन्तशक्ति ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को सरस्वती, लक्ष्मी और काली – इन तीन शक्तियों को क्रम से प्रदान किया । इस पुराणानुसार सरस्वती ब्रह्मा की स्त्री हैं किन्तु ब्रह्मवैवर्त के अनुसार लक्ष्मी और सरस्वती दोनों चतुर्भुज नारायण की स्त्री हैं । विद्या की कामना के लिये प्रत्येक हिन्दू के घर में सरस्वती देवी की पूजा होती है वेद में जैसे श्री सूक्त द्वारा लक्ष्मी की पूजा आदि निर्दिष्ट हुयी है वैसे सरस्वती का सूक्त भी देखा जाता है ।

सरस्वती महाभारत काल में अपनी अलग विशेषता ग्रहण करती हैं । इसके प्रत्येक पर्व में नर-नारायण के साथ सरस्वती की वन्दना की गयी है ।[1] महाभारत में सरस्वती के वाग्देवी, वेदमाता, सावित्री और सरिता रूप हैं ।[2] पुराणों में सरस्वती विजय तथा विज्ञान की देवी, वेदों की माता तथा देव - नागरी लिपि की मूल स्रोत है । मत्स्य पु0 के अनुसार शतरूपा, सावित्री, गायत्री तथा ब्रह्माणी नाम से पूजी जाने वाली सभी देवियाँ सरस्वती की ही प्रतिरूप हैं । स्कन्द पु0 में सरस्वती तथा गायत्री को एक किन्तु गायत्री को

1- महा0 आदि प0 1/1

2- महा0 शान्ति प0 339/56, 122/25

ब्रह्मा की दूसरी पत्नी माना गया है ।[1] वराह पु0 में सरस्वती के लिये मत्स्य पु0 जैसा ही नाम प्रयुक्त हुआ है । महाभारत में सावित्री सरस्वती का ही एक रूप मानी गयी हैं । इस महाकाव्य में सरस्वती को सभी नदियों में श्रेष्ठ व पवित्र नदी स्वीकार किया गया है ।[2] ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्मखण्ड में सरस्वती की उत्पत्ति परमात्मा श्री कृष्ण के मुख से बताया गया है ।[3]

मत्स्य पु0 के सृष्टि खण्ड के 17 वें अध्याय में सावित्री का सहस्रनाम कीर्तित है । सावित्री की उपासना कर जो द्विज इस सहस्रनाम का पाठ या श्रवण करते हैं, वे सभी पापों से विमुक्त हो ब्रह्मलोक में वास करते हैं ।[4] सावित्री चारों वेदों, वेदांगों और छन्दों की माता है क्योंकि उनकी उत्पत्ति इन्हीं से हुयी है । ये ब्रह्मतेज से युक्त, शक्ति स्वरूप एवं शक्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं । सावित्री से सम्बद्ध विस्तृत आख्यान ब्रह्म वै0 पु0, प्रकृतिखण्ड के 12 अध्यायों में वर्णित हैं । इस खण्ड के 26 व 27 वें अध्याय में, जो कर्मविपाक के नाम से प्रसिद्ध है, सावित्री के व्रत-पर्व, पुण्य-दान आदि का विशेष वर्णन किया गया है । सावित्री की विशेष पूजा के लिये ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी तिथि है ।

1- कैनेडी, हिन्दू मैथोलाजी, पृ0 320

2- महा0 अनु प0, 146/17

3- आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः ।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणा पुस्तक धारिणी ।।
वागाधिष्ठात्री देवी सा कवीनामिष्टदेवता ।
शुद्धसत्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ।। - ब्रह्म वैवर्त, 1/3/54-55

4- मत्स्य पु0 सृष्टि खण्ड, 17 वां अध्याय

सरस्वती के तट पर वशिष्ठापवाह,[1] अरुणा,[2] समन्त पंचक[3] तथा अवकीर्ण[4] आदि अनेक तीर्थ विद्यमान हैं ।

राधा
====

वेद में 'राधस्' शब्द का विपुल प्रयोग हम पाते हैं । ये शब्द नाना विभक्तियों में प्रयुक्त किया गया उपलब्ध होता है । 'स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते विभूतिरस्तु सूनृता ।' यह मन्त्र ॠग्वेद § 1/30/5 § में, सामवेद में तथा अथर्ववेद § 20/45/2 § तीनों वेदों में समान रूप से उपलब्ध होता है ।

'इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते पिबा त्वस्य गिर्वण: ।' यह मन्त्र ॠग्वेद के स्थल § 3/51/10 § पर तथा सामवेद के दो स्थलों §165, 737§ पर प्रयुक्त मिलता है । दोनों मन्त्रों 'राधानां पते' इसी रूप में प्रयुक्त हैं और दोनों जगह यह इन्द्र के विशेषण रूप में आया है ।

श्रीमद्भागवत में राधा का नाम स्पष्टतया अंकित नहीं है । किन्तु राधस् शब्द का प्रयोग किया गया है ।

नमो नमोऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदरकाष्ठाय मुहु: कुयोगिनाम् ।
निरस्त साम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नम: ।।[5]

1- मह्T0 शल्य प0, 42/41
2- मह्T0 शल्य प0, 43/30
3- मह्T0 शल्य प0, 42/8
4- मह्T0 शल्य प0, 52/24
5- श्रीमद्भागवत - 2/414

इस पद्य में राधस् शब्द शक्ति तथा ऐश्वर्य का वाचक है । विष्णु पुराण के 13 वें अध्याय, ब्रह्माण्ड पुराण के 189 वें अध्याय में ज्यों का त्यों मिलता है । पुराणों में मुख्य वैष्णव पुराण है और राधा तत्व के उन्मीलन में यह प्रबल रूप से जागरूक है । रूप स्वामी ने अपने 'उज्जवलनीलमणि' में और कृष्णदास कविराज ने अपने 'चैतन्यचरितामृत' में पद्मपुराण में राधा का उल्लेख करने वाला यह श्लोक उद्धृत किया है -

यथा राधा विष्णोस्तस्या: कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सैवेका विष्णारत्यन्तवल्लभा ।।

राधाविषयक उल्लेखों से यह पुराण तो भरा पड़ा है ।

पातलखण्ड के अ0 69 में राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा है । दुर्गा आदि त्रिगुणमयी देवियाँ उनकी कला करोड़वे अंश को धारण करती हैं ।[1] 70 वें अध्याय में राधा मूलप्रकृति बतलायी गयी है । 77 वें अध्याय में राधा विद्या तथा अविद्यारूपिणी, परा, त्रयी, शक्तिरूपा, मायारूपा, चिन्मयी, देवत्रय की उत्पादिका तथा वृन्दावनेश्वरी बतलायी गयी हैं । इस पुराण में 'न राधिकासमानारी न कृष्णसदृश: पुमान्' उल्लिखित है । श्री देवीभागवत में भी राधा की उपासना तथा पूजापद्धति का विशेष विवरण मिलने से लगता है कि उस युग में राधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त था । नवम स्कन्ध के तृतीय

1- तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्ण वल्लभा ।
तत्कला कोटि कोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मका । - पद्म पुराण, पाताल - खण्ड, अ0 6।

अध्याय में महाविष्णु की उत्पत्ति चिन्मयी राधा से बतलायी गयी है । और 50 वें अध्याय में राधा के मन्त्र का स्वरूप, जपविधि तथा फल का विवरण विशेष रूप से दिया गया है । राधा का मन्त्र है -'श्रीराधायैस्वाहा ।' राधा कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ।[1]

राधा ब्रह्म वै० की सर्वस्वा है । जिस प्रकार देवी की कथाओं के कारण देवीभागवत है, उसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त राधा पुराण है । प्रकृति खण्ड में राधा प्रेम और प्राण की अधिष्ठात्री देवी हैं । 15 वें अध्याय में राधा के स्वरूप, 27 वें अध्याय में राधाकृष्ण संवाद, 28 वें तथा 29 वें अध्याय में राधा के साथ माधव के अन्तर्निहित होने की बात यहाँ उसी रूप में है जिस रूप में भागवत तथा विष्णु पुराण में वर्णित है ।[2] अध्याय 92 में उद्धव जी ने राधा की जो स्तुति की है, उसमें परवर्ती भावों का विशेष मिश्रण लक्षित होता है । संसार में जितनी शक्तियाँ हैं - सावित्री, दुर्गा, पार्वती, सती, अपर्णा, गौरी आदि-उन सबके साथ राधा का ऐक्य स्थापित किया गया है और यहाँ भी शक्ति और शक्तिमान का अभेद स्थिर किया गया है ।[3] इस युग में राधा की महिमा अपने उत्कर्ष पर विद्यमान थी । उनका शक्तिरूप प्रतिष्ठित हो गया था । पुराणों में राधा वर्णन का यही संक्षिप्त रूप है । गौड़ीय वैष्णवों ने प्रसिद्ध

1- कृष्णप्राणाधिका देवी तदधीनो विभुर्यतः ।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया विना न तिष्ठति ।। - देवीभागवत, 9/50

2- ब्र० वै० पु०, 29/12

3- ब्र० वै० पु०, 92/86-87

पुराणों में से केवल पद्म पुराण तथा मत्स्य पुराण में राधा का उल्लेख माना है । पुराणों के अनुसार राधा की उत्पत्ति दैवी है, मानुषी नहीं है । पुराणों के मत में भगवान श्रीकृष्ण की राधिका स्वयं आत्मरूप है ।[1] इसी तथ्य को स्कन्द पुराण ने अन्यत्र अभिन्न शब्दों में प्रतिपादित किया है ।[2] बिना राधा के श्रीकृष्ण जगत की सृष्टि में सर्वथा असमर्थ हैं । राधा सर्व शक्तियों से समन्वित, सबकी आधारभूता तथा सर्वदा रहने वाली हैं । भगवती लक्ष्मी, अशेष मंगलमयी, देवी सरस्वती धर्म इत्यादि से भी अधिक राधा कृष्ण को प्यारी हैं ।[3] राधा उनके प्राणों से भी गरीयसी हैं ।[4]

राधा का प्रथम धार्मिक-आविर्भाव वैष्णव निम्बार्क सम्प्रदाय में मानना उचित है । राधा कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना इस सम्प्रदाय को इष्ट है । राधा वल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम तत्व का उपासक रसमार्गी सम्प्रदाय है । इतर वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण ही परम तत्व है तथा राधा उनकी शक्ति मानी गयी हैं परन्तु राधाबल्लभ सम्प्रदाय में राधा ही परम तत्व मानी गयी है । राधिका कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति है ।

संस्कृत काव्य में राधा का विशेष वर्णन नहीं है । श्री रूपगोस्वामी के अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ 'हरिभक्त रसामृत सिन्धु' तथा 'उज्जवल नीलमणि' में भक्तिरस

1- स्कन्द पुराण, भगवत माहात्म्य, अध्याय ।

2- स्कन्द पुराण, दूसरा अध्याय, 11-14

3- ब्रह्म वै0 पु0, 6/63

4- प्राणाधिष्ठातृ देवी सा कृष्णस्य परमात्मन: ।
आविर्बभूव प्राणेभ्य: प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।।

की शास्त्रीय पौदृता, विदग्धमाधव और ललितमाधव नाटकों में राधा-कृष्ण की केलिकथा, लीलाशुक कृत कृष्ण कर्णामृत, जयदेव का गीति गोविन्द में राधा का वर्णन है ।

आयु की दृष्टि से देवियों का विभाजन मिलता है । एक वर्ष की देवी 'सन्ध्या', दो वर्ष की 'सरस्वती' सात वर्ष की 'चंडिका', आठ वर्ष की 'साम्भवी' नव वर्ष की 'दुर्गा' या 'बाला', दस वर्ष की 'गौरी', तेरह वर्ष की 'लक्ष्मी' तथा सोलह वर्ष की देवी 'ललिता' कहलाती है ।[1]

देश की दृष्टि से देवियों के विभाजन मिलते हैं - कांचीपुर में कामाक्षी, केरल में कुमारी, बंगाल में सुन्दरी, नेपाल में गुह्यकेश्वरी, मलाया में भ्रमरी, अनार्त में अम्बा, किरवीर में महालक्ष्मी, मालवा में कालिका, प्रयाग में ललिता, विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी, काशी में विशालाक्षी तथा गया में मंगलावती की पूजा होती है ।[2]

उपर्युक्त देवियों में प्रत्येक का रूप, वेश, अस्त्र-शस्त्र, वाहन मंत्र आदि अलग - अलग हैं । इन देवियों के साथ साधक तादात्म्य स्थापित करते हैं । साधक यह भावना करता है कि मैं ही देवी हूँ । शाक्तों के अनुसार सार्वभौमिक सत्ता का सहसा साक्षात्कार साधक नहीं सह सकता । अत: उसके एक अंश अर्थात एक देश में अभिव्यक्त रूप की ही साधना की जाती है । इसीलिये नाना देवी-देवताओं का विधान किया जाता है । देवता की मूर्ति का वास्तविक अर्थ साधक की चेतना में स्फुरित दिव्य सत्ता का रूप किया गया है । बाह्य मूर्तियाँ केवल आंतरिक मूर्ति को जागृत करने की साधक मात्र हैं ।

1- एलीमेन्टस आफ हिन्दू इकनोग्रैफी - गोपीनाथ कविराज, भाग - 2

2- ग्लीनिंग्स, फ्रौम द तन्त्राज - गोपीनाथ कविराज

शक्ति-धर्म

ब्रह्माण्ड पुराण में शक्ति को तीनों जगत की जननी कहा गया है ।[1] अन्यत्र उन्हें 'पापाघ्नी' अर्थात पापों का विनाश करने वाली बताया गया है ।[2] मत्स्य पुराण के अनुसार उनका नाम अनुसरण करने से मनुष्य सभी पापों से सर्वथा मुक्त होकर शिवलोक की प्राप्ति करता है ।[3] वायु पुराण में वर्णन आता है कि काली की स्तुति करने से मनुष्य का पराभव कभी नहीं होता है ।[4] विष्णु पुराण में वर्णन है कि प्रसन्न होने पर व सभी कामनाओं को पूरा करती हैं ।[5]

इसमें सन्देह नहीं कि शक्तिविषयक उपर्युक्त पौराणिक स्थल वैदिक विचार - धारा में परिवर्तन के सूचक हैं । यद्यपि वैदिक वांगमय में रूद्राणी तथा भवानी शब्द मिलते हैं और ये शब्द जैसा कि बाद में दिखाया जायेगा कालान्तर की शक्ति के पर्याय हैं, तथापि इस साहित्य में इनकी सत्ता रूद्र-शिव से तिरोहित है ।[6] उनकी स्वकीया अथवा स्वतन्त्र महत्ता वेदोत्तरवर्ती ग्रन्थों में ही स्पष्ट की गई है । उदाहरणार्थ महाभारत के भीष्म पर्व में वर्णित है कि जो मनुष्य प्रातःकाल

1- त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमान विभवा । - ब्रह्माण्ड पु0,4/29/145

2- भासते सा भगवती पापाघ्नी ललिताम्बिका । वही - 4/37/84

3- सर्वपाप विनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत् । - मत्स्य पु0, 13/56

4- भद्रकाल्यास्त्वयोक्तानि देव्या नामानि तत्वतः ।
ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभवः । वायु पु0,9/86-87

5- नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्ना संप्रदास्यसि । - वि0 पु0,5।/136

6- भण्डारकर, पृ0 203

शक्ति का स्तोत्र पढ़ता है, वह संग्राम में विजयी होता है । तथा उसे लक्ष्मी की ऐकान्तिक प्राप्ति होती है ।[1]

विष्णु पुराण में कहा गया है कि शक्ति सुरा तथा मांस के उपहार से सन्तुष्ट होती हैं ।[2] ब्रह्माण्ड पुराण में अनेक स्थलों पर मदिरा और देवी का सम्बन्ध निरूपित मिलता है । ललिता नामक देवी के उपासक सिद्धों के सम्बन्ध में वर्णन आता है कि वे मदिरापान करते हुए देवी की भक्ति में तल्लीन रहते हैं ।[3] ललिता के अनुवर्ती शक्तियों के सम्बन्ध में अन्यत्र वर्णित है कि वे मदिरा से पूर्ण चषक धारण किये हुए उनके पूजन, ध्यान और स्तोत्र में परायण रहती हैं ।[4] मत्स्य पुराण मे एक स्थल पर शक्ति को 'मांसांगा' नाम दिया गया है ।[5] प्रस्तुत पौराणिक स्थल का समर्थन महाभारत की पंक्तियों के द्वारा भी किया जा सकता है । विराट पर्व में शक्ति के सम्बन्ध में वर्णित है कि वे मदिरा, मांस और पशु में अभिरूचि रखती हैं ।[6]

1- य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ।- भीष्म पर्व, 23/21-24

2- सुरामांसोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता । - वि0 पु0, 5/1/85

3- ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो - - - - - मिलन्दिरा मदिरारसान् ।
ब्र0 पु0, 4/33/4

4- मदिरापूर्णचषकमशेषं - - - - - ललितापूजन ध्यान जपस्तोत्रपरायणाः - वही -
4/32/19-20

5- मध्ये यथास्त्वं मांसांगी - - - - - । मत्स्य पु0, 16/19

6- कालकालि महाकालि सीधुमांसपशुप्रिये । - महा0 विराट पर्व, 6/17

शक्ति के विभिन्न स्वरूपों में उनके द्वारा असुर विनाश का भी उल्लेख किया जा सकता है ।[1] विष्णु पु0 में कहा गया है कि शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्रों असुरों को मारकर उन्होंने भूमण्डल के अनेक स्थानों को सुशोभित किया है ।[2] ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार भण्डासुर के अत्याचारों से त्रस्त होकर उसके विनाश के लिये इन्द्र ने नारद से परामर्श लिया था । नारद ने उन्हें अभीष्ट की सिद्धि के निमित्त शक्ति की आराधना के लिये निर्दिष्ट किया । इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने शक्ति की आराधना किया । तदुपरान्त शक्ति ने भण्डासुर का वध करने का वचन दिया ।[3] मत्स्य पु0 के अनुसार शुष्करेवती नामक देवी ने, जो विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई थीं, असुरों का विनाश किया था ।[4] शक्ति के इस स्वरूप का उल्लेख महाभारत में भी हुआ है, जिसमें विजय प्राप्त करने के लिये दुर्गा की स्तुति करते हुए उन्हें कैटभनाशिनी के नाम से सम्बोधित किया गया है ।[5]

1- भण्डारकर, वि0 पु0, पृ0 203

2- त्वं च शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः स्थानैरनेकैः पृथ्वीमशेषां मण्डयिष्यसि । - वि0 पु0, 5/1/81

3- ब्रह्माण्ड पु0 , 4/12/41 - 74
अहमेव विनिर्जित्य भण्डं दैत्यकुलोद्भवाय अचिरात्तव दास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम् । वही - 4/13/32

4- मत्स्य पु0, 179/36

5- उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि । - मह0, भीष्म प0, 23/9

मत्स्य पुराण में वर्णन मिलता है कि तारकासुर के वध के समय देवी ने ब्रह्मा के आदेश से अपना आवास विन्ध्याचल में बनाया था ।[1] देवी का आवास विन्ध्याचल से सम्बन्धित होने के कारण ही वायु पुराण में भी उन्हें 'विन्ध्यनिलया' नाम दिया गया है ।[2] वायु पुराण में 'सिंहवाहिनी' उनका नामान्तर बताया गया है ।[3] देवी द्वारा सिंह को वाहन बनाने का उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण में भी मिलता है ।[4]

ब्रह्माण्ड पुराण में जामदग्न्य - पराक्रम के वर्णन में देवी को मुण्डमाला से विभूषित बताया गया है ।[5] मुण्डमाला से उनका सम्बन्ध मत्स्य पुराण में भी व्यक्त किया गया है । ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है कि भण्डासुर के साथ युद्ध करने के लिये, जिस समय दुर्गा प्रकट हुईं, उन्हें शंकर ने अपना शूल समर्पित किया । ललिता के बारे में वर्णन मिलता है कि वे केयूर और कंकण से मंडित रहती हैं ।[6] वायु पुराण में भी उन्हें 'शूलधरा' नाम दिया गया है ।[7] मत्स्य पुराण में देवी के घण्टा, आभूषण तथा पीत कौशेय वस्त्र का उल्लेख हुआ है ।

1- गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि । - मत्स्य पु0 157/17
2- अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका । - वायु पु0, 9/85
3- अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी । - वायु पु0, 9/84
4- अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम् । - ब्रह्माण्ड पु0, 4/16/9
5- वहन्तीं मुण्डमालां विकटास्यां भयंकरीम् । - ब्रह्माण्ड, पु0, 3/39/34
6- केयूरकंकणश्रेणीमंडितान्सोर्मिकांगुलीम् । - वही - 4/31/75
7- बर्हिध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी । - वायु पु0, 9/83

देवी के इन स्वरूपों का उल्लेख तथा उनकी महत्ता का प्रतिपादन महाभारत में भी निरूपित मिलता है । उदाहरणार्थ, विराट-पर्व में वर्णन मिलता है कि विन्ध्य में देवी का स्थान शाश्वत है ।[1] इसी प्रकार भीष्म-पर्व में 'कपालि' शब्द देवी के सम्बोधनार्थ प्रयुक्त किया गया है ।[2] विराट पर्व में वर्णन आता है कि देवी घण्टा, पाश, धनुष, चक्र तथा अनेक प्रकार के शस्त्रों को धारण करती हैं ।[3] भीष्म और विराट पर्वों में देवी का खड्ग और ढाल धारण किये हुये वर्णन मिलता मिलता है ।[4] भीष्म पर्व में उनके शूल का उल्लेख हुआ है ।[5] विराट पर्व में वर्णित है कि वे केयूर और अंगद धारण करती हुई हैं और उनके कर्ण कुण्डलों से विभूषित रहते हैं ।[6] यशोदा पुत्री के अवतार का उद्देश्य दैत्यों का विनाश बताया गया है ।[7] यह वर्णन कुछ अन्तर के साथ वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में भी मिलता

1- विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम् । - विराट पर्व, 6/27

2- कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिंगले । - भीष्म पर्व, 23/4

3- पात्री च पंकजी घण्टी - - - - पाशं धनुर्महाचक्रं
विविधान्यायुधानि च । - विराट पर्व, 6/10-11

4- खड्गखेटकधारिणीम् । - भीष्म पर्व, 23/7
खड्गखेटकधारिणीम् । विराट पर्व, 6/4

5- अट्टशूलप्रहरणे - - - - - । भीष्म पर्व, 23/7

6- केयूरांगदधारिणि - - - - कुण्डलाभ्यां - - - - च विभूषिता । विराट पर्व, 6/8,11

7- विष्णु पुराण, 5/1/70-81

है । ऐसा कहा गया है कि यह कन्या वस्तुत: एकादशा शक्ति थी । इनका जन्म कृष्ण की रक्षा के लिये हुआ था । यदुवंशी प्रसन्न मन से उनकी पूजा करते थे ।[1] मत्स्य पुराण में देवी का अवतार ब्रह्मा का आदेश से सम्बन्धित है और वर्णित है कि वे उमा के शरीर से कृतकृत्या हुई थीं । इस रूप में उन्होने सुर कार्य को पूरा करने का आदेश प्राप्त किया था । देवी का सृजन-वर्णन महाभारत के विराट पर्व में भी मिलता है । इसके अनुसार वे नन्दगोप के कुल में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं । जब कंस ने कन्या के रूप में उन्हें शिला पर प्रक्षिप्त किया, उस समय, वे आकाश मार्ग से चलीगयीं ।[3]

वायु पुराण के अनुसार महाकाली, उमा के शरीर से भूतों के साथ उत्पन्न हुई ।[4] अन्यत्र कहा गया है कि जिस समय दक्ष यज्ञ विनाशार्थ शिव के गण यज्ञ-भूमि में गये, उनके साथ उमा के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली भी थी ।[5] ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णन आता है कि शक्ति की उत्पत्ति ब्रह्मा के ध्यानयोग से हुई थी । ये देवताओं का अभीष्ट देने वाली थी ।[6]

1- वायु पु०, 16/205, ब्रह्माण्ड पु०, 3/71/221-222

2- मत्स्य पु० , 157/15-16

3- विराट प०, 6/2-3

4- नि:सृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी । - वायु पु०, 101/298

5- भद्रकाली च विज्ञेया देव्या: क्रोधाद्विनिर्गता ।
प्रेषिता देवदेवन यज्ञान्तिकमिहागता । - वायु पु० 30/164

6- ब्रह्माण्ड पु०, 4/6/6

वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में कहा गया है कि जिस समय शुक्राचार्य शिव की स्तुति कर रहे थे, उनके अभीष्ट को पूरा करने के लिये देवी प्रकट हुई थीं । इन्हें माहेन्द्री अर्थात् इन्द्र की पुत्री बताया गया है ।[1] इसके पूर्ववर्ती अध्याय में जयन्ती के लिये स्पष्ट इन्द्रदुहिता विशेषण बोधक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[2] वायु पुराण के वर्णान्तर में भी देवी के अनेक नामों में माहेन्द्री शब्द का प्रयोग हुआ है ।[3] इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में भी देवी के नामों में माहेन्द्री निर्देश शब्द का निर्देश मिलता है ।[4] विष्णु पुराण में देवी को इन्द्र की भगिनी कहा गया है ।[5] यह वर्णन वायु पुराण में भी मिलता है ।[6]

विष्णु पुराण के प्रसंगानुसार जिस देवी ने यशोदा के गर्भ से अवतार लिया था, वह वस्तुत: विष्णु के द्वारा प्रयुक्त वैष्णवी महामाया थीं ।[7] इसी प्रकार मत्स्य पु0 में शुष्करेवती नामक देवी को विष्णु के शरीर से उत्पन्न माना गया है । ब्रह्माण्ड पुराण में उनके विभिन्न नामों में वैष्णवी शब्द प्रयुक्त है ।[8] यह देवी की व्यापनशीलता का भी बोधक है ।

1- माहेन्द्री त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहागता । - वायु पु0, 98/8
" " . " " । - ब्रह्माण्ड पु0, 3/73/8

2- देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी ।- वायु पु0, 97/152; ब्रह्माण्ड पुराण, 3/72/153

3- वायु पु0, 9/84

4- ब्रह्माण्ड पु0, 4/36/58

5- ततस्त्वां शतदृक्छक्र: - - - - - भगिनीत्वे ग्रहीष्यति । - विष्णु पु0, 5/1/80

6- माहेन्द्री चैन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी । - वायु पु0, 9/84

7- विष्णुप्रयुक्ता महामाया वैष्णवी मोहितं यथा । - विष्णु पु0, 5/1/70

8- ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । ब्रह्माण्ड पु0,4/36/58

ब्रह्माण्ड पुराण में देवी को माहेश्वरी कहा गया है । इसी प्रकार वायु पुराण में उनके विभिन्न नामों में रौद्री का भी उल्लेख हुआ है ।[1] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि महादेव ने देवी को रौद्री मूर्ति प्रदान किया था ।[2] इन स्थलों में रौद्री शब्द से देवी के भयावह स्वरूप का भी बोध होता है । ब्रह्मा के साथ देवी के सम्बन्ध का वर्णन ब्रह्माण्ड पुराण में मिलता है । एतदर्थ उन्हें एक संदर्भ में ब्रह्मप्रिये पर प्रसंगान्तर में ब्राह्मी कहा गया है ।[3]

इस प्रकार शक्ति में किसी एक देवता विशेष का स्वरूप सन्निहित नहीं है । इसमें इन्द्र, विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा अन्य विभिन्न देवताओं की प्रतिच्छाया भी जिनका उल्लेख पूर्वविवेचित हो चुका है, विद्यमान है । यही कारण है कि महाभारत में भी एक स्थल पर उन्हें नारायण परिग्रह दूसरे प्रसंग में स्कन्द की माता कहा गया है ।[4]

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती में भी उनके लिये माहेश्वरी और नारायणी दोनों नाम प्रयुक्त मिलते हैं ।[5]

1- प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी । वायु पु0, 9/81

2- रौद्रीं चैव परां मूर्तिं महादेवः प्रदास्यति । - मत्स्य पु0, 179/82

3- ब्राह्मीमुखैर्मातृगणैर्निषव्ये ब्रह्मप्रिये । ब्रह्माण्ड पु0 4/30/19
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी । - ब्रह्मा•पु0

4- भासि देवि यथा पद्मा नारायणपरिग्रहः ।
नारायणवरप्रियाम् स्कन्दमातर्भवति दुर्गे । - विराट पर्व , 23/11

5- माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते । - दुर्गा सप्तशती, 11/14

शक्ति के नामों का विवरण-उल्लेख वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में स्वरूप सादृश्य के साथ प्राप्त होता है । वे हैं - इन्द्रदुहिता, एकादशा, माहेन्द्री तथा सरस्वती । विष्णु और वायु पुराणों में आर्या और दुर्गा का समान प्रयोग मिलता है । इसी प्रकार गौरी का उल्लेख वायु तथा मत्स्य पुराणों में कान्ति और शान्ति का विष्णु और मत्स्य पुराण में तथा ललिता का ब्रह्माण्ड और मत्स्य पु0 समानार्थक रूप में हुआ है । शक्ति के लिये जो नाम पुराणों में प्रयुक्त हुये हैं, उनमें कतिपय महाभारत में भी मिलते हैं, जैसे काली, पिंगला, महादेवी, तुष्टि तथा भूति आदि ।[1] इन विभिन्न नामों से स्पष्ट है कि एक ही देवी के स्वरूप में विभिन्न नामों के समाहार की चेष्टा की गयी है, यथा पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती । यह भी प्रतीत होता है कि रूद्रशिव के समान शक्ति में सौम्य और रौद्र स्वरूपों का समन्वय है, जो मंगलकारिणी और रौद्री जैसे नामों से सुव्यक्त है । इन नामों में कतिपय का व्यवहार पहले से ही हो रहा था । उदाहरणार्थ - श्वेता - श्वतर उपनिषद में पराशक्ति का उल्लेख हुआ है ।[2] इसी प्रकार मुण्डक उप0 में काली का उल्लेख हुआ है, जिनका स्वरूप भयंकर बताया गया है ।[3]

ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराणों में शक्ति के अतिरिक्त उनके अनुचरियों का भी उल्लेख हुआ है । दोनों पुराणों में वर्णित नाम परस्पर पृथक हैं, पर इनके

1- महाभारत, भीष्म पर्व , 23/4-16

2- परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते । श्वेताश्वतर उप 0, 6/8

3- काली कराली च मनोजवा च । मुण्डक उप0 1/2/4

स्थनों में ये सभी देवियाँ शक्ति की अनुचरी, सहायिका अथवा सेविका के रूप में वर्णित हुई हैं ।

शक्ति से सम्बन्धित पौराणिक उद्धरणों के सामूहिक विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शक्ति की पौराणिक महत्ता के द्वारा वेदोत्तर-कालीन धारणा व्यक्त होती है । वैदिक रूद्राणी एवं भवानी आदि देवियाँ स्वानुकूल देवताओं की प्रसिद्धि से प्रतिच्छादित हुई हैं, जबकि पौराणिक शक्ति स्वतन्त्र और व्यापक देवी हैं । इनमें विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देवताओं की शक्ति सन्निहित है । किन्तु इससे उनकी महत्ता पर व्याघात नहीं पहुँचता । उनका अवतरण उन असुरों के विनाशार्थ हुआ है, जिनसे सभी देवता संत्रस्त हैं । एक ही देवी के व्यक्तित्व में अनेक देवियों का समाहार कर पौराणिक शक्ति का स्वरूप अधिक व्यापक बनाने की चेष्टा हुई है । स्पष्ट है कि पुराणों ने शक्ति के जिन नामों का उल्लेख किया है, वे सभी पुराणों में समान रूप से नहीं प्राप्त होते हैं । यद्यपि कहीं - कहीं समता अवश्य दिखायी देती है तथापि विषमता की ही मात्रा अधिक मिलती है । इसी प्रकार ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराण में भी शक्ति के अनुचरियों के भी नाम भिन्न-भिन्न वर्णित हैं । परन्तु नाम की इस भिन्नता के होते हुये भी उनके स्वरूप में विशेष समानता दिखायी देती है ।

<u>शिव शक्ति सम्बन्ध</u> - शिव की क्रियारूपता को ही शक्ति कहते हैं । शक्ति के लिये प्रयुक्त विभिन्न नाम शिव की क्रियारूपता को ही व्यक्त करते हैं । शक्ति को बिन्दु या वाक् शक्ति कहा जाता है । शिव और शक्ति में तादात्म्य सम्बन्ध

है । शक्ति शिव से अलग नहीं है, बल्कि अपनी सर्जनात्मक स्थिति में स्वयं शिव है । शक्ति शिव का अहं विमर्श है शक्ति की उन्मुखता ही शिव की सृष्टि करने की प्रवृत्ति है । शक्ति की संस्थिति शिव के चिन्मय तथा स्पन्दात्मक स्वरूप में ही है ।

शिव और शक्ति का जो समन्वय है वह परमतत्व का स्वरूप ही है । परम शिव की ये दोनों शाश्वत अभिव्यक्तियाँ हैं । परम शिव न तो शिव और न शक्ति के प्राधान्य का स्तर है बल्कि यह पूर्ण समन्वय का स्तर है, जहाँ शिव और शक्ति का भेद नहीं किया जा सकता । शिव तथा शक्ति मूलत: एक हैं । शक्ति के बिना शिव इच्छाहीन, ज्ञानहीन, क्रियाहीन और स्पन्दन में असमर्थ शवमात्र होगा और प्रकाशात्मक शिव के बिना शक्ति आत्मप्रकाश में भी असमर्थ होगी । दोनों ही चिद्रूप होने के कारण स्वरूपत: अभिन्न हैं एवं एक को छोड़कर दूसरा रह भी नहीं सकता । शिव में शक्ति और शक्ति में शिव हैं ।[1] शिव चेतना का शुद्ध प्रकाश है तथा शक्ति चेतना की शक्ति है ।

शिव के बिना शक्ति को अपना बोध भी नहीं हो सकता । शक्ति से अलग होकर शिव जड़ होगा और परिणामस्वरूप शव होगा । शिव अपने को शक्ति द्वारा जानता है तथा शक्ति भी अपने को कार्यसम्पादन के लिये शिवाश्रित रहती है । दोनों ही मूल रूप में एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं । उपासना में यद्यपि

1- शिवस्याभ्यन्तरे शक्ति: शक्तेरभ्यन्तरे शिव: ।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्र चन्द्रिकयोरिव ।।

ईश्वर और देवी दो रूप व्यक्त हैं, किन्तु मूलत: दोनों एक हैं । अर्धनारीश्वर रूप पति पत्नी का प्रतीक समझा जाता है और दोनों दो होकर एक साथ एक सूत्र में रहते हैं । किन्तु ये दो नहीं हैं क्योंकि शिव सम्पूर्ण ही शक्ति है और शक्ति सम्पूर्ण ही शिव है । शिव और शक्ति में अन्तर काल्पनिक और निर्मूल है ।[1] वास्तव में उनमें अन्तर किया ही नहीं जा सकता ।

शक्ति के मुख्य दो भेद हैं । प्रथम चित् शक्ति और आनन्द शक्ति को शिव की स्वरूप शक्ति कहा जा सकता है । इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति को शिव की स्वतन्त्र शक्ति कहा जा सकता है जिन्हें वह सृष्टि की अभिव्यक्ति क्रम में प्रकट करता है, इन शक्तियों को स्वरूप शक्ति नहीं कहा जा सकता क्योंकि तब शिव सृष्टि कार्य में शिव का स्वातन्त्र्य नहीं रह जायेगा । वस्तुत: यह जगत शिव शक्ति का विस्तृत रूप है जिसे परम शिव ने अपने में स्वेच्छा से अभिव्यक्त किया है । शक्ति से ही शिव के 'अहं' को बोध होता है । उसी प्रकार बिना शिव के शक्ति भी नहीं रह सकती क्योंकि उसके लिये आधार का होना आवश्यक है । शिव और शक्ति को सृष्टि या प्रलय किसी भी अवस्था में अलग नहीं किया जा सकता ।

1- तन्त्रालोक आ0 1, पृ0 109 ।

तन्त्र की परिभाषा

भारत की दार्शनिक और यौगिक-वंश परम्परा के स्रोत - रूप में तन्त्र-विज्ञान का बड़ा महत्व है । यह विद्या मात्र उच्च कोटि के कुछ साधक तथा गुरूओं में अपार श्रद्धा तथा विश्वास करने वाले सुयोग्य शिष्यों तक सीमित थी । शिष्य तन्त्र की प्रक्रियाओं में पूर्णरूपेण रखते हुए अभ्यास कार्य सम्पादन करते थे, तथापि तन्त्र-विद्या के विश्वसनीय साहित्य का अभाव होने के कारण बहुत समय तक इस क्षेत्र से विद्वानों का सम्बन्ध न हो सका । तन्त्र-साहित्य अपने आप में इतना विशाल है कि साधारण पाठक के ज्ञान के परे की बात है, क्योंकि न केवल भारतवर्ष में ही अपितु दक्षिण - पश्चिम एशिया, तिब्बत चीन और जापान में करोड़ों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ और पुस्तकें संगृहीत की गयी हैं ।

तन्त्र की पवित्रता इतनी अधिक है कि इसके क्षेत्र की परिधि में सभी ज्ञान अन्तर्भुक्त होते हैं । यह एक ऐसा क्रियात्मक ज्ञान है जो विशुद्ध दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर आधारित सतत् अभ्यास की प्रेरणा प्रदान करता है । यह दर्शन अन्त में आत्मिक चेतना भी प्रदान करता है, यह न तो काला जादू है और न ही यह एक सम्प्रदाय । तन्त्र के बहुत से सम्प्रदाय आज भी पृथ्वी पर विद्यमान है, जिनमें समय, मिश्र और कौल अधिक महत्व के हैं और इनके शिक्षार्थी सम्पूर्ण विश्व में बिखरे हुए हैं ।

तन्त्र शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है । उसकी परिधि में दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, व्यवहारादि अनेक विषयों का समावेश हो

जाता है । इस शास्त्र में सर्वप्रकार की भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक सम्पदा तथा बहुत सी विस्मयजनक सिद्धियाँ अर्जन करने का प्रसंग प्रतिपादित किया गया है । दार्शनिक विचार सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से निबद्ध किए गये हैं । शाक्त-तन्त्रों में विशेषकर अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ।

वाराही तन्त्र[1] में जो 'तन्त्र' का लक्षण दिया गया है, उससे यही प्रतीत होता है कि तन्त्रशास्त्र में लौकिक सिद्धियों के विषय में जो वर्णन है, वह लौकिक फल-कामनाओं में आसक्त सामान्य सकामी श्रद्धालुओं में प्रवृत्ति जागरण हेतु दिया गया है, न कि उक्त क्षेत्र के संकोचार्थ ।

इस समय गति का अवलोकन कर गुप्त-तन्त्रों का प्रकाशन किया जाय तो तन्त्र की साधना के गौरव और प्रतिष्ठा का प्रचार होकर 'कुलार्णव'[2] के कथन की सत्यता का स्थापन हो सकता है - जहाँ भली प्रकार भोग योग को प्राप्त होता है और पातक सुकृत रूप में परिवर्तित होकर मानव संसार-सागर से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, हे कुलेश्वरि, ऐसा कुल धर्म है ।

1- तन्त्र कल्पतरु - तान्त्रिक वाङ्मय का महत्व, पृ0 58

2- भोग-योग प्रसंगे प्रथमं श्लोकम् ।
भोगो भोगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते ।
मोक्षायते च संसार: कुल धर्मे सुरेश्वरि ।। - कुलार्णव श्लोक ।
कुलार्णव : एम0 पी0 पंडित [पं0 माधव पण्डालिका]

भारतीय संस्कृति और आचार - परम्परा के चार मुख्य जीवन - स्रोत हैं -"श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्र ।" तान्त्रिक संस्कृति का वर्तमान कलियुग में कितना महत्व है, यह रुद्रयामल -

कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृति संभव: ।

द्वापरे तु पुराणोक्त कलौ आगम सम्भत: ।। - रुद्रयामल

में स्पष्ट किया गया है कि तन्त्र ही कलियुग के लिये प्रधान साधन है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'तन्त्र' वेद के समान रहस्यपूर्ण ज्ञान का भण्डार है । दार्शनिक दृष्टि से दोनों का चरम लक्ष्य 'परम तत्व' एक ही रूप में अवगत होता है । 'तन्त्रशास्त्र' का देश-विदेश में व्यापक प्रचार हो रहा है ।

संस्कृत वांगमय में तन्त्र-साहित्य का अपना एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है । यह साहित्य अत्यन्त विशाल है । इतिहास इसका साक्षी है कि युग-युग से तन्त्र की पद्धति किसी न किसी रूप में निरन्तर साधना के क्षेत्र में अपना स्थान रखती चली आयी है ।

वैदिक साहित्य 'तान्त्रिक' विचारों से अछूता नहीं है । वेदों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन विचार-धारा में तान्त्रिक पद्धति का उदय हुआ । हिन्दू संस्कृति की परम्परा का आधार विशेष रूप से पुराण है और उनमें तान्त्रिक विचारों का वृहद् रूप से समावेश दिखायी पड़ता है ।

तन्त्र

तन्त्र के लिये एक दूसरा शब्द 'आगम' भी प्रयुक्त किया जाता है वाचस्पति मिश्र के अनुसार-आगम,एक प्रकार का वह ज्ञान है जिसके द्वारा

संसार के समस्त भौतिक पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है ।[1] आगम का साक्षात् सम्बन्ध विशुद्ध ज्ञान से है । प्रसिद्ध शैव अभिनव गुप्त जी का भी मत है कि "आगम वह ज्ञान है जो सीधे - सीधे अनुभव से प्राप्त हुआ है ।[2]

तन्त्र के भेद

मातृका भेद तन्त्र में है । तन्त्र शास्त्र के आगम, यामल और तन्त्र ये तीन मुख्य विभाग हैं ।[3] निश्चय ही आगम; निगम, यामल, तन्त्र, संहिता, इत्यादि सामान्यतः समानार्थक शब्द रूप में ही तन्त्रशास्त्र में प्रयोग किया गया है । साधारण बातचीत में भी इनमें कोई भेद नहीं किया जाता है ।

आगम

विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि - (1) सृष्टि (2) प्रलय (3) देवता की यथाविधि अर्चना (4) समस्त मन्त्रों की साधना (5) पुरश्चरण (6) षट्कर्म साधना (7) चतुर्विध ध्यान योग - इन सात लक्षणों से युक्त शास्त्र को ज्ञानी आगम कहते हैं ।[4]

1- आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदय - निःश्रेयसोपाय: स आगम: ।
(तत्त्व वैशारदी)

2- प्रतिभान् लक्षणयम् शब्दभावनाख्य आगम इवेति । - ईश्वर प्रत्यभिज्ञवृत्ति विमर्शिनी 2/3

3- तन्त्र शास्त्रं त प्रधानतस्त्रिधा विभक्तम् आगम-यामल तन्त्र भेदत: ।
मातृका भेद तन्त्र भूमिका, पृ0 2

4- सृष्टिश्चैव - - - - - - - - - - - - तद् विदुर्बुधा: (विश्वसार तन्त्र)

निगम

आगम द्वैत निर्णय में निगम की व्याख्या में कहा गया है कि गिरिजा के मुख से निर्गत होने से, शिव के कर्ण कुहरों में प्रतिष्ठित होने से वासुदेव का मत होने से इस शास्त्र को 'निगम' कहते हैं ।[1]

तन्त्र

जिस प्रकार निगम की कहने वाल देवी हैं, उसी प्रकार उड्डीश श्रेणी के तन्त्रों को भी कहने वाली देवी हैं ।[2]

इस प्रकार गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है कि ईश्वर का वचन है कि मैंने तन्त्र में यामल और डामर त्रिगुणात्मक तीन प्रकार के तन्त्र कहे गये हैं । सात्विक, राजस और तामस ।[3]

यामल

वाराही-तन्त्र के अनुसार जिस तन्त्र में (1) सृष्टि (2) ज्योतिष (3) नित्य-कृत्य का उपदेश (4) क्रम (5) सूत्र (6) वर्ण-भेद (7) जाति-भेद और (8) युग-धर्म ये आठ विषय हों, वह यामल है ।

डामर

वाराही तन्त्र में छः प्रकार के (1) योग डामर (2) दुर्गा डामर

1- आगतं शिव वक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा मुखे ।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ।। - तन्त्रकल्पतरु, पृ0 64 रूद्रयामल

2- तारा तन्त्र - भूमिका, पृ0 5।

3- गन्धर्व तन्त्र - 1/28-30

§3§ दुर्गा डामर §4§ सारस्वत डामर §5§ ब्रह्म डामर और §6§ गान्धर्व डामरों का उल्लेख किया गया है ।

तन्त्र का उद्भव एवं विकास
====================

महानिर्वाणतन्त्र, परशुराम कल्पसूत्र आदि में दिये गये विवरणों से यह ज्ञात है कि शिव-शक्ति के प्रश्नोत्तर के माध्यम से तन्त्र की अवतारणा हुई है । स्वच्छन्द - तन्त्र में स्पष्ट है कि स्वयं सदा शिवजी ने गुरु-शिष्य-पद में प्रतिष्ठित होकर प्रश्न एवं उत्तर रूप में तन्त्रों का आविर्भाव किया है ।[1] इस तन्त्रोक्ति से एक वास्तविक सत्य का उद्घाटन होता है कि तन्त्र-शास्त्र और तान्त्रिक साधना गुरु-शिष्य परम्परा पर आधारित है । इसी तरह वामकेश्वर तन्त्र में लिखा है कि 'एक कान से दूसरे कान में उपदेश के क्रम से तन्त्र पृथ्वी तल पर प्राप्त हुआ है ।[2]

इन समस्त तन्त्र-वचनों का यही तात्पर्य है कि तन्त्र-शास्त्र को गुरुमुख से ही समझना चाहिये । तन्त्रशास्त्र साधना शास्त्र होने के कारण कोई भी व्यक्ति मात्र पुस्तक के अध्ययन से ही तान्त्रिक साधना नहीं कर सकता ।

तन्त्र के उद्भव एवं विकास के सन्दर्भ में हमें पूर्व ऐतिहासिक - युग की ओर जाना पड़ेगा, क्योंकि 'आगम' और उसके प्रयोगात्मक कार्य वैदिक युग के

1- गुरु-शिष्य-पदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः ।
   प्रश्नोत्तर परैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयेत् ।। - स्वच्छन्दतन्त्र, प्रथम पटल पृ0 7

2- कर्णात्कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनीतलम् । - वामकेश्वर तन्त्र, 6/3

समानान्तर ही प्रतीत होते हैं । तन्त्र की परम्परा में 'मातृपक्ष', जिसका साक्षात् सम्बन्ध अबध्यत्व, संतान, रक्षा और पालन-पोषण से है, अत्यधिक प्रबल दृष्टिगोचर होता है । यह मात्र भारतवर्ष तक ही सीमित न था प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व में, विशेषतया जहाँ जीवनयापन अधिक ऋजु था - शारीरिक एवं भौगोलिक कारणों से भी । सिन्धु, नर्मदा तथा नील नदी की सभ्यताओं की खोज के द्वारा यह तथ्य पूर्णरूपेण स्पष्ट है क्योंकि ये सभी सभ्यतायें प्रकृति पर निर्भर थीं तथा सभी में मातृ पक्ष की प्रबलता के प्रमाण सन्निहित हैं । मोहन जोदड़ों की खोज के सम्बन्ध में जहाँ सिन्धु घाटी की सभ्यता ने जन्म प्राप्त - किया ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदों से आगम अत्यन्त प्राचीन है । ये आगम वेदों के पूर्व ही लोगों द्वारा ज्ञात थे तथा भारतीयों द्वारा इनका प्रयोग अबाध गति से चल रहा था । विश्व में फैली हुई मानवता के सांस्कृतिक एवं पारम्परिक मूल्यांकन के परिप्रेक्ष्य में यदि तन्त्र-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तो यह उपरिचित सर्व व्यापित्व तथा अविस्मरणीय समय का स्वत: भान हो जाता है । इस प्रकार का अध्ययन स्पष्ट रूप से (मध्य-एशिया, चीन, तिब्बत, हिमालय की तराई, दक्षिण में श्रीलंका, पश्चिम में कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो) अन्य देशों के निवासियों के जीवन में अपनाये गये नियमों, तथा विश्वासों से परिलक्षित होता है । इन समस्त सभ्यताओं से उत्पन्न कर्त्री, रक्षण-शीला, तथा संहारकर्त्री शक्ति जो शक्ति (मातृ) पक्ष से सम्बन्धित है - तन्त्र की गूढ़ता को ही प्रदर्शित

करती है ।[1] पूर्व वैदिक और पूर्व ऐतिहासिक भारतवर्ष में 'शक्तिपक्षीय विचार - धारा' के रूप में तान्त्रिक यज्ञिय कर्म और रहस्यात्मक कार्य सम्पादन उपासना का मुख्य केन्द्र-बिन्दु थे । मात्र 'शक्ति' ही एक ऐसी थी जो मनुष्यों की भाव - नात्मक रिक्ति को दूर कर आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा पूर्ण सहयोग एवं सहायता प्रदान कर सकती थीं । वेदों[2] में 'उमा' जो स्त्रीलिंग है समस्त शक्तियों की अधिष्ठात्री है, उपनिषद् की हैमवती आगे चलकर पुराणों में पृथिवी के रूप में कही गयी हैं ।

उसी समय आर्यों ने एक ऐसे आन्दोलन का सूत्रपात किया जो एक ऐसी पृष्ठभूमि पर आधारित था जिस पर तान्त्रिक विश्वास आधारित थे, तथापि बहुत सी विभिन्नतायें विद्यमान थीं, जिनका साक्षात् सम्बन्ध आर्यों के सामाजिक मूल्यों एवं परिस्थितियों से था, स्पष्ट रूप से वेदों में परिलक्षित होते हैं । वेदों तथा परवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में यह परिवर्तन तथा ग्रहण स्पष्ट रूप से विजित एवं विजयी के मध्य स्पष्टतया विद्यमान हैं । आर्यों ने पशुपालन छोड़कर कृषि कर्म अपना लिया और उनके धार्मिक विश्वासों एवं यज्ञीय परम्पराओं में भी अत्यधिक परिवर्तन होने लगा । यह परिवर्तन तन्त्र-सम्प्रदाय के साथ अचेतन रूप में समझौते के ही कारण विचारणीय हो सका । उदाहरण स्वरूप 'सीता' जो एक फलप्रद कृषि की देवता हैं को ऋग्वेद[3] में स्थान प्राप्त

1- केनोपनिषद द्रष्टव्य

2- शैविज्म एण्ड द फाल्लिक वर्ल्ड, वाल्यूम 1, पृ0 75

3- ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल 57/6-7

हुआ और इसने ऋग्वेद[1] में अत्यधिक महत्व को प्राप्त अदिति को अपने में समाहित कर लिया । अथर्ववेद[2] में अदिति आदित्यों की माता के रूप में आयी है, तथा पौराणिक युग में यही अदिति ऋषि कश्यप की पत्नी बन गयी है । इस प्रकार वह अपने महत्व को प्राप्त विश्वदेव में भी वर्णित है और सीता का रूप भी प्राप्त किया है । सीता का विकास एक देवता के रूप में इस प्रकार हुआ कि तन्त्र की विचारधारा में वह इस प्रकार समाहित हुई कि वह इच्छा ज्ञान और क्रिया की अधिष्ठात्री के स्रोत रूप में सर्वोच्च सत्य अथवा सर्वोच्च चेतना के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।[3]

तन्त्र विद्या में देवी या शक्ति के अनेक रूपों की उपासना उनके मूर्तिगत स्वरूप में भी दिखायी देती है । ऐसे प्रमुख स्वरूप दशमहाविद्या देवियों के मिलते हैं जिनमें सबसे विशिष्ट तान्त्रिक स्वरूप और शव-शिवा काली का है । सर्वोच्च सत्ता के द्वन्द्वभाव को पुरुष और प्रकृति के रूप में कल्पित किया गया है । उनके महामिलन भाव की कल्पना का मूर्त स्वरूप तन्त्रकला में उनके युगनद्ध रूप में दिखायी देता है । यही देवात्मक प्रतीकों में क्रमशः श्वेत और रक्तवर्ण के दो बिन्दुओं द्वारा अधोमुखी और उर्ध्वमुखी दो त्रिकोणों के संयुक्त अंकन द्वारा प्रकट मिलता है । मानव अवयव के आधार पर लिये पुरुष और शक्ति के प्रजननात्मक चिह्न

1- ऋग्वेद प्रथम मण्डल 47/10 विश्वदेवसूक्तम्

2- अथर्ववेद 7/2/15, 8/7/27, 7/1/4, 13/2/7

3- सीतोपनिषद् 1, श्लोक

लिंग और योनि इसी भाँति तंत्रकला के महत्त्वपूर्ण प्रतीक हैं । तन्त्र पूजा में मातृशक्ति का सर्वोच्च प्रतीक योनि माना जाने के कारण कला में उसका विविध रेखात्मक अंकनों के अतिरिक्त यथार्थ योनिपरक रूप भी लोकप्रिय दिखायी देता है ।

अनेक तान्त्रिक देवियों के आसन या वाहन के रूप में मानव शव या प्रेत दिखायी देता है । शव-शिवा काली के अद्भुत तान्त्रिक स्वरूप में शव-रूप शिव पर देवी संभोग मुद्रा में आसीन अंकित की गयी हैं । संहार और विकास के विभिन्न स्वीकृत प्रतीकों में नरमुण्ड का विशेष स्थान है । छिन्नमस्ता स्वरूप में देवी स्वयं अपना सिर काटकर उठाये हुये दिखायी गयी हैं । इस रूप में तथा देवी के अन्य स्वरूपों में भी उसे नरमुण्डों की माला धारण किये हुये दिखाया गया है । शिव तथा अनेक बौद्ध तान्त्रिक देवी-देवता भी कला में मुण्डमाला पहने दिखाये गये हैं । तान्त्रिक देवकल्पना का एक विशिष्ट स्वरूप सप्तमुण्डी आसन है । जिसमें देवी सात नरमुण्डों के आसन पर बैठी हुई दिखायी गयी हैं ।

यन्त्र रचना तन्त्र कला की निजी विशेषता है । स्वयं देवता की प्रतिमा भी यन्त्र का एक प्रकार है । तान्त्रिक कला में उपलब्ध यन्त्रों के असंख्य उदाहरण दिखायी देते हैं क्योंकि सभी प्रकार की रूपात्मक अभिव्यक्ति तान्त्रिक परिभाषा में यन्त्र कहलाती है । प्रत्येक इष्ट-देवता, साधना कृत्य और सिद्धि या उद्देश्य की प्राप्ति के साधन के लिये यन्त्र का निर्माण किया जाता है । देवता यन्त्रों में सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय यन्त्र श्रीचक्र या श्रीयन्त्र है । वह पुरुष और शक्ति

का संयुक्त प्रतीकात्मक स्वरूप प्रकट करता है । मुख्यतया अन्य देवता यन्त्रों में भी इन्हीं प्रतीकों का आवश्यकतानुसार विविध विनियोग मिलता है । सिद्धि परक यन्त्रों में पशु आकार, पक्षी आकार, बीजाक्षरों या बीजांकों से युक्त कोष्ठक पदचिह्न हस्त, भवन आदि प्रतीक मिलते हैं ।

तान्त्रिक शरीर विज्ञान और प्रतीक शास्त्र की विशिष्ट अभिव्यक्ति मानव शरीर के षट्चक्रों की कल्पना में दिखायी देती है । सभी सम्प्रदायों की तान्त्रिक साधना का मूलाधार षट्चक्र विद्या मानी गयी है जिसकी स्वरूपात्मक अभिव्यक्ति इन चक्रों की रचना में मिलती है । षट्चक्र मानव शरीर में स्थित शक्ति के विभिन्न केन्द्रों से सम्बन्धित तान्त्रिक सिद्धान्तों का अत्यन्त कलात्मक अंकन प्रकट करते हैं ।

तन्त्रों में शक्ति के अनेक प्रकार बताये गये हैं - जैसे भैरवी, योगिनी, कन्दवासिनी, रूद्राणि, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, डाकिनी, राकिणी, भेदिनी, छेदिनी इत्यादि ।

दशमहाविद्या रूप

महाविद्या की अवधारणा

'विद्या' शब्द संस्कृत की 'विद् ज्ञाने धातु' से निष्पन्न है जिसका अर्थ जानना अथवा समझना होता है । महाविद्या ज्ञान का वह विशाल मार्ग है जिसके माध्यम से सर्वोच्च सत्य का भान होता है । दशमहाविद्यायें हैं, दश विशाल मार्ग हैं । दार्शनिक और प्रयोगात्मक लक्षण पर आधारित ये मार्ग सर्वोच्च सत्य को दशस्वरूपों में विभक्त करते हैं ।

दशमहाविद्याओं की अवधारणा और शक्ति-अद्वयवाद का सिद्धान्त गौड़पाद और शंकराचार्य के काल में स्थापित हुआ । इसका साक्ष्य गौडपादाचार्य के 'श्रीविद्यारत्नसूत्र' और शंकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' मे प्राप्त होता है । इसी समय मे शक्ति उपासना की एक अविच्छिन्न धारा आधुनिक युग तक लिखित एवं प्रयोगात्मक दोनों रूपों में अद्यावधि प्रवाहित हो रही है । महाविद्याओं की अवधारणा के पश्चात् भी छोटे - छोटे देवताओं की उपासना समाप्त नहीं हुई । उपासक की योग्यता, क्षमता एवं साधन-शक्ति के आधार पर यही शक्ति विभिन्न स्वरूपों में समस्त सम्प्रदायों में पूजित होती है ।

पूर्ण रूपेण विकास को प्राप्त अपने दर्शन द्वारा तन्त्र सर्वोच्च सत्य अथवा शक्ति द्वारा समस्त पदार्थों पर अपना पूर्ण आधिपत्य के मत की स्थापना करता है तथा साथ ही साथ अनेक देवी-देवताओं को भी बिना किसी अन्तर्विरोध के स्थान प्रदान करता है ।

दशमहाविद्याओं के व्यक्तित्व की अवधारणा धीरे-धीरे विकास के मार्ग में एक क्रान्तिकारी कदम था । इस सन्दर्भ में देवियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -

1- उच्च (आत्मस्तरीय सम्बन्धी)

2- निम्न (वाह्य जगत से सम्बन्धित)

ये दोनों साधकों को उनकी आवश्यकता के तहत पूर्ण करती हैं तथा प्राप्ति के मार्ग में वे अत्यावश्यक वस्तु हो जाती हैं । चेतना के निम्नस्तरीय

ये देवता क्षुद्र-देवता कहलाते हैं और शक्ति भी इनकी सीमित है । दूसरे प्रकार के जो उच्चश्रेणी के देव हैं, वे दिव्य शरीरधारी हैं । ये उच्चश्रेणी की शक्तियाँ एवं देवियाँ उपनिषद में 'ब्रह्मविद्याओं' और तन्त्र में महाविद्याओं' की संज्ञा से जानी जाती हैं । चेतना के अनेक स्तर होने से इनके नामों में अन्तर है । काली, तारा, षोडशी §त्रिपुरसुन्दरीया श्री विद्या§, भुवनेश्वरी, श्री भैरवी, छिन्न - मस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका । ये समस्त दशों महाविद्यायें अपनी विशेष दार्शनिक भूमि पर आधारित हैं तथा प्रयोगात्मक स्तोत्र वाली भी हैं । इनका विशाल साहित्य समुपलब्ध होता है । तथा कुछ ही साधक विश्वास एवं श्रद्धा से महाविद्या के मार्ग का अनुकरण करते हैं ।

देवमाता अथवा त्रिपुरसुन्दरी, जो दशों-महाविद्याओं में प्रधान है, श्रीविद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं । यह श्रीचक्र के केन्द्र में बाह्य सम्प्रदायों वालों द्वारा पूजित होती है, दूसरे सम्प्रद्राय में आन्तरिक और मिश्र सम्प्रदाय में अन्तर्बाह्य दोनों प्रकार से §बाह्य अन्त: क्रमश: समय और कौलमार्ग§ । वैदिक विद्वान श्रीविद्या की पहचान तो कर लेते हैं किन्तु अन्य विद्याओं के विषय में मौन हैं । श्रीविद्या ज्ञान कीअंतिम सीमा है तथा इसकी सर्वथा परिपूर्ण दार्शनिक पृष्ठभूमि और वैज्ञानिक व्याख्या है । जब हम श्रीचक्र और ज्यामितीय चित्र को सीखने का प्रयास करते हैं तो यह ज्ञान प्राप्त होता है इसकी तुलना सृष्टि के विकास-सिद्धान्त से की जा सकती है । श्रीविद्या के मत से महाशिव और शक्ति की एकता बीज गर्भ में जगत इसका विस्तार है ।

दशमहाविद्यायें - आविर्भाव रहस्य

श्रीमद्भागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्ध में यह वर्णन आया है कि एक बार विश्वसृष्टि यज्ञ में समस्त देवता और ऋषिगण विराजमान थे । प्रजापति दक्ष के आगमन पर समस्त उपस्थित जनसमुदाय खड़ें होकर स्वागत और नमस्कारादि कर सम्मानित किया, किन्तु देवाधिदेव शंकर ध्यानस्थ होने के कारण नहीं उठ सके किन्तु दक्ष प्रजापति ने यह सोचते हुए कि यह मेरा दामाद होने पर भी मेरा सम्मान नहीं कर रहा है ऐसा मानते हुए शंकर जी को तिरस्कृत करते हुए शाप दिया कि अद्यप्रभृति यज्ञ भाग से वंचित हो जाओ ।

तदनन्तर दक्षप्रजापति ने शिव रहित एक यज्ञ का अनुष्ठान किया । इस यज्ञ में मात्र शिव और पार्वती नहीं आमन्त्रित किये गये । अत: यज्ञ का समाचार सुनकर सती सुहृदया जनों को देखने की इच्छावश यज्ञ-दर्शनार्थ शिवजी से दक्षालय गमन हेतु प्रार्थना किया । लेकिन शिव ने कार्य प्रयोजन होते हुये भी बिना बुलाये पितृगृह नहीं गमन करना चाहिये - ऐसा कहते हुए सती को रोकने का प्रयत्न किया ।[2]

सती ने महाक्रोध के साथ दशमहाविद्याओं का रूप धारण कर दशों दिशाओं को आच्छादित करती हुई भगवान शंकर को विभ्रान्त कर डाला ।[3] तत्पश्चात

1- श्रीमद्भागवत पु0 4/2-3 अध्याय

2- सुहृद्दिदृक्षा प्रतिघातदुर्मना: स्नेहाद् रुदत्यश्रुकलातिविह्वला ।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथु: ।। - श्रीमदभाग0-4 स्कन्ध, 3/2

3- तत: क्रुद्धा महाकाली घोररूपमकल्पयत् ।
ततो भयेन भूतेश: पलायनपरोऽभवत् ।। - बृहद्धर्मपुराण

दाक्षायणी क्रोधवश महाघोररूप महाकाली की मूर्ति धारण की । उन्हें देखकर शिव भय से पलायन हो गये । इस महद् भय से इधर-उधर दौड़ते हुए शिव की दशा का अवलोकन कर 'माभैमभैरिति गिरा पलायस्व' वाणी द्वारा शिव को स्थिर करने का उद्यम किया, तथापि शिव की धावन क्रिया स्थिर नहीं होती देखकर, निवारणार्थ दशों दिशाओं में दशमूर्ति धारण कर शिव का स्पष्ट अवलोकन करती हुई देदीप्यमान होने लगी ।[1] पुनश्च देवी ने विचार किया, कि देवी ने भयंकर मूर्ति धारण कर अट्टहास किया जिसे सुनकर शिवजी विमूढ़ हो गये ।[2] इस मूर्ति के दृष्टि पथ में आते ही वे अत्यधिक वेग से दौड़ने लगे । किन्तु जिस भी दिशा में जाते उधर ही एक मूर्ति देखकर लौट पड़ते थे, क्योंकि दशों दिशाओं को दस महाविद्याओं ने आच्छादित कर लिया था । भगवान शंकर ने भय से दौड़ना समाप्त कर नेत्रों को निमीलित कर लिया । कुछ समय पश्चात तीनों नेत्रों को खोलकर देवी का पुन: तद्वत दर्शन कर भयभीत शिव के प्रश्न करने पर - हे देवि ! मेरी पत्नी सती कहाँ है ? पुर: स्थित देवी ने ज्ञापित किया कि मैं वही सती

1- त्यक्त्वैनमपि दर्पिष्ठं पितरंच प्रजापतिम् ।
संस्थास्यामि कियत्कालं स्वस्थानं निजलीलया ।।
ततश्च प्रार्थितानेन भूत्वा हिमवत: सुता ।
शम्भो: पत्नी भविष्यामि भूयोऽहं स्वयमेव हि ॥ - महाभा० पु०, अष्टम अध्याय

2- त्यक्त्वा हेमिं रुचिं प्रासीद् कृष्णांजनसमप्रभा ।
दिगम्बरगलत्केशा लोलजिह्वा चतुर्भुजा ।।
कामालसलसद्देहा स्वेदाक्ततनूरुल्वना ।
महाभीमा घोररावा मुण्डमालाविराजिता ।। - शाक्त दर्शन, अष्टम परिच्छेद. पृ० 192

हूँ तथा चराचर जगत की अधिष्टात्री सृष्टि पालन एवं संहार की विधायिका हूँ ।[1] मैने स्वयं ही पिता के यज्ञ का विनाश करने हेतु इस प्रकार की मूर्ति का ग्रहण किया है । दशों दिशाओं में महाभयकारी 10 महाविद्यायें दृष्टिगोचर हो रही हैं, ये सभी मेरे से ही उत्पन्न हैं । तुम्हें रोकने के लिये मैने इनका सृजन किया है, और ये सब मेरे ही समान हैं ।[2] इस प्रकार अन्य सभी दिशाओं में परिलक्षित शक्तियाँ मेरे ही रूप हैं ।

इन दश महाविद्याओं के नाम एवं संख्या के विषय में तन्त्रशास्त्र में वैसे ही मतभेद है जैसे विभिन्न पुराणों में विष्णु के नाम और अवतार के सम्बन्ध में ।

1- अहन्तु: प्रकृति: सूक्ष्मा सृष्टिसंहारकारिणि ।
अभवं तद्वनितायै त्वदर्थे गौरदेहिका ।।
त्वामेव लिप्सु: पुरूष प्राक्स्वीकृतवशाच्छिव
साहं पितुर्महायज्ञविनाशाय भयानका ।
अभवं तन्तुमाभीतिं कुरूमत्रोमहेश्वर ।। - शा0 द0 अष्टम परिच्छेद, पृ0 194

2- एता: सर्व्वा महदेव महाविद्या: समप्रभा:
आसां नामानि वक्ष्यामि श्रृणु तानि महेश्वर ।।
काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च सुन्दी बगलामुखी ।।
धूमावती च मातंगी नामान्यन्यानि वै शिव । - शा 0 द0 पृ0 195

तन्त्रसार और मालिनी विजय में पृथ्वीमण्डल दोषराशि शून्य महाविद्यायें फलसहित महाविद्या कहलाती हैं । §1§ काली §2§ नीलतारा §3§ महादुर्गा §4§ त्वरिता §5§ छिन्नमस्ता §6§ वागवादिनी §7§ अन्नपूर्णा §8§ प्रत्यंगिरा §9§ कामाख्या - वासिनी §10§ बालात्रिपुर सुन्दरी §11§ मातंगी §12§ शैलवासिनी कामाख्या । विशेष तन्त्र मत से महाविद्याओं की संख्या 18 है । उनमें विभागानुसारण - 'काली कुल और श्रीकुल' से दो विभाग हुए ।

§1§ कालीकुलान्तर्गता नवमहाविद्यायें -

§1§ काली §2§ तारा §3§ छिन्नमस्ता §4§ भुवनेश्वरी §5§ महिष - मर्दिनी §6§ त्रिपुरा §7§ त्वरिता §8§ दुर्गा §9§ प्रत्यंगिरा हैं ।

§2§ श्रीकुलान्तर्गता नवमहाविद्याये -

§1§ सुन्दरी §2§ भैरवी §3§ बाला §4§ बगला §5§ कमला §6§ धूमावती §7§ मातंगी §8§ स्वाप्नावती §9§ मधुमती हैं ।

तथापि शाक्त-प्रमोद में भी चामुण्डा और मुण्डमाला तन्त्र की भाँति काली, तारा, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला - ये दशमहाविद्यायें मानी गयी हैं । इनमें से प्रत्येक महाविद्या के बहुत से भेद हैं । तन्त्र शास्त्र में उनका ध्यान उपासना - विधि और मन्त्र वर्तमान तथा प्राचीन साधक मण्डली के नामों की लम्बी सूची भी वर्णित हैं तथा उनके सम्प्रदायगत साहित्य भी विद्यमान हैं ।

महाकाल पुरूष की शक्ति महाकाली

प्रसिद्ध विश्वातीत महाकाल पुरूष की शक्ति का ही नाम महाकाली है । शक्ति से शक्तिमान अभिन्न है । शक्ति शक्तिमान में स्त्री-पुरूष भेद अनुचित है । इसी आधार पर रहस्यशास्त्र कहता है -

आसीदिदं तमोभूतम् प्रज्ञातमलक्षणम् ।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वत: ।। {मनु0 1/5}

वह अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य तत्व ही महाकाल है । उसी की शक्ति महाकाली है । सृष्टि से पहले इसी महाविद्या का साम्राज्य रहता है । अतएव महाकाली आगमशास्त्र में प्रथम, आद्या आदि नामों से व्यवहृत हुई हैं । शक्ति के उन्हीं स्वरूपों को समझाने के लिये निदान विद्या के आधार पर ऋषियों ने उनकी मूर्तियों का निर्माण किया है ।

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन: ।

उपासकानां सिद्धयर्थं ब्राह्मणों रूपकल्पना ।।

इस आर्ष-सिद्धान्त के अनुसार उनके स्वरूप ज्ञान एवं उपासना के लिये उनकी कल्पित मूर्तियाँ बनायी गयी हैं । दशमहाविद्याओं के स्वरूप का निदान से सम्बन्ध है ।

प्रकृति में शक्ति-तत्व ही निरूपणीय है । शक्ति प्रतिमा के अनेक रूप हैं । महाकालपुरूष की महाशक्तिरूपा जिस महाकाली का पूर्व में निरूपण किया गया है । यदि महाकाली की उपासना करना है तो निम्नलिखित ध्यानानुमोदित स्वरूप पर दृष्टि डालना चाहिये -

शवारूढ़ां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम् ।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम् ।।
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम् ।
एवं संचिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ।।

{ शाक्त प्रमोद - कालीतन्त्र }

महाकाली नाम की महाशक्ति प्रलयरात्रि के मध्यकाल से सम्बन्ध रखती है । संसार जब तक शक्तिमान रहता है, तभी तक वह शिव है । शक्ति निकल जाने पर वह शव बन जाता है । विश्वातीत परात्पर नाम से प्रसिद्ध महाकाल की शक्तिभूता महाकाली का विकास विश्व से पहले है । विश्व का संहार करने वाली कालरात्रि वही हैं । प्रलय काल में विश्व शव के समान हो जाता है उस पर अकेली आद्याशक्ति महाकाली खड़ी रहती हैं । इसी रहस्य को समझने के लिये शव को शक्तिशून्य अतएव शवरूप विश्व का निदान माना गया है । उस महाशक्ति का पूर्णविकासकाल है प्रलय काल ।

जो महाकाली परम शिवरूपा हैं, उनकी आराधना से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है । जो महाकाली जीवीत काल में सबका आधार बनी रहती हैं, वही प्रलयकाल में भी आधार रहती हैं । भगवती महाकाली का स्वरूप बिल्कुल नग्न है । समस्त विश्व महाविद्या काली का आवरणरूप है, वह विश्व की रचना - कर उसी में प्रविष्ट हो जाती है किन्तु जब वह संहार कर्म करती हैं तो स्वस्वरूप से उग्र हो जाती हैं । समस्त विश्व जब श्मशानरूप हो जाता है, तभी तपोमयी महाकाली का विकास होता है ।

<u>महाकाली के भेद</u> - काली महाविद्या के कई भेद प्राप्त होते हैं -

§1§ दक्षिणाकाली

§2§ गुह्यकाली

§3§ भद्रकाली

§4§ श्मशानकाली

§5§ महाकाली

§6§ कामकलाकाली

§7§ सिद्धिकाली

मार्कण्डेय पु0 के विशिष्ट भाग - 'दुर्गा सप्तशती ' के उत्तमचरित में काली के अन्य कई भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

अक्षोभ्यपुरूष की महाशक्ति तारा

तारा दूसरी महाविद्या हैं । प्रथम महाविद्या काली का आधिपत्य रात्रि बारह बजे से सूर्योदय प्रभृति रहता है । तारा महाविद्या का रहस्यबोध कराने वाली 'हिरण्यगर्भ विद्या ' है, जिसके अनुसार वेदों ने सम्पूर्ण विश्व का आधार सूर्य को स्वीकार किया है । विश्व केन्द्र में प्रतिष्ठित हिरण्यगर्भ भू:, भुव:, स्व: रूप त्रिलोकी का निर्माण करता है और उसके अधिष्ठाता स्वयम्भू परमेष्ठी रूप अमृतसृष्टि का पृथिवी चन्द्र रूप मर्त्यसृष्टि का विभाजन एवं संचालन करता है । हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव सौर केन्द्र में होता है, जिसका वर्णन ऋग्वेद इस प्रकार करता है -

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यह श्रुति इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है जैसे विश्वातीत काल - पुरूष की शक्ति महाकाली थी वैसे ही विश्वाधिष्ठाता इस हिरण्यगर्भ पुरूष की शक्ति 'तारा' है । श्रुति में सूर्य नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध है ।[1] अतएव इनकी शक्ति आगमशास्त्र में 'तारा' नाम से प्रसिद्ध हुई । यह पुरूष तन्त्रशास्त्र में अक्षोभ्य नाम से प्रसिद्ध है ।

अन्नाहुति से पूर्व सूर्य महाउग्र था । उस समय के उग्र सूर्य की जो शक्ति थी वही उग्रतारा नाम से प्रसिद्ध हुई । जब तक अन्नाहुति होती रहती है तब तक 'तारा' शान्त रहती है । उसी उग्रभाव का, उग्रशक्ति का निरूपण करता हुआ रहस्य कहता है । शाक्त प्रमोद तारा तन्त्र में यह स्पष्ट हो जाता है ।[2]

1- शत० ब्रा० 2/1/21/8

2- प्रत्यालीढ़प्रदार्पिताङ्घ्रिशव हृदघोराट्टहासा परा

खड्गेन्दीवरकर्त्रि खर्प्पर भुजाहुंकार बीजोद्भवा ।

खर्वा नीलविशालपिंगल जटाजूटैक नागैर्युता

जाड्यं न्यस्य कपाल कर्तृजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ।।

शाक्त प्रमोद - तारातन्त्र

उग्रतारा सूर्यप्रलय की अधिष्ठात्री है, यह शक्ति महाप्रलयकाल में जहरीली गैसों से ही विश्व का संहार करती हैं। प्रलयकाल में वायु दूषित होकर विषाक्त बन जाता है। इसी का प्रतीक साप है। उग्रतारा की सत्ता विश्व केन्द्र में स्थित है। प्रलय हो जाने पर जब श्मशान शवरूप हो जाता है, तब उग्रतारा इसी शवरूप केन्द्र पर आरूढ़ रहती है - यही शव के हृदय पर सवार होने का प्रतीक है।

सौर-अग्नि अन्नाहुति बन्द होने से प्रबल वेग धारण कर लेता है। सायं - सायं शब्द करने लगता है। इसी का निदान अट्टहास है। यजुर्वेद में 'नीलग्रीवोविलोहित' कहकर सूर्य को नीलग्रीव कहा गया है। यह पिंगल वर्ण है। उग्रसूर्य की शक्ति तारा भी नीलग्रीव और पिंगलवर्ण है। सूर्य की रश्मियाँ तारा की जटायें हैं। प्रत्येक सौर-रश्मि प्रलयकाल में जहरीली - गैसें भरी रहती हैं, इसी को 'नीलविशाल पिंगल जटाजूटैक नागर्युता' कहा गया है।

तारा के भेद

शाक्तप्रमोद में इसे एक जटा, नीलसरस्वती, उग्रतारा, महातारा, विद्याराज्ञी प्रभृति नामों से वर्णित है। यह मात्र क्रीड़ा करने से ही वाक्प्रदा है। अतएव 'नीलसरस्वती' जीव की रक्षा का सुख [मोक्ष] प्रदान करने के कारण उग्रतारा कहलाती है।[1] कालिका पुराण में उग्रतारा के लिये उल्लिखित है कि वे कामाख्या

1- तारा चोग्रा महोग्रा च व्रजनीलासरस्वती।
कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृता ॥
नीलतन्त्र 12 वाँ पटल, शाक्त० पृ० 24

महापीठ में विराजती हैं ।[1] नीलतन्त्र में आठ प्रकार की तारा का वर्णन है । विशेष तन्त्र भेद से आम्नाय भेद के कारण तारा महाविद्या के अनेक भेद किये गये हैं ।

पंचवक्त्र शिव की महाशक्ति 'षोडशी'

तृतीया महाविद्या 'षोडशी' अथवा 'श्रीविद्या' के नाम से प्रसिद्ध है, इस महाविद्या को ही श्रीललिता, बाला, त्रिपुरसुन्दरी, सुन्दरी, त्रिपुरा, राजराजेश्वरी, कला, सुभगा, कामेश्वरी आदि नामों से जाना जाता है ।

त्रिपुरोपासक चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय के अनुसार तान्त्रिक उपासना करते हैं । चन्द्रमा की षोडश कलायें हैं, जिसमें से प्रथम पन्द्रह का ही वृद्धि और क्षय होता है सोलहवी विकारहीन होने के कारण 'नित्या' है तथा अमृता चन्द्रकला एवं षोडशी कहलाती है । वैयाकरण इसे 'पश्यन्तीवाणी' मानते हैं । दर्शनशास्त्र में पहुँचकर यही 'आत्मा' कहलाने लगती हैं तथा मन्त्रशास्त्र में - 'मन्त्रस्वरूप और देवतास्वरूप' से ज्ञेय होती हैं ।

शिवात्मक सूर्य शक्ति का ही नाम 'षोडशी' है । रुद्रशक्ति तारा थी शिव शक्ति षोडशी है । सूर्य ही त्रैलोक्य के समस्त प्राणियों का अमृत-मर्त्य का निर्माण करता है । वेदों में इसके प्रमाण मिलते हैं -

---

1- ब्रह्मशैलस्य पूर्व्वस्यां भूमिपीठे व्यवस्थितम् ।
चारुनिम्नशुभावर्त्तं कामाख्यानाभिमण्डलम् ।।

कालिका पु0 , शा0 द0 पृ0 206

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।' - शुक्ल यजु0 सं0, 7/42

'निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच ।' - ऋक् सं0, 1/35/2

'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः ।' ऋक्0 सं0, 7/63/4

इस शिवात्मक सूर्य शक्ति को तन्त्र शास्त्र में 'पंचवक्त्र शिव' की शक्ति 'षोडशी' कहते हैं । मध्याह्न काल का सूर्य 'घोर सूर्य' कहा जाता है और प्रातः काल का शिव शान्त-शिव कहलाता है । पंचवक्त्र शिव पंचकल, अवयव पंचकल, अक्षर पंचकल, आत्मक्षर परात्पर की समष्टि है, इसीलिये इन्हें 'षोडशीपुरुष' कहा जाता है । स्वयम्भू परमेष्ठी सूर्य चन्द्र और पृथिवी - इन पाँचों में से एकमात्र सूर्य में ही षोडशी का पूर्ण विकास होता है क्योंकि स्वयम्भू परमेष्ठी में विकास नहीं हो पाता । वहाँ 'षोडशी' अन्तर्लीन रहती हैं । स्वयम्भू परमेष्ठी सूर्य, चन्द्र, अग्नि और सोम इन पाँच अक्षरों की प्रधानता रहती है इन पाँचों में जो इन्द्रात्मक सूर्य है उसमें ही षोडशी का विकास है, इसीलिये सूर्य रूप इन्द्र के लिये कहा गया है - 'इन्द्रो वै षोडशी' ।[1]

सूर्य से षोडशकला पुरुष का पूर्ण विकास होने के कारण यह षोडशी है और इसकी शक्ति भी 'षोडशी' कहलाती है । इस षोडशी शक्ति से ही - भूः भुवः और स्वः रूप तीन ब्रह्मपुर उत्पन्न है । अतः इसे 'त्रिपुरसुन्दरी' कहा गया है । शाक्त प्रमोद में इस महाविद्या का स्वरूप निम्न है ।

बालार्कमण्डलाभाषां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुश - शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ।।

(शाक्तप्रमोद-षोडशी तन्त्र)

'त्रीणि ज्योतींषि सचतेसषोडशी' के अनुसार उस शिवशक्ति ने इन्हीं तीनों ज्योतिषियों से विश्व को प्रकाशित कर रखा है । ये तीन ज्योतियाँ - अग्नि, प्रकाश और चन्द्र हैं । इन्हीं तीन ज्योतियों का प्रतीक त्रिपुरसुन्दरी का त्रिनेत्र है । त्रिपुरसुन्दरी सोमाहुति प्राप्तकर शान्त रहती है । अत: प्रात:काल का बालसूर्य त्रिपुरसुन्दरी की साक्षात प्रकृति है, अतएव बालार्क कहा गया है । सूर्य से उत्पन्न होने वाली प्रज्ञा सौरशक्ति से आबद्ध रहती है उस सौर शक्ति ने अपने आकर्षण रूप पाश से सबको बाँध रखा है ।

इस तरह त्रिपुरसुन्दरी सभी पर अंकुश रखती हैं, अंकुश इसी का प्रतीक है । जो उसके निर्धारित नियमों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें वह मार डालती हैं । तीनों लोकों में व्याप्त अन्न, वायु और वर्षा, ये तीन प्रकार के त्रिपुरसुन्दरी के बाण हैं, जिससे वह संहार करती हैं । इससे स्पष्ट हो जाता है कि षोडशी के सम्पूर्ण शरीर का रंग प्रात:कालीन सूर्य के सदृश है ।

त्र्यम्बक शिव की महाशक्ति भुवनेश्वरी महाविद्या

त्र्यम्बक शिव की महाशक्ति भुवनेश्वरी हैं । सूर्य मे उत्पन्न होने पर परमेष्ठ्य सोम की आहुति हुई जिससे यज्ञ हुआ और यज्ञ से त्रैलोक्य का निर्माण हुआ । विश्वोत्पत्ति के उपक्रम में 'षोडशी' की सत्ता थी, किन्तु जब वह भुवनों का संचालन करती हैं तो वही भुवनेश्वरी कहलाने लगती हैं । यह महाविद्या चौथी सृष्टिधारा और सृष्टिविद्या है । शारदातिलक में भुवनेश्वरी के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया गया है -

उद्यद्दिनकर द्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मेरमुखीं वरांकुशपाशामभीतिकरां प्रभजेद् भुवनेशीम् ।।

उदित होते हुये सूर्य के सदृश किरीट में चन्द्रमा सुशोभित है, उतुंग पयोधर वाली तथा त्रिनयना और हास्यवदना है । चारों भुजाओं, वराभयमुद्रा, पाश और अंकुश धारण किये हैं । सूर्य में यदि सोमाहुति न होती तो यज्ञ न होता और यज्ञ न होने से भुवनरचना असम्भव हो जाती, जिसके कारण भुवनेश्वरी प्रसुप्त ही रहती, सूर्य के मस्तक पर ब्राह्मस्पत्य सोम आहुत हो रहा है, इसी से भुवन उत्पन्न होते हैं और भुवनेश्वरी प्रबुद्ध होती हैं । 'इन्दुकिरीटां' इसी अवस्था का प्रतीक है । संसार में जितने भी यज्ञ है, उन सभी से भुवनेश्वरी को आहुति प्राप्त होती है ।84 लक्ष योनियों का भरण-पोषण करने के कारण यह 'वरदा' है । जो भुवन प्रत्यक्ष प्रलय में विलीन था वह भुवनेश्वरी के प्रभाव से विकसित हो रहा है । दयामयी-कृपामयी माँ की दृष्टि का प्रतीक 'स्मेरमुखी' और शासन शक्ति का प्रतीक 'शंकु' है । तन्त्र शास्त्र में भुवनेश्वरी के मूर्ति भेद और बीज-मन्त्र अलग - अलग दिये गये हैं । शाक्त प्रमोद में भुवनेश्वरी प्रकरण, तन्त्र सार में उनकी पूजा - पद्धति, देवीभागवत §12/12§ अध्याय में मणिद्वीपभगवती भुवनेश्वरी विवरण, देवी भा0 टीका में शैव नीलकण्ठों द्वारा भुवनेश्वरी तत्त्व आलोचित हैं । यह प्रसंग भुवनेश्वरी उपनिषद् में है ।

कबन्ध शिव की महाशक्ति छिन्नमस्ता

'कबन्ध और छिन्नमस्ता' का शब्द बोध समझने के लिये साहित्य और आगमसाहित्य का अध्ययन परमावश्यक है । छिन्नमस्ता का शाब्दिक अर्थ कटे हुये

शिरवाली महाविद्या है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सृष्टि का मूलयज्ञ 5 भागों में विभक्त है - पाकयज्ञ, महायज्ञ, शिरोयज्ञ, हविर्यज्ञ और अतियज्ञ ।

'छिन्नशीर्षा वैयज्ञ: ' श्रुति के अनुसार उपर्युक्त समस्त यज्ञ छिन्न-शीर्ष शिर -रहित है इसीलिये प्रथम चारों यज्ञों के अन्त में अतियज्ञ के न करने से यज्ञ अधूरे ही रह जाते हैं । ब्राह्मण-ग्रन्थों में शिरोयाज्ञ को 'सम्राटयाग, प्रवर्ग्ययाग, धर्मयाग और महावीरोपासनायाग कहा गया है । ब्रह्मयज्ञ और प्रवर्ग्ययाग का सम्बन्ध छिन्नमस्तक से है । ब्रह्मौदन यज्ञ से आत्मरक्षा और प्रवर्ग्य याग से सृष्टि का स्वरूप बनता है । यही 'प्रवर्ग्य तन्त्र की भाषा में काबन्ध' कहलाता है और इसकी महाशक्ति 'छिन्नमस्ता' है जो पराडाकिनी है, जो महामाया षोडशी से भुवनेश्वरी होती हुई संसार का पालन करती हैं, वही प्रलयकाल बनकर संसार का नाश करती है । छिन्नमस्ता का स्वरूप निम्न है -

छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ।
प्रसारितमुखीं भीमां लेलिहानाग्रजिह्विकाम् ।।
पिबन्तीं रौधिरीं धारां निजकण्ठविनिर्गताम् ।
विकीर्णकेशपाशांच नानापुष्पसमन्विताम् ।।

शा० द० अष्टम परिच्छेद, पृ० 215

पैंतरा बदलकर वह शक्ति सदा खड़ी रहती है । शिर कटा हुआ तथा कटे हुए शिर के कबन्ध से निर्गत होते हुए रक्त को खप्पर भर-भर कर वह पी रही है दिगम्बरा हृदय में कमल-पुष्प की माला धारण किये हुए है, शिर में मणि रूप से नाग बाँधे हुए हैं ।

महाकाल संहिता में छिन्नमस्ता का ध्यान है ।[1] यह महाविद्या अपने स्वरूप से स्पष्टत: वाममार्गी साधकों की प्रतीत होती है ।

दक्षिणामूर्ति कालभैरव की महाशक्ति त्रिपुरभैरवी

दक्षिणामूर्ति काल भैरव की महाशक्ति त्रिपुरभैरवी महाविद्या है । यह अपरा डाकिनी है । इसका सम्बन्ध खण्ड प्रलय से हैं । भुवनेश्वरी जिन पदार्थों की संरचना करती हैं । त्रिपुरभैरवी उनका संहार करती हैं । त्रिपुर के पदार्थों का क्षणिक विनाश इसी पर निर्भर है ।

महिषासुर के विनाशार्थ इस महाविद्या ने स्वरूप धारण किया था । जब महिषासुर ने देवों को परास्त कर उनके समस्त अधिकार छीन लिये तो त्रिदेवों - ब्रह्मा, विष्णु व महेश के प्रयास एवं समस्त देवों के अंश रूप में जिस महाशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, वे जो महालक्ष्मी रूप से ज्ञेय है,वास्तव में त्रिपुरभैरवी महाविद्या ही है । तन्त्र सार दुर्गासप्तशती और शाक्तप्रमोदतन्त्र में इस महाविद्या का स्वरूप मिलता है -

ओं उद्यद्भानु सहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकाम् ।
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियम् ।।
देवीं बद्धहिमांशुरत्नकुटां वन्दे सुमन्दस्मिताम् ।।

तन्त्रसार - शा० द०,अ० प०, पृ० 213

1- स्वनाभौ नीरजं - - - - - - - - मध्ये तु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्।

उदीयमान सहस्रों अरूण वर्ण के सूर्यविद् शरीर की कान्तिवाली, कौषेयवस्त्र धारण किये हुए, नृमुण्डमालिनी, स्तनों के भार से झुकी हुई, चारों हाथों में जयमाला, पुस्तक, वर और अभयमुद्रा को धारण किये हुए हैं, त्रिनेत्र कमलवत मुख की शोभा वाली और मुकुट में चन्द्रमा आबद्ध है। छिन्नमस्ता परा डाकिनी थी, यह अपरा डाकिनी है।

मूर्ति-भेद

ज्ञानार्णव, शारदातिलक, मेरूतन्त्र इत्यादि ग्रन्थों में इनके अनेक प्रकार के मूर्ति-भेद हैं। पुरश्चर्याणावतन्त्र के नवम तरंग में त्रिपुर भैरवी, भुवनेश्वरी सम्पत्प्रदाभैरवी, कौलेश भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी, रूद्र भैरवी इत्यादि भेद का वर्णन है। तन्त्र सार में सकलसिद्धिदाभैरवी, भय - विध्वंशिनी भैरवी, त्रिपुरबाला भैरवी, नवकूट बाला भैरवी और अन्नपूर्णा भैरवी का उल्लेख है।

धूमावती महाविद्या
==============

इस महाविद्या का कोई पुरूष न होने के कारण यह विधवा कही जाती हैं एवं दरिद्रता की देवी हैं। संसार में दु:ख का मूलकारण रूद्र, यम वरूण और निर्ऋति ये चार देवता हैं जिसमें निर्ऋति ही धूमावती है। प्राणियों में मूर्च्छा मृत्यु, रोग, शोक, कलह, दरिद्रतादि सभी निर्ऋति धूमावती उत्पन्न करती हैं। मनुष्यों का भिखारीपन, पृथिवी का क्षत-विक्षत होना अक्षरपन, बने बनाये भवनों का ढह जाना, मनुष्यों को पहनने के लिये जीर्ण शीर्ण वस्त्र

भी न प्राप्त होने की स्थिति, भूख-पयास और रूदन की स्थिति वेधव्य, पुत्र-शोकादि महादु:ख, महाक्लेश - दु:परिस्थितियाँ धूमावती के साक्षात रूप हैं ।

'फेत्कारिणी तन्त्र' में धूमावती देवी के मन्त्र और पूजा प्रणाली है लिखित है ।[1] महाथर्वण संहिता में सर्वसिद्धि देने वाली कही गयी है ।[2] शतपथ ब्राह्मण [3] 'धरिपाम्मा.वै निर्ऋति' कहकर इसकी निन्दा करता है । इसके शान्त्यर्थ 'नैर्ऋति इष्ट' का विधान किया गया है । यद्यपि 'नैर्ऋति शक्तियाँ' सर्वत्र व्याप्त हैं तथापि ज्येष्ठा नक्षत्र इनका प्रधान केन्द्र है । ज्येष्ठा नक्षत्र से ही यह आसुरी, कलहप्रिया, शक्तिधूमावती निकली हैं । यही कारण है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति मृत्युपर्यन्त दु:ख को भोगता है । यही अलक्ष्मी नाम से भी प्रसिद्ध हैं । इस महाविद्या का काल वर्षा के चार माह - आषाढ़ शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ होकर कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त रहता है । इस मध्य समस्त धार्मिक आचार निषिद्ध किया गया है । इसका स्वरूप मेरूतन्त्र में इस प्रकार है -

विवर्णा-चंचला रूष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा ।
विवर्णकुण्डला रूक्षा विधवा विरला द्विजा ।।
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षी धूतहस्ता वरान्विता ।।
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहप्रिया ।।

शा० द०, अष्टम परिच्छेद, पृ० 217

1- 'धूमावतीमनु: प्रोक्तो वैरिनिग्रहकारक:' ।

2- 'अष्टाक्षरी महाविद्या भजतां सर्वसिद्धिदा' ।

3- शतपथ ब्राह्मण, 7/2/1।

यह महाविद्या विवर्णा (रंगहीन) चंचला कोपान्विता, मलिनाम्बरा केश राशियों को बिखराये हुये विधवा विरल दांतो वाली, रथ पर ध्वज के स्थान पर कौवा विराजमान, लम्बे स्तनों वाली, शूर्पहस्ता, रूखे नयनों तथा कांपते हाथों वाली तथापि वरमुद्रा धारण किये है, नासिकारन्ध्र एवं कुटिल देखने वाली भी है। भूख-प्यास से पीड़ित सदा भय और कलह प्रिया है। 'काकध्वजरथारूढ़ा' और 'शूर्पहस्ता' दोनों ही विशेषण विलक्षण प्रयुक्त है।

एक वक्त्र महारूद्र की महाशक्ति बगलामुखी
================================

तन्त्रशास्त्र की 'बगलामुखी' और वैदिक साहित्य की 'बल्गामुखी' दोनों एक ही है। व्याकरण के लोपागमवर्णविकारपद्धति - के अनुसार जिस प्रकार 'हिंस' शब्द वर्ण व्यत्यय से 'सिंह' बन जाता है उसी प्रकार 'निगम' का 'बल्गा' शब्द आगम शास्त्र 'बगला' रूप परिणत हो जाता है। शतपथ ब्राह्मण[1] में 'बल्गामुखी' का उल्लेख इस तरह किया गया है -

"यदा वै कृत्यामुत्खनन्ति, अथ सालसा मोघाभवति।

तथो एवैष एवद्यद्भास्मा अत कश्चिद् दिषन् भ्रातृव्य:।

कृत्यां बल्गां, निखनति ताने वैततदुत्किरोति।।

बगलामुखी शक्ति कृत्याशक्ति-मारण, मोहनं उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण में प्रयुक्त होने वाली हैं। इसकी आराधना से आराधक स्वशत्रु को यथेष्ट कष्ट पहुँचा सकता है। इस महाविद्या का स्वरूप चिन्तन इस प्रकार किया जाता है।

1- शतपथ ब्राह्मण (3/5/413)

' सुधासमुद्रस्थ मणिमण्डपमध्यमणिवेदिकापर स्थित सिंहासन पर यह आरूढ़ है, पीतवर्णा एवं पीत वस्त्रालंकृता है, पीत ही आभूषण तथा माला भी है । दायें हाथ से शत्रु के जिह्वाग्र को बलात पकड़े पीड़ित करती हुयी तथा बायें हाथ से गदा द्वार शत्रु पर प्रहार कर रही हैं'।[1]

मातङ्ग शिव की महाशक्ति मातङ्गी महाविद्या

मातंग शिव की महाशक्ति मातङ्गी महाविद्या है । तन्त्रसार में मातङ्गी का जो स्वरूप प्रार्थना के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है, उसके अनुसार यह शक्ति साधक के समस्त अभीष्टों को सिद्ध करती है ।

नील कमल की भाँति श्यामल रंग वाली मातङ्गी शुभ्र अंशुमाला धारण करती है, त्रिनेत्रा है, रत्नसिंहासन पर विराजित है, असुरों का नाश करने के लिये दावाग्नि रूप है वह हाथों में पाश, अंकुश, खड्ग, खेटक और कमल धारण करती हैं ।[2]

1- मध्ये सुधाब्धि मणिमण्डपरत्न वेदी -
सिंहसनोपरिगतां परिपीतवर्णाम ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषितांगीम्
देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ।। - शाक्त प्रमोद-यामल तन्त्र और
शाक्त द0,अ0 परि0, पृ0 218

2- श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां वेदैः करैर्विभ्रतीं,
पाशं खेटमथाङ्कुशं दृढमसि नाशायभक्तद्विषाम्
रत्नालंकरण प्रभोज्ज्वलतनुं भास्वत् किरीटां शुभ्रां,
मातङ्गी मनसास्मरामि सदमां स्वार्थसिद्धिप्रदाम् ।। - मन्त्र महार्णव ।2 तरङ्ग
ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृ0

दुर्गा सप्तशती के अध्याय सप्तम में मातङ्ग्गी का भिन्न वर्णन प्राप्त होता है, क्योंकि 'शुम्भ-निशुम्भ' दैत्य वधार्थ प्रादुर्भूत होने वाली 'महासरस्वती' की सहायिका रूप में वर्णित है तथा इसके द्वारा 'चण्ड - मुण्ड' दानवों का विनाश होता है ।

'रत्नपीठ पर स्थित, शुक - पाठ को श्रवण करती हुई, श्यामलाङ्ग्गी एक पैर कमल पर स्थित किए, अर्द्धचन्द्र मस्तकोपरि, वीणा बजाती हुई कल्हार, पुष्प माला धारण किये हुये, चोली तथा लाल साड़ी धारण किए हुए तथा शंखपात्र में मधुर मधुपान करने से नशे के कारण मस्तक प्रदेश पर चित्र सा लक्षित हो रहा है ।'

मातंगी मूर्ति भेद

पुरश्चर्याविधि तन्त्र में निम्नलिखित भेदों का उल्लेख है -

§1§ राजश्यामला

§2§ उच्छिष्ट चण्डालिनी

§3§ राजमाताङ्ग्गी

§4§ सुमुखी

§5§ वैश्य मातङ्ग्गी

§6§ कर्णमातङ्ग्गी

सदाशिव महापुरूष की महाशक्ति कमला महाविद्या

कमला सदाशिव महापुरूष की महाशक्ति है । तथापि कमला लक्ष्मी का अपर नाम होने के कारण विष्णु की शक्ति हैं तथापि तन्त्र में इनका सम्बन्ध सदा - शिव महापुरूष के साथ वर्णित है ।

यह महाविद्या वैकुण्ठ में निवास करने के कारण कमला, और पाताल में निवास करने के कारण लक्ष्मी कहलाती है ।[1] भगवती लक्ष्मी लोक जननी हैं ।[2] वनस्पति से वृहस्पति पर्यन्त लक्ष्मी की कृपाकटाक्ष से जीवन धारण करते हैं ।[3] लक्ष्मी का आविर्भाव स्थल - कलश हो अथवा यज्ञ निवासार्थ स्थान कमलवन होने अथवा विष्णु का वक्षस्थल कार्यक्षेत्र, सम्पूर्ण भुवन होने अथवा दिव्य देवीयपद, अल्प - बुद्धि वाला गुण रहित जन तुम्हारी स्तुति कैसे कर सकता है ।[4] इससे व्यापकत्व का पूर्ण भान हो जाता है ।

धूमावती और लक्ष्मी परस्पर एक दूसरे के विरूद्ध गुण स्वभाव और कर्म की हैं, दोनों में परस्पर स्पर्धा चलती रहती है । धूमावती ज्येष्ठा है, लक्ष्मी कनिष्ठा है । धूमावती अश्वारोहिणी कमला आरोहिणी है । धूमावती आसुरी शक्ति लेकिन कमला दिव्य शक्ति है, धूमावती दरिद्रा लेकिन कमला लक्ष्मी है ।

1- वैकुण्ठवासिनी देवी कमला च प्रकीर्तिता ।
पातालवासिनीदेवी लक्ष्मीरूपा च सुन्दरी ।। - शा० द०,8 वाँ परिच्छेद, पृ० 226

2- हे श्रीदेवि समस्त लोक जननीं त्वां स्तोतुमीहामहे । - श्री-श्रीस्तवनम् - 2

3- लोके वनस्पति वृहस्पति - - - - - - - - - ना देव देव महिषीर्वितथमाश्रयाम:।

4- आविर्भाव: कलश ज्वलधावथवा पयिस्या:
स्थानं यस्या: सरसिजवनं विष्णुवृक्ष: स्थल वा ।
भूमा यस्या भुवनमाखिलं देवि दिव्यं पदं वा,
स्तोक प्रज्ञैरनवधिगुणास्तूयसे सा क्थं त्वाम् ।। - वेदान्तदेशिक श्री स्तोत्र।

ज्येष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म होता है, वह व्यक्ति धूमावती के निवास केन्द्र नक्षत्र में उत्पन्न होने से मृत्युपर्यन्त दरिद्र रहता है । ज्येष्ठा नक्षत्र से ठीक 180 अंश पर 'रोहिणी' नक्षत्र है जो कमला का अधिष्ठान है, इसमें उत्पन्न व्यक्ति सदैव सुखी समृद्ध बना रहता है ।

श्रीविद्या
======

'श्रीविद्या' ही ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुर सुन्दरी, बाला पंचदशी और षोडशी इत्यादि नामों से विख्यात है । मूलतत्त्व में ऐक्य होते हुये भी ये विभिन्न नाम अवस्था - भेद के सूचक हैं । श्रीविद्या की महत्ता वास्तविक है, न केवल भक्तिकल्पित । दशमहाविद्याओं में पहली तीन अर्थात् काली, तारा और षोडशी - ये ही सर्वप्रधान विद्याएं हैं । इन तीनों से ही नौ विद्यायें और एक पूरक विद्या मिलाकर दशमहाविद्याएं होती हैं । मूल एक से ही तीन होती हैं । सर्वमूलभूत एक विद्या ही 'श्रीविद्या' है । इसी को ब्रह्मविद्या तथा ब्रह्ममयी भी कहते हैं ।

श्रीविद्या शब्द से त्रिपुरसुन्दरी का मन्त्र तथा तत्देवता दोनों का ग्रहण किया जाता है ।सामान्यतः 'श्री' शब्द का 'लक्ष्मी' अर्थ ही प्रसिद्ध है परन्तु 'हरितायन संहिता' और 'ब्रह्मपण्ड पुराण' के उत्तर खण्ड से वर्णित कथाओं के आधार पर 'श्री' शब्द का मुख्यार्थ महात्रिपुरसुन्दरी निश्चित होता है । 'श्रीमहालक्ष्मी' ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल तक आराधना कर अनेक वरदान प्राप्त किये, उनमें ही 'श्री' संज्ञा से ख्याति प्राप्त करने का एक वरदान यह भी

प्राप्त हुआ था, तब से श्री शब्द का अर्थ महालक्ष्मी होने लगा। अतः उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'श्री' शब्द का महालक्ष्मी अर्थ में गौण ही है। सर्वकारणभूता आत्मशक्ति त्रिपुरेश्वरी साक्षात ब्रह्मस्वरूपिणी होने के कारण केवल श्री शब्द से ही व्यवहृत होती है'।[1]

श्रीविद्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध वेदों से है। ऋग्वेद संहिता में -

'चत्वारि ई विभ्रति क्षेमयन्तः'[2]

मंत्र पंचदशाक्षरी श्रीविद्या का ही बोधक है तथा ऋग्वेद संहिता के शांखायान आरण्यक में उल्लिखित है -

'त्रिपुरः त्रिपक्षः विश्वचर्षिणी यत्वा'

यजुर्वेद का सम्पूर्णकाल विशेष कर दर्शपौर्णमास का आधारस्तम्भ श्रीविद्या ही है। षोडशकलात्मक श्री बीज का सम्यक् ज्ञान 'गुरू' से ही विज्ञेय होने के कारण तथा 'चारों इकारों' की स्थिति ऋग्वेद में होने से इसकी वैदिकता स्वतः सिद्ध है।

श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या, आत्मशक्ति कामेश्वरी, राजेश्वरी, त्रिपुरा, त्रिपुराम्बा, चिच्छक्ति इत्यादि है। श्रीविद्या के लीलाविग्रह अनन्त हैं। त्रिपुरा - रहस्य माहात्म्यखण्ड ब्रह्माण्ड पुराणोत्तर खण्ड आदि पुराणों तथा इतिहासों में मुख्य विग्रहों का परिगणन इन नामों से है। जैसे - कुमारी त्रिरूपा, गौरी, रमा, भारती, काली चण्डिका, कात्यायनी, दुर्गा, ललिता।

श्रीविद्या के उपासना के सन्दर्भ में ग्रन्थों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है।

1- कल्याण - शक्ति - अंक, अंक - 1 - 2, पृ0 113

2- ऋक सं - 5/47/4

§1§ वामकेश्वर तन्त्र का पूर्वभाग

§2§ ज्ञानार्णव छठा पटल

§3§ सौभाग्य रत्नाकर

§4§ शक्ति संगम तन्त्र सुन्दरी खण्ड

§5§ त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड एवं माहात्म्य खण्ड

§6§ त्रिपुर सुन्दरी तन्त्र

§7§ त्रिपुरासहस्रनाम

§8§ ललिता सहस्रनाम

श्रीविद्या के विविध सम्प्रदाय

त्रिपुरा सिद्धान्त में प्रतिपादित श्रीविद्या के बारह उपासक प्रसिद्ध हैं ।[1] §1§ मनु §2§ चन्द्र §3§ कुबेर §4§ लोपमुद्रा §5§ मन्मथ §6§ अगस्त्य §7§ अग्नि §8§ सूर्य §9§ इन्द्र §10§ स्कन्द §11§ शिव §12§ दुर्वासा ।

महाशक्ति के अनन्त रूप एवं संज्ञायें हैं । महात्रिपुरा के उपासकों का कथन है कि ब्रह्माजी एवं अन्यान्य देवगण त्रिपुरा के ही उपासक हैं । त्रिपुरा के उपासकों में सर्वत्र काम या मन्मथ का ही प्राधान्य है । कामविद्या प्रवर्तक होने के कारण महाविद्येश्वर संज्ञा से विभूषित हैं । मानसोल्लास और ज्ञानार्जन में भी उपासकों की एक सूची प्राप्त होती है जिस में प्रत्येक में बारह - बारह उपासक

1- मनुश्चन्द्रः कुवेरश्च लोपमुद्रा व मन्मथः ।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः ।। - मन्त्रमहोदधि - 12 वाँ तरंग।

कहे गये हैं । किन्तु अन्तर इतना अवश्य है कि उपासकों के कतिपय नामों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है ।

उपासकों को भगवती की कृपा से पृथक - पृथक फलों की प्राप्ति हुई है अतः ये मुख्य प्रवर्तक माने जाते हैं । अन्यान्य बीज एवं मन्त्रों की उपासना पद्धति प्रचलित है ।

मन्त्र-महोदधि में क्रम से प्रत्येक विद्येश्वरी के मन्त्र हैं जैसे कामराजविद्या (आदिविद्या), लोपमुद्राविद्या (हादि विद्या) इत्यादि

त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्ड में वर्णित आख्यानों से ज्ञात होता है कि अत्यन्त कठोर तपस्या से कामदेव ने श्रीविद्या को सन्तुष्ट कर बहुत से दुर्लभ वरों को प्राप्त किया । सौन्दर्य लहरी में भी इसका रोचक प्रसंग प्राप्त होता है ।[1]

महाकालसंहिता में श्रीविद्या का ध्यान इस प्रकार है ।[2]

1- हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्य जननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ।। - सौ० ल० - 4

2- ओं ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणोज्ज्वलाम् ।
जवाकुसुमसंकाशां दाडिमी कुसुमोपमाम् ।।
पद्मरागप्रतीकाशां कुंकुमारुणसन्निभाम् ।
स्फरन्मुकुटमाणिक्यकिंकिनीजालमण्डिताम् ।। - महाकाल संहिता

श्रीविद्या के भेद

§1§ बाला त्रिपुरसुन्दरी §2§ पंचदशी और §3§ षोडशी के भेद से श्रीविद्या के तीन भेद किये गये हैं ।[1] इसके अतिरिक्त मध्य -मध्य में कूटों से संयोजित करने से बीजावली षोडशी, गुह्य षोडशी , महा षोडशी इत्यादि भेद मन्त्रमहोदधि में उल्लिखित किये गये हैं ।[2]

इन महाविद्याओं में तारतम्य से भेद हो जाता है । कोई महाविद्या है । कोई सिद्धविद्या है । कोई विद्या ही है । दिन पुरूष है, रात्रि स्त्री है और शक्ति है । अतएव ये विद्यायें महारात्रि कालरात्रि, मोहरात्रि, दारूणरात्रि आदि रात्रि नामों से प्रसिद्ध हैं ।

ये सभी दशमहाविद्याये 'सिद्धविद्या', यश देने वाली और सभी साधकों को धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष फल देती हैं । कलियुग में इनकी उपासना पूर्ण फल देने वाली है ।[3] त्रिभुवन में इन दशमहाविद्याओं के समान कोई विद्या नहीं, यह निश्चित सत्य है । इनके नामों का एक बार उच्चारण करने से लोग सभी प्रकार के पाप से मुक्त हो जाते हैं ।[4]

1- ज्ञानार्णवतन्त्र-
त्रिपुरात्रिविधा देवि बालां तु प्रथमं शृणु ।। श्लोक - 3, द्वितीय, 11 वां एवं 13 वां पटल

2- मन्त्रमहोदधि - 12वां तरंग

3- एता दशमहाविद्या: सिद्धविद्या: प्रकीर्तिता:
धर्मार्थकामदा नित्यं चतुर्व्वर्गफलप्रदा: ।। - कुब्जिका तन्त्र-प्रथम पटल ।

4- आसाञ्चैव समाना हि नास्ति त्रिभुवने ध्रुवम् ।
एकोच्चारणमात्रेण सर्व्वपापात् प्रमुच्यते ।।
स्मरणेनैव देवेशि मुच्यते भवबन्धनात् ।।

बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध रूप

ब्राह्मणों और बौद्धों के बीच दर्शनशास्त्र और आचार शास्त्र में परस्पर बहुत आदान प्रदान हुआ है । क्रमशः बौद्ध साहित्य का संस्करण होता गया और अश्वघोष, नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, बुद्धघोष, धर्मकीर्ति आदि शंकराचार्य से पूर्वभावी बौद्ध - विचारकों के ग्रन्थ प्रसिद्ध हुये और जैसे - जैसे बौद्ध शिलालेख, स्तूप, विहार, आदि के अवशेष प्राप्त होते गये वैसे - वैसे ही इस सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बढ़ा । बौद्ध-धर्म को हिन्दू धर्म से अलग करना बहुत कठिन कार्य है । भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म के सम्प्रदाय से प्रकट होकर पुनः उसी धर्म में विलीन हो गया । बौद्ध - धर्म का तन्त्र-सम्प्रदाय इस बात का प्रमाण है ।

बौद्ध तन्त्र

तथागत बुद्ध ने कहा कि 'तृष्णाक्षय' के द्वारा दुःख की निवृत्ति हो सकती है । तृष्णाक्षय के द्वारा पवित्र और निर्दोष जीवन व्यतीत करना आवश्यक है । बुद्ध के उपदेश दुःखों - क्लेशों से निवृत्त कराकर'निर्वाण' की ओर ले जाने वाले थे । निर्वाण यह मोक्ष की साधना वैदिक, तान्त्रिक, शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध सभी मतों, धर्मों एवं दर्शनों का लक्ष्य है । तथागत के परि-निर्वाण के अनन्तर बौद्ध धर्म की 'महायान-शाखा' में एक जबर्दस्त उदार परिवर्तन यह हुआ कि उसका लक्ष्य व्यक्तिगत निर्वाण के स्थान में सभी प्राणियों का उद्धार करना हो गया । कुछ ही दिनों में परिणाम यह हुआ कि दूसरे धर्मावलम्बी महायान

में बिना किसी रुकावट के प्रवेश पाने लगे । इस प्रकार महायान बौद्ध-धर्म की एक शाखा से ऊपर उठकर एशिया का व्यापक धर्म बन गया ।

गौतम बुद्ध के आविर्भाव एवं प्रभावी होने के बहुत पहले ही भारतवर्ष में तन्त्र का व्यापकर प्रसार हो चुका था । यही कारण है कि गौतमबुद्ध अहिंसा का उपदेश देते हुए भी पूर्णतया हिंसा को समाप्त कर पाने में सफल नहीं हुए, क्योंकि ऐसा करने का एकमात्र परिणाम, हिन्दू धर्म परायण जनता का कोपभाजन बनना पड़ा, जिससे बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार सर्वथा असम्भव हो जाता । इस बात का पूर्ण प्रमाण -'शान्त रक्षित' और उनके शिष्य 'कमलाशील' ने तत्वसंग्रह और उनकी व्याख्या में प्रस्तुत किया है -

यतोऽभ्युदयनर्षत्तर्यतोनि: श्रेयस्य च ।
स धर्म उच्यते तादृक् सर्वैरेव विचक्षणै: ।।
तदुक्तमन्त्र योगादिनियमाद्धविल्कृताद् ।
प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्ट धर्मोपि जायते ।।[1]

'हूं' बीज तन्त्रों में 'तारा और छिन्नमस्ता' का है । इसका निरूपण गुह्य-समाजतन्त्र में किया गया है । पुराणों में देवी-देवताओं का बाहुल्य होने के कारण बौद्ध धर्म को बलात इन सबको स्थान देना पड़ा , विशेषकर हिन्दू देव गणेश और सरस्वती देवी को अधिक स्थान मिला लेकिन इसके स्वरूप में परिवर्तन कर बौद्धत्व का जामा पहनाकर ही समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया । इस प्रकार हजारों की संख्या में तन्त्र-साहित्य का प्रणयन कर हिमालय के पार तिब्बत, मंगोलिया

1- साधनमाला { वर्जिततत्वसंग्रह } पृ.154

चीन तथा जापान को भेजे गये, जो अपने मूल रूप में न रहकर वहाँ की भाषा में रूपान्तरित हो गये । इनका प्रभाव यह पड़ा कि तत्-तत् देशों की जनता इनमें विश्वास करने लगी जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अद्यावधि तिब्बत में भारतीय तन्त्रों का विशाल भण्डार सुरक्षित है ।

महायान सम्प्रदाय में योगाचार और माध्यमिक दो उपसम्प्रदाय बने, उनमें योगाचार का साक्षात सम्बन्ध तन्त्र से है । यद्यपि हीनयान सम्प्रदाय में भी श्रावकयान और प्रत्येक यान से सम्बन्धित दो तान्त्रिक सम्प्रदाय हुए लेकिन महायानियों को ही बहुलता मिली । महायान - माध्यमिक शाखा के दर्शन - साहित्य के साथ व्यवहार धर्म के साहित्य रचना की आवश्यकता थी । इस व्यवहार धर्म और आचार धर्म का बौद्धों का साहित्य ब्राह्मणों के तन्त्रशास्त्र के अनुसार रचा गया । इसका कारण था कि ब्राह्मणों के वैदिक शाखा के अनुयायी, विशेषकर शैव और शाक्त, वर्णाश्रमधर्म के समर्थक नहीं थे, इसलिये हिन्दुओं की तन्त्र-शाखा का साहित्य बौद्धों के लिये अत्यन्त सुगम और सहज बन गया ।

महायान शाखा के तान्त्रिकों की एक मुख्य शाखा के नौ आन्तर सम्प्रदाय हैं । बौद्धों की वस्तु शून्यता वेदान्तियों के ब्रह्मभाव के समान है । बौद्ध इसअन्तिम तत्व को केवल शून्य नहीं अपितु विवर्तशून्य मानते हैं । इस तन्त्र साधना में जो विज्ञान के रूप में प्रकट होते हैं उनको 'देवता' संज्ञा दी जाती है और जिस यान में इन देवताओं का उदय और अस्त समझा जाता है उसे 'वज्रयान' कहते हैं । बौद्ध लोग इस तन्त्रयान के नरदेवता को 'वज्रधर' और नारीदेवता को 'वज्रवाराही' कहते हैं ।

शून्यता और करूणा का योग वज्रधर - वज्रवाराही के योग से दिखाकर बौद्ध बुद्ध भाव को प्राप्त करने की तन्त्र-साधना का निर्माण करते हैं। इस साधना में हिन्दुओं के तन्त्रों की तरह मण्डल-रचना, बीजन्यास, मन्त्र-जप इत्यादि सभी हिन्दू-धर्म, जैसे ही है। मन्त्र भी संस्कृत में है। केवल बुद्ध के नाम का अन्तर है।

वज्रयान की मन्त्रसाधना द्वारा तीन प्रकार की बुद्धकाया - धर्मकाया, सम्भोगकाया और निर्माणकाया का वर्णन है। तन्त्रशास्त्र में ऐसे उपास्यदेव की काया की रचना को आभास रूप माना गया है। बौद्ध तन्त्र प्रक्रिया के सार - संग्रह से मन्त्र-शक्ति की स्वीकृति वज्रयान के तीनों तन्त्रों में हुआ है। शाक्त - साधना का निरूपण हिन्दू - तन्त्रों के समान है, केवल देवता के नाम में भेद है। परन्तु वस्तु के नाम भेद से वस्तु का स्वरूप नहीं बदल जाता, यह बात शत प्रतिशत सही है।

हिन्दू-देवताओं की तरह बौद्ध-तन्त्र में भी अनेक प्रकार के देवी देवताओं को स्थान मिला। विशेषकर हिन्दू-देव गणेश तथा सरस्वती को अधिक महत्ता मिली। सरस्वती के अनेक भेद कल्पित किये गये यथा महा - सरस्वती, वज्रवीणा सरस्वती, वज्रसारदा-सरस्वती, नील-सरस्वती आदि।

साधनमाला तन्त्र ग्रन्थ में गणपति साधन, वज्रवाराही साधन, ज्वालामुखी साधन, सरस्वती मन्त्र को अत्यन्त बलशाली कहा गया है -

'देव्या एक जटायास्तु मन्त्रराज्ञोबल:।'

देवी की स्तुति करते हुए कहा गया है -

' देवी त्वमेव गिरिजा कुशला त्वमेव,
पद्मावती त्वमसि तारिणि देव माता ।
व्याप्तं त्वया त्रिभुवने जगतैकरूपा,
तुभ्यं नमो स्तुमनसावपुषागिरा न: ।।

बौद्धों की वज्रवराही-देवी सामान्यत: ब्राह्मणों की वाराही अथवा दण्डिनी से मिलती हैं । उपासना क्रम भी लगभग एक सा है । बौद्धों की विशेष देवी का नाम 'तारा' है । तारा की उपासना हिन्दुओं में भी प्रचलित है । ब्राह्मण और बौद्ध ओंकार अथवा प्रणव को 'तार' कहते हैं । उस देवता की पत्नी का नाम तारा रखा गया है । बौद्ध की तारादेवी के सम्बन्ध में बृहद् संस्कृत-साहित्य है । तारा से सम्बन्धित उग्रतारापचांग, ताराकल्प, तारा-कवच, तारातत्व, तारा - पद्धति, ताराप्रदीप, तारारहस्य, तारार्णव, ताराविकल्प, तारासहस्रनाम, तारा - सूत्र, तारास्तोत्र, तारापूजान्यासविधि, तारापूजाप्रयोग इत्यादि लगभग 33 ग्रन्थ हैं । इन उपर्युक्त ग्रन्थों में तारा के दिव्य स्वरूप की भावना के अतिरिक्त उपासना के पाँचों अंगों अर्थात् पटल, पद्धति, कवच, नामसहस्र और स्तोत्र का विस्तृत वर्णन है । उदाहरणार्थ जिस प्रकार ब्राह्मणों का श्रीविद्या और काली-विद्या का बृहद् साहित्य है उसी प्रकार बौद्धों की तारा विद्या का भी है । महायान की तारा देवी के समान ही हीनयान की 'मणिमेखला' देवी हैं । श्रीलंका, वर्मा, तिब्बत आदि देशों में वह समुद्र की देवी के रूप में पूजी जाती हैं और समुद्र की तूफान के समय रक्षा करने वाली देवी मानी जाती हैं ।

जैन साहित्य में प्रसिद्ध रूप

जैन - धर्म में जो आगम-शास्त्र है वे सनातनी-आगमों की तरह सृष्टि, प्रलय, देवार्चन, देवसाधना, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन, ध्यान, योग आदि प्रधान न हो कर केवल साधना पथ के निदेशक हैं । जैन शास्त्रों में 'योग' शब्द भी तन्त्र नाम से अभिहित हुआ है । जिस प्रकार सनातन-धर्म में आगम मार्ग की प्रधानता है , उसी प्रकार जैन धर्म में भी सभी कर्म - आगमोपदिष्ट हुआ करते हैं ।

.जैन शासन के सिद्धान्त में इस शक्ति स्वीकृति से उसका सदुपयोग और दुरूपयोग होना सम्भव है । हिन्दुओं के दक्षिण और वाममार्ग तथा बौद्धों के वज्रयान की मलिन और शुद्ध पद्धतियों की तरह जैनों में भी मलिन विद्या और शुद्ध विद्या है ।

जैन धर्म में सृष्टि, स्थिति, संहार, रूप-कल्पना, देवपूजा, सर्वसाधन, ध्यान, योगादि की साधना और निर्देश के लिये अनेक तन्त्र ग्रन्थ हैं । अर्धमागधी भाषा में भी विभिन्न तान्त्रिक साधनाओं में पटु जैनाचार्यों द्वारा अपने तन्त्र में कुछ नवीन ऐन्द्रजालिक पद्धतियों को समाविष्ट किया गया है । जैसे नखदर्पण की पद्धति का अनुसरण करते हुए उन्होंने 'खड्ग-दर्पण' 'जलदर्पण', 'कज्जलदर्पण 'इत्यादि निर्मित किया । पताका मन्त्र, अंक मंत्र, ऐसा यन्त्र और अक्षरयन्त्रादि अनेक यन्त्र तथा बीज मन्त्र, त्रोटक आदि का विशद निरूपण किया है ।

सनातन धर्म में तान्त्रिक ग्रन्थ आगम और तन्त्र के नाम से जाने जाते हैं, किन्तु जैन धर्म में आगम और तन्त्र को ही 'विद्या-कल्प' कहा गया है - भक्ता - वतार कल्प, कल्याण मंदिर कल्प पद्मावती कल्प, वर्धमान विद्या कल्प, ज्वाला - मालिनी कल्प, श्रीदेवी कल्प, श्री विद्या कल्प इत्यादि ।

कुछ तन्त्र ग्रन्थों में कल्प के स्थान पर 'विद्या' शब्द का प्रयोग किया गया है । जैसे - गणधर विद्या, केयूरवाहिनी विद्या, पद्मावती विद्या, महामोहिनी विद्या पार्श्व विद्या, गान्धार विद्या इत्यादि ।

इनमें से कुछ मन्त्रविद्या प्रधान और कुछ साधना पद्धति प्रदर्शिका है ।

तन्त्र शास्त्र के सिद्धान्तों तथा साधना का इतना अधिक प्रचार हुआ कि प्रायः सभी धर्म और सम्प्रदायों पर इसका प्रभाव पड़ा । परन्तु जैन-धर्म में आगम सम्प्रदाय जैसी कोई वस्तु नहीं है । हिन्दू और बौद्ध धर्म में पुरूष और स्त्री शक्ति का जो 'महाशक्ति' रूप वर्णन है वह जैन-धर्म में नहीं है । जैनशास्त्र पृथ्वी के ऊपर - नीचे देवी देवताओं के निवास तथा श्रेणियों का वर्णन करते हैं । उनकी पूजा और वरदान से सभी प्रकार के सांसारिक उद्देश्य-इच्छाओं की प्राप्ति होती है । जैन-धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में शक्ति - उपासना का यही रूप है ।

जैनों के श्रमणों में शक्ति पूजा और शाक्त तन्त्रों का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । यद्यपि जैनियों की शक्ति-साधना में वाह्याचार, कुलाचार समयाचार, सदृश आचार नहीं है - प्रणवबीज, मायाबीज, कामबीज आदि उपासनाओं के साथ वर्णमय देवता, तीर्थंकरों और शासनदेवताओं की उपासना, यक्ष और यक्षिणी, योगिनी, शासनदेवी एवं सरस्वती की उपासना - षोडशविद्यव्यूह रूप से रोहिणी, प्रज्ञप्ति, श्रृंखला आदि तथा अन्य देवियों की उपासना के अनेक रूप जैन धर्म में प्रचलित हैं और इन शक्तियों का आवाहन प्रायः मंदिरों की प्रतिष्ठा और मूर्तियों की स्थापना अथवा किसी अनुष्ठान के प्रारम्भ और समाप्ति में किया जाता है ।

जिस प्रकार सनातन-धर्मावलम्बियों में श्रीविद्या की उपासना प्रचलित है, बौद्धों में तारा देवी की, उसी प्रकार जैनों में पद्मावती देवी की उपासना विशिष्ट महत्व रखती हैं । पद्मावती देवी की उपासना के अनेक प्रयोग जैन-तन्त्र-ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं जैसे रक्तपद्मावती, शैवागमोक्त पद्मावती, हंस पद्मावती, सरस्वती पद्मावती, सवरी पद्मावती, कामेश्वरी पद्मावती, भैरवी पद्मावती, त्रिपुरा पद्मावती, नित्या पद्मावती, महामोहिनी पद्मावती, पुत्रकर पद्मावती, कज्जलावतार पद्मावती, घटावतार पद्मावती, दीपावतार पद्मावती आदि अभीष्ट सिद्धि के तदनुसारी नामों में पद्मावती के मन्त्र मिलते हैं ।[1]

अन्त: शाक्ता: बहि: शैवा के स्थान पर 'अन्त: शाक्ता बहि: जैना:' की उक्ति जैन तान्त्रिकों के प्रति सर्वथा सार्थक है ।

शक्ति-उपासना का विधान तन्त्रों में मिलता है और हिन्दू तथा बौद्ध-धर्म तो मानों तन्त्र-साहित्य का भण्डार हो परन्तु जैन-धर्म का एक भी तन्त्र नहीं मिलता । शक्ति का दर्शन यन्त्रों और श्रवण-मन्त्रों में है, विभिन्न देशों में विभिन्न संकेतों और रूपों में यह व्यक्त हुई है । जैन धर्म में भी ऐसे यन्त्रों और मन्त्रों की कमी नहीं है, लेकिन शक्ति-उपासना को किसी प्रकार प्रोत्साहन अथवा समर्थन नहीं मिलता और जैन धर्म में 'शक्ति-पूजा' का प्रसार कम हो रहा है ।

1- पद्मावती क० - तन्त्र सि०. और सा०, पृ० 152

सभी तन्त्रों में शक्ति को ही प्रमुखता प्राप्त हुई । शक्ति और शक्ति - मान का अभेद तादात्म्य किया गया जिससे साधना पथ समुज्ज्वल हो गया । तान्त्रिक-साहित्य ने भारत भूमि को अनेक देशों में सर्वोच्च स्थान प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया जिससे लोग इस ओर अग्रसरित हुए । यही नहीं तन्त्र में अद्यावधि लोगों की रुचि दृष्टिगोचर होती है, जिससे सहज ही तान्त्रिक-साहित्य की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है

प्रकीर्ण शक्तियाँ
===========

ऋग्वेद में भी गंगा,यमुना,सरस्वती,सिन्धु इत्यादि नदियों का वर्णन है । पुराणों में नदी वर्णन एवं उनके नाम आज भी प्राय: वही हैं । केवल कुछ नाम स्थानीय लोगों के उच्चारण में क्लिष्टता तथा भाषात्मक परिवर्तनों के कारण बदल गये हैं । भारत के सभी तीर्थस्थान इन्हीं के तटों पर हैं । ये तीर्थ और नदियाँ भारतीय संस्कृति के केन्द्र हैं । इनका नामोच्चारण एवं स्मरण हमारी राष्ट्रीय-एकता के प्रतीक हैं । ऐसा करके हम सम्पूर्ण भारत का स्मरण करते हैं । इस स्मरण से सम्पूर्ण-समस्त सम्बन्ध कथा-प्रसंग या इतिहास की एक झलक हमारे मस्तिष्क में कौंध जाती है । इनका वास्तविक परिचय आवश्यक है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में नदियों का वर्णन भौगोलिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु कुछ नदियों का स्थान दिशा आदि का संक्षिप्त विवेचन हुआ है । इसमें नदियों का वर्णन धार्मिक कथाप्रसंगों की दृष्टि से अवश्यमेव महत्वपूर्ण है । ये कथाएं ब्रह्मवैवर्त का वैशिष्टय प्रतिपादित करती हैं । अन्य पुराणों में ये कथाप्रसंग नहीं मिलते । मुख्यत: गोदावरी तथा गंडकी का वर्णन अद्वितीय है । कुछ नदियों

के नाम स्मरण मात्र के लिये हैं तथापि इस पुराण में जितनी नदियों का नाम अथवा वर्णन है वह अन्य पुराणों में दुर्लभ है ।

गंगा - ऋग्वेद में गंगा का यमुना और सरस्वती के साथ उल्लेख है ।[1] महाभाष्य[2] और योगिनी तन्त्र[3] में भी गंगा का स्पष्ट उल्लेख है । अथर्ववेद में गंगा का कहीं भी नाम्ना उल्लेख नहीं है तथापि मंत्रों की भावभूमि गंगा का प्रत्यभिज्ञान कराती है, क्योंकि इन मन्त्रों में प्रयुक्त अनेक विशेषण अवान्तर काल में मात्र गंगा के लिये ही प्रयुक्त हुये हैं जैसे - पुण्य नदी, दिव्य सरित, सप्तसिन्धु, सिन्धुराज्ञी आदि 'सिन्धुपत्नी' विशेषण का उल्लेख परवर्ती साहित्य में विशेष रूप से देखने को मिलता है । देवी भागवत में स्पष्टत: कहा गया है -

समुद्र: शन्तनु: प्रोक्तो गंगा भार्या मता बुधै: ।
देवकस्तु समाख्यातो गन्धर्वपति रामभे ।।[4]

महाभारत में भी 'समुद्रमहिषी गंगा' शब्दावली का प्रयोग मिलता है ।[5] कुमारसम्भव महाकाव्य में महाकवि कालिदास भी लिखते हैं कि समुद्र से प्रेम करके गंगा वापस नहीं लौटती ।[6]

1- ऋग्वेद, 10/75/15

2- महाभाष्य, 1/1/9

3- योगिनी तन्त्र, 1/6, 2/1, 2/7, 2/8, 2/5

4- देवी भागवत, 4/22/35

5- महाभारत वनपर्व, अ0, 222/22-26

6- कुमारसम्भव, महा०, 8/16

यद्यपि छान्दोग्य उपनिषद् में गंगा का नाम्ना उल्लेख नहीं है फिर भी अस अंश में आये 'नद्यः' की व्याख्या भाष्यकार शंकर 'गंगायाः' शब्द से करते हैं ।[1] मुण्डकोपनिषद् में भी 'सिन्धवः' तथा 'नद्यः' से गंगादि नदियों का ही अभिप्राय है ।[2]

शतपथ [3]ब्रा०, जैमिनीय ब्रा०[4] तथा तैत्तिरी [5] आरण्यक में गंगा का नाम्ना उल्लेख है ।

पौराणिक गंगा वाङ्मय में स्कन्द पु० गंगा सहस्रनाम[6], श्रीमद्देवी - भागवत[7] में विष्णुपदीस्तोत्र, कल्कि पुराण[8] में गंगा स्तवः, मत्स्य पु० , वाल्मीकि रामायण[9] में त्रिपथगा वर्णन, महाभारत [10] में गंगावतरण वर्णन और गंगास्तवः, ।

महाभारत में पद - पद में गंगा वर्णन उपलब्ध होता है परन्तु कहीं - कहीं गंगा के भौतिक रूप एवं माहात्म्य का भावमय वर्णन उपलब्ध होता है । इस

1- छान्दोग्य उपनिषद्, 6/10/1

2- मुण्डकोपनिषद्, 2/1/9, 3/2/8

3- शतपथ ब्राह्मण, 13/5/4

4- जैमिनीय ब्रा० , 3/83

5- तैत्तिरीय आरण्यक, 2/10; 2/20

6- स्कन्द पु०, काशीखण्ड का पूर्वार्द्ध

7- श्रीमद् देवीभागवत, नवम स्कन्ध अ० 12/18 से 42, ब्रह्मवैवर्त पु० के प्रकृतिखण्ड में भी यही स्तोत्र मात्र एक श्लोक के परिवर्तन के साथ दिया गया है ।

8- कल्कि पु० का तृतीयांश

9- रामा० बालकाण्ड, अ० 35-44

10- महाभारत, वनपर्व, अ० 109 (अनु० प० अ० 26 युधिष्ठिर-भीष्म संवाद

महाकाव्य में गंगावतरण वर्णन वहाँ है जहाँ महर्षि लोमश धर्मराज युधिष्ठिर को गंगावतरण बता रहे हैं । इसी प्रकार रामायण में भी गंगोपाख्यान के अतिरिक्त गंगा के अनेक सन्दर्भ विद्यमान हैं ।

गंगा के अनेक स्तोत्र उपलब्ध होते हैं जिसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण स्तोत्र हैं - श्रीहनुमद् विरचित गंगास्तव:, महर्षि वाल्मीकि विरचित गंगाष्टकम्, कालिदास कृत दो गंगाष्टकम्, शंकराचार्य द्वारा रचित गंगाष्टकम्, सत्यज्ञानानंदतीर्थकृत गंगाष्टकम् खानखाना द्वारा रचित गंगाष्टकम् इत्यादि ।

काव्यों में भी गंगा का वर्णन उपलब्ध होता है । कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य[1] में राम द्वारा सीता के प्रति गंगा वर्णन प्रस्तुत किया गया है । भट्टि कवि के भट्टिकाव्य[2] (रावणवध) में गंगा वर्णन है । 'अनर्घराघव'[3] नाटक में गंगा वर्णन है । लंका विजय के अनन्तर अयोध्या प्रत्यागमन के सन्दर्भ में कवि ने गंगा का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है । विक्रान्तकौरव नाटक के कर्ता जैन कवि हस्तिमल्ल (13 वीं शती के उत्तरार्ध) द्वारा सुलोचना के स्वयंवर के सन्दर्भ में कवि ने काशी और गंगा का स्मरणीय वर्णन किया है ।

गंगा का भौतिक स्वरूप

<u>गंगा का दैवी उद्भव</u> - (1) हरिवंश पुराण (भविष्यपर्व अ0 17) में कहा गया है कि परमेश्वर विग्रहभूता नदी जब गगन से पृथ्वी पर आकर सात धाराओं में फैली तो उसे गंगा - ख्याति प्राप्त हुई ।

1- रघुवंश महाकाव्य, सर्ग 13

2- भट्टिकाव्य, 3/18, 22/10, 22, 22/26

3- अनर्घराघव, 7/117-119

§2§ देवी भागवत §स्कन्ध । अ0 34।§ में गंगा गर्भ की परिकल्पना है । इसमें नारायण का नित्यवास होता है । इसमें प्राणत्याग करने वाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है ।

§3§ श्रीमद्भागवत §स्कन्ध 5 अ0 17§ में कहा गया है कि गंगा भगवान त्रिविक्रम के वाम पादांगुष्ठ नख से निकलकर द्युलोक में गिरती हैं । वहाँ से ध्रुवलोक विष्णुपद तथा ध्रुवलोक से चन्द्रमण्डल में आती हैं ।

§4§ नारद पुराण § 10•11•79 एवं 80 § में भी गंगा का दिव्य उद्भव का समर्थन किया गया है ।

§5§ वामन पुराण § अ0 92•22-23 § में भी इसी प्रसंग को दुहराया गया है ।

इसी प्रकार रामायण, महाभारत तथा अनेक प्राचीन स्तोत्रों में भी गंगा के स्वर्गावतरण का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है ।

गंगा की दिव्यता का अगला चरण है उसकी सर्वश्रेष्ठता एवं सर्वाधिक पवित्रता । इन तथ्यों का उल्लेख हम पौराणिक एवं लौकिक वाङ्•मय में बार - बार पाते हैं ।

<u>गंगा की सर्वदेवमयता</u> - भारत में प्राचीन धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में गंगा का जो विराट एवं सार्वभौम रूप अंकित किया गया है वह ईश्वरतत्व के अनन्तर सर्वाधिक महनीय है । गंगा स्वयं तो एक देवता हैं ही परन्तु उनका देवत्व भी विराट एवं असीम है । गंगा की सर्वदेवमयता बृहत्ता एवं महिमाशीलता के प्रमाण संस्कृत वाङ्•मयमें पदे - पदे उपलब्ध होते हैं । कुछ महत्वपूर्ण व्याख्योयांश प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

§1§ गंगा ही गो-रूपा है - गो पूजा के सन्दर्भ में भारतीय कर्मकाण्ड विधि में गाय को गंगा माना गया है ।

§2§ गंगा ही भगवती दुर्गा है - देवीभागवत § 10•13•74 § में देवसमूह द्वारा भगवती के स्तवन-क्रम में उन्हें गंगा कहा गया है ।

चण्ड मुण्ड - - - - - - - - - - - - ।

नमस्ते विजये गंगे । शारदे विकचानने ।।

देवीभागवत §12•5•9,10§ में गंगा आनन्दजननी दुर्गा का नवां रूप माना गया है ।

§3§ गंगा ही राधा है - देवी भागवत § 9•35•45-50 § में राधा एवं दुर्गा के चरित्र वर्णन - प्रसंग में राधा को ही गंगा कहा गया है ।

§4§ गंगा ही समस्त तीर्थ है ।

§5§ गंगा ही गायत्री रूपा है - देवीभागवत §12•6§ में गायत्री के अष्टोत्तर-सहस्रनाम सन्दर्भ में उसे अनेकशः गंगा कहा गया है । नामक्रम के अनुसार वे पर्याय इस प्रकार हैं - गंगा, गोविन्दचरणाक्रान्ता, जहानवी, जह्नुतनया, त्रिस्तोता, भगीरथी, नार्मदा, लोकविश्रुता ।

§6§ गंगा ही कृष्ण रूपा है - श्रीमद्भगवद्गीता § 10•31 § के विभूतियोग में श्रीकृष्ण स्वयं को गंगा से समीकृत करते हैं ।

§7§ गंगा ही हरि का स्वरूप है - श्रीमद्भावगत् 18•417 से 25 में गजेन्द्रमोक्ष सन्दर्भ में भगवान विष्णु गंगा को अपने स्वरूपांश रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

{8} गंगा ही शिव की विभूति है - शिव पुराण {रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड अ0 2 श्लोक 34 से 54 तक } में शिवविभूति वर्णन क्रम में भगवान शिव को गंगा से समीकृत किया गया है -

सत्यलोकोऽसि लोकानां सरितां द्युसरिद्भवाम् ।।

पद्म पुराण में गंगा माहात्म्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है । भगीरथी गंगा जल में स्नान करने से सद्गति प्राप्त होती है ।[1] गंगा के जल में स्नान करने से यह मनुष्य के दोनों वंशों को संसाररूपी समुद्र से तार दिया करती हैं ।[2] जो नित्य ही गंगा पर रहता है उसके पीछे सभी गण रहा करते हैं ।[3] इस गंगा के प्रभाव से मनुष्यों के अनेक जन्मों के पाप का संघात नष्ट हो जाता है । गंगा के इस मूलमन्त्र [4] का जाप करने से मनुष्य परम पवित्र हो जाया करता है ।

वेदसंहिताओं, पुराणों, आर्षकाव्यों, स्तोत्रों एवं काव्यादि ग्रंथों में गंगा के माहात्म्य का अत्यन्त विस्तृत विवेचन हुआ है ।

हिमालय क्षेत्र की गंगा का स्वरूप - गंगा का भौतिक स्वरूप दो क्षेत्रों में व्याप्त है । एक तो हिमालय क्षेत्र में दूसरा हरिद्वार से प्रारम्भ होकर गंगासागर में समाप्त

1- तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गंगा संसेवतां च सा ।। 13

2- गंगा तारयते नृणामुभौ वंशौ भवार्णवात् । 19

3- या गंगानुगतो नित्यं सर्वदेवानुगो हि सः ।। 22

4- ॐ नमो गंगायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः ।। 46

होता है । हिमालय क्षेत्र की गंगा की प्रमुख धाराओं में प्रथम भागीरथी गंगोत्री के गोमुख से निकलकर उत्तरकाशी तथा टिहरी जनपदों से होती हुइ देवप्रयाग आती है । दूसरी धारा अलकनन्दा नरनारायण पर्वतों उद्गत चमोली तथा पौड़ी जनपदों से होती हुई दक्षिण वाहिनी होकर देवप्रयाग आती है । भागीरथी एवं अलकनन्दा देवप्रयाग में समन्वित होकर विशाल गंगा का रूप धारण कर हृषीकेश एवं हरद्वारा होती हुई कनरवल में प्रथम बार समतल भू-भग में प्रवेश करती है ।

देवप्रयाग के पूर्व अनेक अन्य धारायें अलकनन्दा एवं भागीरथी में मिलती हैं । प्रत्येक संगम को प्रयाग कहते हैं । समस्त धारायें साकल्येन 'गंगा' कही जाती हैं ।

देव प्रयाग §1150 फुट § भागीरथी और अलकनन्दा, रूद्रप्रयाग में मन्दाकिनी अलकनन्दा का, सोनप्रयाग में मन्दाकिनी एवं वासुकी का, इसके आगे कर्णप्रयाग में अलकनन्दा एवं पिण्डरगंगा, विष्णुप्रयाग में विष्णुगंगा एवं अलकनन्दा केशव प्रयाग में सरस्वती एवं अलकनन्दा का संगम होता है । इसी प्रकार नान्दीगंगा, धौली गंगा आदि धारायें भी अलकनन्दा से मिलती हैं । हिमालय में प्रत्येक प्रयाग दो गंगाधाराओं के संगम का प्रतीक है ।

इसी गंगा की प्राचीनता एवं पवित्रता का ज्ञान सम्पूर्ण विश्व को रहा है । ग्रीक एवं लैटिन लेखकों को इसी गंगा की 19 सहायक नदियों का ज्ञान था ।

गंगा के बायें तट पर हिमालय से निकलकर मिलने वाली नदियाँ रामगंगा, गोमती, तमसा, सरयू, गण्डकी, बड़ी गण्डक, बागमती कमला, कोसी इत्यादि । गंगा के दायें तट पर यमुना, तमसा, सोन, पुनपुन, फल्गु, सक्रि, बंसलोई, अजया,

दामोदर, रूपनारायण , हल्दी एवं केशाई, पनार, बड़ी यमुना कीर्तिनाशा आदि नदियाँ इस क्षेत्र में हैं । 1700 मील लम्बी ब्रह्मपुत्र नदी फरीदपुर के पास गंगा से मिलती है ।

गंगा पर टिहरी, नरैरा, फरक्का, इत्यादि प्रमुख बांध हैं ।

धर्मसिद्धि का साधना-पक्ष एवं गंगा

साधना तथा साध्य दोनों को मिलाकर ही धर्म की सिद्धि हो पाती है । धर्म का कर्मकाण्डीय स्वरूप निश्चय ही अत्यन्त जटिल और विस्तृत है । "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना" का भी प्रश्न है । प्रत्येक धर्मशास्त्र अलग - अलग व्यवस्थायें देता है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण (अ0 129) में शंख में गंगा का निवास माना गया है कि शंखस्थ जल गंगा जल जैसा ही पवित्र है । देवीभागवत (11•6•37) में गंगा का निवास माना गया है । शिवपुराण में गंगा का निवास, और नारद पुराण (19•125) में तुलसी में गंगा का निवास माना गया है । पितरों की सेवा में गंगा स्नान जन्य पुण्य विद्यमान है ऐसा पद्म पुराण (भूमि खण्ड, अ0 62 श्लोक 58, 60, 62, 64, 67, 72 तथा 74) में कहा गया है । शिव-नाम , शिव-विभूति एवं रूद्राक्ष में गंगा की स्थिति का अनुमोदन शिव पुराण, विश्वेश्वर संहिता (अ0 23 श्लोक 10 तथा 14) में किया गया है ।

हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व (अ0 14, श्लोक 42) में पारियात्र पर गंगा की विद्यमानता एवं नारदपुराण (2•38•17, 18 तथा 19)में कुछ विशिष्ट तिथियों में गंगा के पृथ्वी पर रहने की बात कही गयी है ।

उपर्युक्त उद्धरणों से पार्थिव वस्तुओं, लोकों, तीर्थों तथा विविध जीवों में गंगा की व्यापकता का प्रमाण मिलता है । इस सन्दर्भ में एक अवधेय तथ्य है कि इस प्रकार की व्यापकता अन्य किसी भारतीय सरिता को नहीं प्राप्त हुई है । इससे भगवती गंगा के दैवी रूप का माहात्म्य तथा पार्थिव रूप की गरिमा दोनों स्पष्ट हो जाती है ।

गंगा-सम्बन्धी धर्माचरण का आदिम सोपान है - गंगास्नान । पण्डितराज जगन्नाथ ने गंगावगाहन की पूर्वपरिस्थितियों में गंगास्मरण, गंगानुसरण, गंगादर्शन तथा गंगा स्पर्श को गिनाया है । जो कवि की दृष्टि में स्नान से भी अधिक महत्वपूर्ण है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से उपर्युक्त समस्त व्यापार गंगा स्नान में ही अन्तर्भूत हैं ।

गंगा पार्थिव दृष्टि से एक नदी है परन्तु उसकी दैवी उत्पत्ति तथा अलौकिक गरिमा महिमा ने उसे स्पर्श मणि जैसी शक्ति दे दी है । फलत: गंगाजल से अन्त:करण की निर्मलता तथा सत्प्रवृत्तियों का उदय ही, स्नान का सर्वोत्तम फल है ।

शिवपुराण, उमासंहिता (अ0 23, श्लोक 21 तथा 24) में इसी तथ्य का समर्थन तथा भावशुद्धि की महत्ता को सर्वोपरि बताया गया है ।

देवी भागवत (9·30·59) के प्रामाण्यानुसार नित्य अरुणोदय में गंगास्नान करने से 60 हजार युग तक प्राणी हरिमंदिर में वास करता है । इसी पुराण के 9·30·62 अंश में कहा गया है कि नित्य गंगा स्नान से मनुष्य सूर्यवत पवित्र होता है । शिवपुराण, शतरुद्रीय संहिता (अ0 13 श्लोक 36) में कहा

गया है कि 13 मास गंगास्नान करने से पुत्र की प्राप्ति होती है । रूद्रयामल में स्पष्ट है कि ज्येष्ठामास की शुक्लपक्षीय दशमी तिथि (गंगा दशहरा) पर गंगा - स्नान करने से व्यक्ति को निश्चय ही धन-धान्य प्राप्त होता है । कल्कि पुराण (तृतीयांश) में प्रातः, मध्याह्न तथा सायं गंगास्नान करने से मनुष्यों के समस्त पापों का विनाश तथा आयु की वृद्धि का समर्थन किया गया है ।

देवी भागवत (9·12·37) में गंगाजलकणिका के स्पर्शमात्र से पापियों को ज्ञानोदय तथा पापों का शमन होता है ।

पद्मपुराण के पातालखण्ड (अध्याय 82) तथा हिरवंश पुराण, विष्णु पर्व पूर्वार्द्ध (अध्याय 81 श्लोक 27, 28 तथा 29) में भी माघमास के शुक्लपक्ष में गंगाव्रत करने की विधि और महिमा बतायी गयी है । स्कन्दपुराण में दशहरा - व्रत का माहात्म्य बताया गया है ।

भविष्योत्तर पु0 में गंगा-मंत्र दिया गया है -

" ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमो नमः"

स्कन्द पु0, काशीखण्ड में 20 अक्षरों का गंगा मंत्र है -

"ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा ।"

अग्नि पु0 (अध्याय 228) में गंगा सम्बन्धी एक वशीकरण मंत्र उल्लिखित है ।

तंत्रशास्त्रीय वाङ्मय मुख्यतः दो भागों में विभक्त है - शवागम तथा कौलागम । इनसे सम्बद्ध ग्रन्थों में उपास्य देवता से सम्बद्ध तन्त्रानुष्ठान, व्याख्यात किया गया है । धर्मसाधना मे विधि तथा निषेध का बड़ा महत्व है क्योंकि अनुष्ठान,

व्रत अथवा यज्ञादि की सफलता-असफलता का सारा दायित्व इन्हीं पर निर्भर है । प्राय: सभी पुराणों, महाभारत, शंकर दिग्विजय महाकाव्य एवं ऋग्वेदसंहिता परिशिष्ट में गंगा में प्राण - त्याग की महिमा एवं दृष्टान्तों का सविस्तार विवेचन मिलता है ।

गंगा ने युग-युग से संस्कारों के निर्माण में अभूतपूर्व योग दिया है । जाने कितनी पुण्यकामा नारियाँ आज भी सन्तति की प्राप्ति हेतु गंगा की मनौतियाँ मानती हैं तथा पुत्रवती होती हैं । सन्तति-जन्म, मुण्डन, पर्व-स्नान, धर्माचरण तथा अन्तत: अन्त्येष्टि-संस्कार तक में प्रत्यक्ष योग है । सच तो यह है कि गंगा, हिमालय, सागर आदि को पृथक कर देने पर भारतीय संस्कृति आधारहीन सिद्ध हो जाती है ।

गंगा वर्णन का साहित्यिक स्वरूप

गंगा से सम्बद्ध संस्कृत वाङ्•मय के अनेक रूप हैं । वैदिक गंगा वाङ्•मय में गंगा से सम्बन्धित विविध मुग्धमंत्र हैं । वे मंत्र का उल्लेख, स्तवन, महात्म्य कथन आदि विद्यमान है । ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में भी गंगा-सम्बन्धी तथ्य आये हैं ।

पौराणिक वाङ्•मय में गंगा से सम्बद्ध विविध उपाख्यानों में गंगा का मा मानवीय रूप तथा उसका माहात्म्य विद्यमान है ।

स्तोत्रात्मक गंगा वाङ्•मय में हनुमान वाल्मीकि, शंकराचार्य, कालिदास तथा अन्यान्य रचनाकारों द्वारा लिखी गयी भगवती गंगा की भावात्मक स्तुतियाँ हैं ।

काव्यात्मक गंगावाङ्मय में गंगा से सम्बद्ध वे वर्णन आते हैं । जो दृश्य तथा श्रव्य काव्य-कृतियों में कथानक के अनुरोधवश आये हैं । ऐसे वर्णन सर्वत्र नहीं मिलते । परन्तु जिन नाटकों की कथाओं की घटनाभूमि गंगा से सम्बद्ध है अथवा जो महाकाव्य खण्ड-काव्य यथा कथंचित गंगा से जुड़े हैं उनमें गंगा का वर्णन अवश्य मिलता है । काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में भी गंगा सम्बन्धी स्फुट पद्य मिलते हैं । काव्य प्रकाश साहित्य दर्पण तथा रसगंगाधर आदि में ये पद्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । प्रायः इन पद्यों के रचनाकार का नाम भी अज्ञात है, परन्तु हैं ये पद्य अत्यन्त ललित ।

विद्याकरपण्डितकृत सुभाषितरत्न कोष, श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत शार्गधर प्रणीत शार्गधर पद्धति, जल्हण प्रणीत सूक्तिमुक्तावली तथा वल्लभदेव प्रणीत सुभाषितावली सरीखे संग्रह ग्रन्थों में अनेक कवियों द्वारा प्रणीत गंगासम्बन्धी पद्य उपलब्ध हैं । निश्चय ही ये पद्य साहित्य-सौन्दर्य की दृष्टि से स्पृहणीय है । इसके अतिरिक्त काव्यात्मक गंगा वाङ्मय में कुछ ऐसी स्वतन्त्र साहित्यिक कृतियाँ भी हैं, जो विशुद्ध स्तोत्र तथा विशुद्ध सौन्दर्य-वर्णन नहीं, प्रत्युत दोनों का मंजुल समन्वय है । ऐसी कृतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पण्डितराज जगन्नाथ कृत गंगा - लहरी ।

वस्तुतः गंगासम्बन्धी पौराणिक वाङ्मय स्तोत्रात्मकता तथा काव्यात्मकता की संगमस्थली है । स्तोत्र रचना में पारलौकिक सुख अथवा निःश्रेयस की सिद्धि है । कवि का लक्ष्य होता है । इसके विपरीत काव्यरचना में कवि का लक्ष्य भौतिक श्रेय

में पर्यवसित होता है । स्तोत्र रचना में कवि-धर्मदृष्टि प्रधान होती है जबकि काव्य में उसकी सौन्दर्यदृष्टि ।

पुराणों में एक ओर गंगा का मानवीय रूप है विविध उपाख्यानों में तो दूसरी ओर उसका भौतिक रूप भी है - लहरों के साथ अठखेलियां खेलता हुआ और वहीं तीसरी ओर उसका मोक्षस्तोतभूत धार्मिक रूप भी है । इस प्रकार पौराणिक गंगा वाङ्मय में धर्म, काव्य सौन्दर्य, भक्तिभाव तथा चरित्वर्णन आदि अनेक तत्वों का मंजुल समन्वय है ।

यमुना
====

यमुना का विवरण ऋग्वेद[1], अथर्ववेद[2], ऐतरेय ब्राह्मण[3] शतपथ ब्राह्मण[4] के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी मिलता है किन्तु जैसा मनोहारी वर्णन और आख्यान श्रीमद्भागवत पु0 में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । कवि जयदेव ने भी अपने गीतिगोविन्द नामक गीति काव्य में यमुना के तटों तथा उस पर स्थित कलि - कुंजों का बड़ा ही सरस वर्णन किया है ।

भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध नदियों में इसका वर्णन है । नदियों के नाम वर्णन में इसे सर्वत्र द्वितीय स्थान दिया गया है । यह यमुना का सौभाग्य है कि उसके तट पर श्रीकृष्ण के बाल-जीवन की साधारण एवं असामान्य सभी प्रकार की क्रीड़ायें हुयीं । यह रवि-तनया एवं यमराज की सहोदरा हैं । हिमालय के भाग कालिन्द से प्रकट

1- ऋग0 , 10/75, 5/7, 18/19, 10/145/5

2- अथर्व0, 4/9/10

3- ऐतरेय ब्रा0, 8/14/4

4- शतपथ ब्रा0, 1/3/5,11

होने के कारण इसे कालिन्दी कहा जाता है । यमुनोत्तरी से प्रकट होकर यह प्रयाग में गंगा से मिलती हैं । यमुना के ही द्वीप में पराशर मुनि ने व्यास को सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न किया । यमुना आज भी अपने ही नाम से जानी जाती हैं ।

यमुना के जल तथा उसके स्नान का महत्व पद्म पु0 स्वर्ग खण्ड के 21 वें अध्याय में बड़े विशद ढंग से वर्णित है । उदाहरणार्थ -

यमुनानां विशेषेण स्नानदानेन सत्तम ।
आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपयौवनतागुणे ।।
पातकं नश्यते तत्र स्नानात्पुण्य विवर्द्धते ।
यथाविधौ सुखमायान्ति रत्नानि विविधानि च ।।
तत्र मज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशव: ।
न समं विद्यते किंचत तेज: सौरेण तेजसा ।।
नाशकं सर्वपापानां यदि स्नास्यन्ति वारिणि ।
पावका इव दीप्यन्ते यमुनायां नरोत्तमा: ।।[1]

यमुना का वर्णन गर्गसंहिता में भी मिलता है । श्रीमद् गर्गाचार्यसंहिता में श्रीमाधुर्यखण्ड में श्री सौभरि - मान्धाता संवाद में यमुना से सम्बन्धित कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम इत्यादि है - यमुना कवच, मानधातोवाच ।

यमुनाया: कृष्णराज्ञा: कवचो सर्वतोऽलम ।
देहि मह्यं महाभाग धारयिष्याम्यहं सदा ।।
सौभरिरूवाय । यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
चतु:पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन्महामते ।।

1- पद्म पु0 , स्वर्ग खण्ड, अ0 29

कृष्णां चतुर्भुजां श्यामां पुण्डरीकदलेक्षणाम ।
रथस्थां सुन्दरीं ध्यात्वा धारयेत्कवचं ततः ।।
यः पठेत्प्रयतोभत्वा तस्य किं किं न जायते ।।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभते ।
अन्ते व्रजेत्परं धाम गोलेकं योगिदुर्लभम् ।।

इस कवच के अन्त में वर्णित है कि इसका पाठ करने से सब तीर्थों का फल और गोलोकधाम को प्राप्त करता है । यमुना का कवच मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों को प्रदान करने वाला है ।

इस संहिता में यमुना स्तवः का निम्न स्तोत्र में यमुना-माहात्म्य का वर्णन है -

यः पापपंकाम्बु कलंककुत्सतः कामी कुधीः सत्सु कलिं करोति हि ।
वृन्दावनं धाम ददाति तस्मै नदान्मिलिन्दारि कालिन्दनन्दिनी ।।
कृष्णे साक्षात्कृष्णरूपा त्वमेव वेगावर्ते-मत्स्यरूपी ।
ऊर्मावूर्मौ कूर्मरूपी सदा ते बिन्दौबिन्दौ भाति गोविन्द देवः ।।[1]

गर्ग संहिता में ही यमुना के सहस्रनाम स्तोत्र हैं जिसमें यमुना के हजार नाम हैं -

---

1- श्रीमद् गर्गाचार्य संहिता, माधुर्य खण्ड, यमुना स्तवः, 4, 5

गोलोकवासिनी श्यामा वृन्दावनविनोदिनी ।

राधासखी रासलीला रासमण्डलमण्डिता ।।

घनश्यामा मेघमाला बलाका पद्ममालिनी ।

परिपूर्णतमा पूर्णा पूर्णब्रह्मप्रिया परा ।।

नाम्नां सहस्र कालिन्द्या: कीर्तिदं कामदं परम ।

महापापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमत्तमम् ।।[1]

यह कालिन्दी सहस्रनाम स्तोत्र परम कीर्तिदायक और कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ।

श्रीमद् शंकराचार्य द्वारा रकचत दो यमुनाष्टक प्राप्त होते हैं ।

पण्डितराज जगन्नाथ की अमृत लहरी में यमुना का विस्तृत वर्णन है । पण्डितराज जगन्नाथ जी के मानस पटल पर भव - बन्धन का आघात इतना अधिक रहा कि वे अपने कष्ट के अनवारण हेतु प्रयत्न तो करते ही हैं साथ ही अपनी ही जैसे अनेकों समसामयिक तथा उत्तरवर्ती मनुष्यों के लिये एक स्थायी प्रशस्त मार्ग का प्रदर्शन करते हैं । भव-बन्धनों निवृत्ति में देवलोक से सम्बन्धित तथा पवित्र भारत वसुन्धरा में अवस्थित भगवती कालिन्दी की स्तुति करने में तल्लीन हो जाते हैं । यमुना,जो भक्ति के क्षेत्र वृन्दावन में भगवान कृष्ण की क्रीडासंगिनी रही है - की स्तुति पण्डितराज श्रेयस्कर समझते हैं क्योंकि यमस्वसा कालिन्दी सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली है । उसका नीलाभ जल जो भूतभावन नीलकण्ठ शिव की कण्ठकान्ति के समान शरीर वाली है - में सर्वतोभावेन निमज्जन करने से परम

1- श्रीमद् गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, सहस्रनाम स्तोत्र, 5,8,130

कृपालु भगवान के अक्षयपुण्य लोक को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, जैसा कि उन्होंने अमृतलहरी में उद्धृत किया है -

> नित्यं पातकभङ्गमङ्गलजुषां श्रीकण्ठकण्ठत्विषां
> तोयानां यमुने तव स्तवविधौ को याति वाचालताम् ।
> येषु द्राग् विनिमज्ज्य सज्जतितरां रम्भाकराम्भोरुह -
> स्फूर्जच्चामरवीजितामरपदं जेतुं वराको नरः ।।[1]

हे यमुने ! सर्वदा पापक्षय एवं मंगल से समन्वित भगवान शिव की कण्ठ की कान्ति के समान जल वाली तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है, जिसमें भली भांति स्नान करने से कोई मूर्ख व्यक्ति भी भगवान के अमरलोक को प्राप्त करने के लिये समुद्यत हो जाता है ।

यमुना के शरीर को द्विविध बताते हुये करुणावती भगवती यमुना से प्रसन्नता की प्राप्ति की कामना की है ।[2] क्योंकि सांसारिक वासनायें एवं लौकिक प्रवृत्तियां ही मानव को भव-बन्धन में बांधने में समर्थ रहती हैं । यदि संयम तथा भगवद्-आराधना से लौकिक प्रवृत्तियों से अपने को अलग कर लिया जाय तो भौतिक का मोह स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं । कालिन्दी में स्नान करने से भी भव-बन्धन निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा पण्डितराज जी का मन्तव्य है । अपने अमृत लहरी के पांचवे श्लोक में शब्दशः प्रतिपादित किया है -

---

1- अमृत लहरी श्लोक 4

2- अमृत लहरी श्लोक 4

तावत्पापकदम्बडम्बरमिदं तावत् कृतान्ताद् भयं

तावन् मानसपद्मसपद्मनि भवभ्रान्तेर्महानुत्सवः ।

यावल्लोचनयोः प्रयाति न मनागम्भोजिनीबन्धुजे

नृत्यत्तुङ्गतरङ्गभङ्गिरुचिरो वारां प्रवाहस्तव ।।

अमृत लहरी, श्लोक - 5

कालिन्दी का जल अतिशय पवित्र एवं पापनाशक तो है ही, उसका नामोच्चारण भी कल्याणकारक है क्योंकि जिन मनुष्यों ने श्रद्धा पूर्वक 'कालिन्दी' शब्द का उच्चारण किया है, उन्हें भी विविध-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं फिर जिसने चूडान्त निमज्जन किया है उसकी तो बात ही क्या है ।[1]

सम्पूर्ण विघ्नों का हरण करने वाली माता यमुना की पवित्रतम जल का पान कर पण्डितजी अपनी मुक्ति की कामना करते हैं । आपका विचार है कि आपके तट पर पहुँचने के लिये उत्सुक व्यक्ति को कृतान्त भी रोकने में समर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि उसकी अद्वितीय महिमा कृतान्त (यमराज) की आज्ञा से भी अधिक प्रभावशालिनी हुआ करती है । भगवती यमुना अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक लीला पुरूषोत्तम भगवान कृष्ण की नित्यप्रिया हैं, पापनाशिनी हैं तथा सर्वदा पुण्यस्वरूपा हैं । पण्डितराज जी ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि जो जन दूरदेशवासी होने के कारण अथवा साधनों की सुलभता के अभाव में या अपनी अक्षमता के कारण भी माँ यमुना के पवित्र जल में स्नान नहीं कर सकते यदि वे अपनी दैनिक स्नान में भी 'अमृत-लहरी' नामक स्तोत्र का पाठ करें तो उनकी भी अनेक पूर्वजन्मों के पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं -

---

1- अमृत लहरी, श्लोक 6

संज्ञाकान्तसुते कृतान्तभगिनी श्रीकृष्णनित्यप्रिये
पापोन्मूलिनि पुण्यधात्रि यमुने कालिन्दि तुभ्यं नमः ।
एवं स्नानविधौ पठन्ति खलु ये नित्यं गृहीतव्रता -
स्तानामन्त्रितसंख्यजन्मजनितं पापं क्षणादुज्झति ।।

अमृतलहरी, श्लोक 10

संस्कृत साहित्य में सरस्वती का विकास

'सरस्वती का प्राथमिक नदी-रूप' है । वह सर्वप्रथम एक नदी थीं । ऋषिगण इसके शान्त वातावरण से प्रभावित होकर इस पर देवी का आरोपकरने लगे तथा इसे यज्ञ से सम्बद्ध कर मन्त्रों की देवी अथवा वाग्देवी भी स्वीकार करने लगे । वामन पुराण[1] में सभी जलों का सरस्वती से तादात्म्य दिखाया गया है । यह दृषद्वती नदी के साथ ब्रह्मावर्त का निर्माण करती थी । इस ओर संकेत स्वतः मनु ने मनुस्मृति[2] में किया है । सरस्वती के भौतिक-पक्ष में उसके सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले शब्द सुयमा, शुभ्रा, सुपेशस आदि हैं । तदनन्तर सरस्वती के मानसिक-पक्ष में उसे धिया'चोदयित्री', 'सुनृतानाम्', 'साधयन्ती' 'धियम्' आदि कहा गया है । इसके बाद सरस्वती के सामाजिक-पक्ष में उसे एक माता, बहिन, पत्नी, पुत्री, तथा सखी रूप में चित्रित किया गया है । इस वेद में सरस्वती के प्रमुख कार्यों का विवेचन किया गया है । वह अन्नदात्री, सन्तानदात्री तथा धनदात्री हैं । यहाँ सरस्वती की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है । वाजिनवती, पावका,

---

1- वामन पुराण, 40/14

2- मनुस्मृति, 2/17

घृताची, पारावतघ्नी, चित्रायु:, हिरण्यवर्तनी, असूर्या, धरूणमायसी पू: और अकवारी इसके विशेष व्यक्तित्व का ख्यापन करते हैं । इसका मित्र, वरूण, सोम, अश्विन्, मरूत, अग्नि, इन्द्र, विष्णु इत्यादि देवताओं के साथ सामान्य सम्बन्ध तथा मरूत के साथ विशेष सम्बन्ध दिखलाया गया है।

ऋग्वेद में नदी-स्तुति विषयक मन्त्रों में जहाँ गंगा का वर्णन दो या तीन बार आया है वहाँ सरस्वती की स्तुति अनेकश: हुयी है । इसके लिये सम्पूर्ण दो सूक्त आते हैं ।[1] इसके अतिरिक्त छिट - पुट अनेक मन्त्रों में इसका यशोगान किया गया है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में सरस्वती माताओं, नदियों में सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी हैं -

"अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति"[2]

यह नदी पर्वतों से निकलकर समुद्रपर्यन्त जाती थी ।[3] और राजपूताना के समुद्र में गिरा करती थी ।[4] प्राचीनकाल से लोगों का यह विचार है कि गंगा यमुना और सरस्वती - ये तीनों नदियाँ प्रयाग में संगम पर मिलती हैं । प्रत्यक्षत: केवल गंगा और यमुना का संगम मानना उचित है । वैसे त्रिवेणी का अभिप्राय तीन धारायें हैं जिसमें गंगा और यमुना की दो धारायें तथा दोनों की मिश्रित धारायें ।

1- ऋग्वेद, 7/95/1-6, पृ0, 16/1-6

2- ऋ0, 2/4/116

3- ऋ0, 7/952

4- एन0 सी दास, ऋग्वैदिक इण्डिया कलकत्ता, 1917, पृ0 8

भू-परिवर्तन के कारण सरस्वती जो पहले राजपूताना के सागर में गिरती थी, अब उसकी दिशा पश्चिम से पश्चिमोत्तर हो गयी और वह अरब सागर में गिरने लगी । इसका स्पष्ट संकेत पुराणों में मिलता है । जिसमें सरस्वती को प्राची[1] तथा पश्चिमाभिमुखी[2] उपाधियों से विभूषित किया गया है ।

आज सरस्वती के भौतिक स्वरूप का निश्चय करना कठिन है । सरस्वती शिवालिक पहाड़ियों से निकलकर घग्घर से मिलती है जब वह पाकिस्तान में प्रवेश करती है तब 'हाकरा' नाम से कही जाती है । वास्तव में इसे 'पूर्वी नारा' कहा जाता है जिससे होकर कभी सरस्वती कच्छ की खाड़ी में गिरा करती थी । पुराणों में सरस्वती के किनारे बसा 'सारस्वत देश' कहलाता था । ऋग्वेद के अन्य मन्त्र में सरस्वती को 'पंचजाता वर्धयन्ती' कहा गया है ।[3] इन पाँच जातियों में कुरू, पुरू तथा भरत प्रमुख थे । इन सबका सम्बन्ध पश्चिमी भारत विशेषकर पूर्वी पंजाब तथा दक्षिणी राजस्थान से था, अतएव इन सब पुष्ट प्रमाणों के आधार पर वैदिक सरस्वती को पश्चिमी भारत से प्रवाहित होने वाली नदी माना जाना उचित है ।

ऋग्वेद की भांति यजुर्वेद में भी सरस्वती के भौतिक रूप और उसकी विशिष्ट उपाधियों को निरूपित किया गया है तत्पश्चात् सरस्वती के चिकित्सका के रूप में सौत्रामणि तथा भेषज यज्ञों का वर्णन है । अन्त में उसे एक दुधारू गाय के

1- पद्म पु0, 5/18/217

2- स्कन्द पुराण, 7/35/26

3- ऋ0, 6/61/12

रूप में चित्रित किया गया है ।

अथर्ववेद में सर्वप्रथम सरस्वती को चिकित्सा-विद्या के रूप में स्तवन किया गया है । इस वेद में इन्हें जड़ी बूटी असुरों की पुत्री, देवों की बहन तथा स्वर्ग और पृथ्वी से उत्पन्न हुयी बताया गया है । वह रक्षक तथा मनुष्यों की दैवी शक्ति है । इसमें सरस्वती का नदीरूप और अथर्ववैदिक देवियों का त्रिक प्रदर्शित है ।

ब्राह्मणों में सरस्वती के लिये सर्वप्रथम वाक् पर विचार किया गया है । ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण के दो आख्यानों से वाक् की दिव्यता प्रगट होती है तथा देवों का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध ज्ञात होता है । इसकी उपाधियों में वेशभल्या, सत्यवाक्, सुमृडीका, सुभगा, वाजिनवती और पावका मुख्य हैं । प्रायः सभी ब्राह्मणों ने एक स्वर से सरस्वती को 'वाग्वैसरस्वती' माना है । ऐसे ब्राह्मणों में शतपथ, गोपथ, ताण्ड्य ऐतरेय, शांखायन, तैत्तिरीय तथा ऐतरेय आरण्यक प्रमुख हैं ।

ऋग्वेद में सरस्वती से सम्बद्ध अनेक विशेषण प्रयुक्त होते हैं जो नूतन एवं रहस्यमय प्रतीत होते हैं । उन विशेषणों में 'सिन्धुमाता', 'सप्तस्वसा', घृताची' और 'पावीरवी' हैं ।

सरस्वती की पौराणिक उत्पत्ति

सरस्वती की उत्पत्ति विषयक सामग्री भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न रूपों में पायी जाती है । सरस्वती की उत्पत्ति का वर्णन प्रमुख रूप से ब्रह्मवैवर्त, मत्स्य, पद्म, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में मिलता है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में सरस्वती की उत्पत्ति विषयक सामग्री यत्र-तत्र कई स्थलों पर पायी जाती है । इस पुराण के अध्याय 3-ब्रह्मखण्ड में पौराणिक देवियों के त्रिक्-सरस्वती, महालक्ष्मी तथा दुर्गा की उत्पत्ति का विवेचन करते हुये सरस्वती की उत्पत्ति परमात्मा से बतायी गयी है ।[1]

ब्रह्मवैवर्त पु0 के एक अन्य स्थल पर सरस्वती की उत्पत्ति भगवान श्रीकृष्ण के मुख से बतायी गयी है । और वह उनकी शक्तिरूपा है ।[2] एक अन्य स्थल पर सांख्य-सिद्धान्त के प्रकाश में उत्पत्ति प्रक्रिया का सुन्दर वर्णन हुआ है ।

मत्स्य पुराण के अनुसार सरस्वती की उत्पत्ति ब्रह्मा[3] से हुई है जिसने अपने मुख से समस्त वेदों तथा शास्त्रों को उत्पन्न किया । तत्पश्चात ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद नामक दस मानस पुत्रों की उत्पत्ति की ।[4] ब्रह्मा अपने सृष्टि के भार को संभालने की चिन्ता से गायत्री का जाप करने लगे, फलत: उनके अर्धशरीर से गायत्री की उत्पत्ति स्त्री-रूप में हुई । इस स्त्री रूप का विभिन्न नामकरण शतरूपा, सावित्री, गायत्री, सरस्वती तथा ब्रह्माणी के रूप में हुआ ।[5]

मत्स्य पुराणानुसार ब्रह्मा ने सरस्वती की उत्पत्ति लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या तथा विश्वेशा के साथ की । पद्म पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है ।

1- ब्रह्म वै0, 1/3/54-57

2- वही - 2/4/12

3- मत्स्य पुराण, 3/2-4

4- वही - 3/5-8

5- वही - 3/30-32

वायु पुराण के अनुसार ब्रह्मा का आधा शरीर पुरूष का और आधा स्त्री रूप था। स्त्रीरूप का दक्षिणी भाग श्वेत तथा वाम भाग कृष्ण था। यही श्वेत भाग स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा गौरी रूप में प्रख्यात हुआ। इस प्रकार सरस्वती गौरी {श्वेतवर्णा देवी} का प्रतिनिधित्व करती है, जो पुरूष के स्त्री रूप अंश का श्वेत भाग है।

वायु पुराण के एक अन्य स्थल पर वर्णित है कि ब्रह्मा ने सरस्वती की उत्पत्ति विश्वरूपा में की।

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार सरस्वती का उत्पत्ति स्थल महालक्ष्मी हैं। महालक्ष्मी ने सर्वप्रथम तीन अण्डों को उत्पन्न किया। एक अण्डे से ब्रह्मा की श्री के साथ, दूसरे से सरस्वती की शिव के साथ तथा तीसरे से विष्णु की अम्बिका के साथ उत्पत्ति हुई। ये तीनों अण्डे प्राथमिक रूप से हिरण्यगर्भ प्रजापति की अवस्था को द्योतित करते हैं। पुराणों में ब्रह्मा को प्रजापति कहा गया है। यह ब्रह्मा सर्वशक्तिमान परमात्मा तथा महालक्ष्मी से समुद्भुत है। जिस प्रकार सर्वशक्तिमान परमात्मा से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों देवों की उत्पत्ति मानी जाती है।[1] उसी प्रकार लक्ष्मी सरस्वती तथा अम्बिका तीन पौराणिक देवियों की उत्पत्ति महालक्ष्मी से मानी गयी है।

एक देवी जो सृष्टि के समय विभिन्न रूपों को धारण करती है उसके स्त्री-रूप के सरस्वती के पर्यायवाचक विद्या, भाषा, स्वर, अक्षर तथा कामधेनु

1- आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल, मार्कण्डेय पुराण: एक अध्ययन {वाराणसी, 1961} पृ0 94 - 95।

नाम हैं । महालक्ष्मी से सत्वोत्पत्ति का नाम महाविद्या, महावीणा, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु आदि हैं । पूर्व की भांति ये सब नाम भी सरस्वती के पर्याय हैं ।

सरस्वती का पौराणिक नदी रूप

ऋग्वेद में 'दिव्या आप:' का बहुधा प्रयोग सामान्य रूप से सभी नदियों का वाचक है, जिनमें सरस्वती प्रधान है ।[1] पुराणों में सरस्वती की इस वैदिक मर्यादा की न केवल प्रतिष्ठा है अपितु और भी माहात्म्य वर्णित है । यहाँ सरस्वती को 'कामगा' कहा गया है । वह मेघों में जलसर्जन करती है तथा सभी जल सरस्वती नाम से व्यवहृत है ।[2] पुराणों में सरस्वती नदी 'सरस्वती देवी' का प्रारूप है । वह प्रारम्भ से ही नदी देवता रही न कि तन्नामक किसी देवी से अधिष्ठित ।[3] पुराणों में सरस्वती के दो रूप देखे जा सकते हैं ।

(1) ज्ञान एवं वक्तृत्व की देवी (2) नदी अथवा नदी देवता

धार्मिक विश्वासों के अनुसार सरस्वती पहले देवी थी तत्पश्चात कई कारणों से उसे नदी होना पड़ा । ब्रह्माण्ड पुराण[4] और अग्नि पुराण[5] में भी

1- लुइस रेनु, वैदिक इण्डिया (कलकत्ता 1967) पृ0 7।

2- वामन पुराण, 40/4।

'त्वमेव कामगा देवी मेघेषु सृजसे पय: । सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयं वहामहे'

3- आनन्द स्वरूप गुप्त, सरस्वती एज द रीवर गाडेस इन द पुराणाज, पृ0 69

4- ब्राह्माण्ड पु0, 2/12/13-16

5- अग्नि पु0, 2/9/69-72

पवित्र नदियों की एक लम्बी परम्परा मिलती है । सरस्वती को सर्वपाप-प्रणाशिनी कहा गया । पवित्र जलयुक्त पुण्यतोया-पुण्यजला होने के कारण उसे 'शुभा, पुण्या, अतिपुण्या आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है ।

सरस्वती नदी-रूप में भी 'ब्रह्मपुत्री कही गयी है । भागवत पुराण में सरस्वती के किनारे अनेक तीर्थों के प्रसंग आते हैं । मत्स्य पु0 के अध्याय 22 में श्राद्ध के निमित्त अनेक तीर्थों का वर्णन है जिनमें पितृतीर्थ, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सरस्वती आदि विशेष उल्लेखनीय है ।[1]

पृथ्वी के सिंचन द्वारा मानव समृद्धि का वर्धन करती है ।उन्हें 'जगन्माता'[2] कहा गया है । वामन पुराण में सरस्वती को 'सतत्प्रवाहिनी'[3], 'प्रवाहसंयुक्ता',[4] 'वेगयुक्ता'[5] उपाधि से विभूषित किया गया है । ब्रह्मवैवर्त पु0 में 'स्रोतस्येव'[6] कहा गया है । पुराणों ने 'नदीतमा' जैसे ऋग्वैदिक विशेषण की मर्यादा की रक्षा की । तथा बार - बार उसे 'महानदी'[7] से सम्बोधित किया गया है । समुद्र में गिरने से

1- मत्स्य पु0 22/22-23

2- वामन पुराण, 34/8

3- वही, 33/1

4- वही, 37/22

5- ब्रह्मवैवर्त पु0 2/7/3

6- वामन पु0, 37/31, 40/8 ; भागवत पु0 5/19/18

7- डा0 रमाशंकर भट्टाचार्य, इतिहास पुराण का अनुशीलन §वाराणसी 1963§ पृ0 232

उनकी 'समुद्रगा'[1] उपाधि युक्तियुक्त है । अन्तिमकाल उसकी दशा ऐसी हो गयी थी कि वह कभी दिखायी देती थी तो कभी छुप जाती थी । इसी लिये उसे पुराण में 'दृश्यादृश्यगति:[2] कहा गया है । कुरूक्षेत्र से होकर बहने के कारण वह 'कुरूक्षेत्र - प्रदायिनी'[3] कहलायी । सामूहिक रूप से 'सारिद्वरा:' की उपाधि सरस्वती, देवकी एवं सरजू को दी गयी है । इसके अतिरिक्त सरस्वती को 'ब्रह्मनदी'[4] कहा गया है, जिसमें परशुराम ने अपना 'अवभृथ स्नान' किया था । वाणी, वाग्देवी, देवी, विद्या-देवी, ज्ञानाधिष्ठात्री, वक्तृत्वदेवी इत्यादि के रूप में भी अनेक उपाधियाँ मिली है ।

लौकिक साहित्य में कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, भवभूति, दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, राजशेखर, भर्तृहरि, बिल्हण, कल्हण इत्यादि हैं । इन्होंने विभिन्न प्रसंगों में सरस्वती का रूप चित्रित किया है । इनकी कृतियों के अध्ययन से सरस्वती के विभिन्न पक्षों का हमें सहज में ही ज्ञान हो जाता है ।

<u>वाणी का चतुर्विध रूप</u> - वैदिक काल में वाणी का गौरव वेदों के अध्ययन से भली-भाँति जाना जा सकता है । परन्तु यहाँ वह बड़ी गूढ़ तथा रहस्यमय है ।[5]

1- वामन पु0, 23/2

2- वही - 32/1

3- मत्स्य पु0, 133/24

4- भागवत पु0 , 9/16/23

5- अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवै: ।
अहं मित्रावरूणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।
ऋ0-10/125/1

ब्राह्मणकालीन युग में वाणी अपना स्वरूप स्पष्ट करती हुई दिखायी देती है। यहीं वाणी का वाक् तथा वाग्देवी के साथ तादात्म्य स्थापित हो गया है - 'वाग्वै सरस्वती'। यह मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर वाणी के विवेचन का आभास मिलता है। वाणी (वाक्) मनरूप है।[1] मन में किसी विचार के प्रकटीकरण की इच्छा होते ही वह एक श्वास में परिवर्तित हो जाती है तथा बलाधिक्य तीव्र होते ही वाणी के माध्यम से व्यक्त हो जाती है। वाक् की विशद विधिवत् विविध व्याख्या शतपथ, गोपथ, ताण्ड्य, ऐतरेय, शांखायन, तैत्तिरीय, ऐतरेयारण्यक आदि में की गयी है।

औपनिषदिक काल में वाणी का दार्शनिक रूप लक्षित होता है। यहाँ यह श्वास का रूप धारण करती हुई इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के माध्यम से 'योगविद्या' को जन्म देती है।

पौराणिक युग में वाणी का विविध रूप लक्षित होता है। इस युग में वाणी की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती है तथा उसे विभिन्न पुराणों में - भा० पु० में ब्रह्मयोनि सर्वजिह्वा, विष्णोर्जिह्वा, स्कन्द पु० में श्रुति लक्षण, भाषा, स्वरा, अक्षरा, गिराभारती, ब्रह्म वैवर्त पु० में विश्वरूपा, वाग्देवता, वाग्वादिनी, विद्याधिष्ठात्री, विद्यास्वरूपा, सर्वकण्ठवासिनी, जिह्वाग्रवासिनी, बुधजननी, गद्यपद्यवासिनी, ब्रह्मस्वरूपा इत्यादि है।

1- सायणाचार्यकृत श० ब्रा० - 11/2/6/3 की व्याख्या

ऋग्वैदिक काल में वाक् तथा उस देवी का स्वरूप अस्पष्ट है । यहाँ बहुत सी देवियाँ हैं जिनमें मुख्य अदिति, राका, इन्द्राणी, वरूणानी, पृथ्वी तथा पुरन्धी हैं । ये अपने क्षेत्र की प्रधान देवियाँ हैं तथा इनका आवाहन सरस्वती के साथ कतिपय ऋग्वैदिक मन्त्रों में स्वतन्त्र रूप से हुआ है । ऋग्वेद में सरस्वती देवी का मूर्तिकरण नहीं हुआ है, जैसा कि अन्यत्र पुराणों तथा तदेतर साहित्य में उपलब्ध होता है । वह वैदिकेतर साहित्य में मुख्यत: एक देवी के रूप में वर्णित है । ऋग्वेद में मुख्यत: एक देवी के रूप में ही चित्रित है, परन्तु कुछ मंत्र उसे नदी के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं । ऋग्वेद में देवी के रूप में उसकी मूर्तिवत्ता कहीं - कहीं अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अभिव्यक्त होती है । सरस्वती के चरित्र में आदित: निरन्तर परिवर्तन तथा विकास की दशा लक्षित होती है । एक ऋग्वैदिक देवी के रूप में वह तीन देवियों का त्रिक् बनाती है, जिसमें इला तथा भारती सम्मिलित हैं । वाणी के तीन रूप प्रकल्पित हैं तथा वे मध्यमा, वैखरी तथा पश्यन्ती हैं । ये तीनों देविया तीन वाणियों का प्रतिनिधित्व करती हैं । संस्कृत में तीन लोकों पृथ्वी, आकाश तथा द्युलोक की कल्पना की जाती है । ये तीनों देवियाँ इन तीन लोकों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं ।

सरस्वती का विशेष सम्बन्ध इला तथा भारती से है । इन्हीं से ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक् है, जो वैदिकेतर से भिन्न है । सरस्वती का वर्णन ऋग्वेद में अदिति गुंगू, सिनीवाली, राका, इन्द्राणी, वरूणानी, पृथिवी इत्यादि के साथ नितान्त स्वतन्त्र रूप से हुआ है । पुरन्ध्री धी: तथा ग्ना: के साथ उसका

अपेक्षाकृत सम्बन्ध गहरा है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में सरस्वती धी: के साथ वर्णित है 'वह सरस्वती सौभाग्य प्रदान करे तथा धी: के साथ पूजकों की वाणियों का श्रवण करे । 'शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।'[1] इसी प्रकार पुरन्धी के साथ भी स्तुति पायी जाती है 'श्रृण्वन्तु वचांसि मे सरस्वती सह धीभि: पुरन्ध्या'[2] । इससे सरस्वती तथा धी: का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है ।

ऋग्वैदिक देवियों का त्रिक् - देवियों एवं देवों के त्रिक् का इतिहास बड़ा प्राचीन है । यह त्रिक वैदिक तथा वैदिकेत्तर दोनों साहित्यों में उपलब्ध होता है तथा इस त्रिक् का सम्बन्ध देवियों तथा देवों से है । वेद में ही देवों का त्रिक् अग्नि वायु अथवा इन्द्र तथा सूर्य से बनता है । जिस प्रकार सरस्वती, इला तथा भारती के स्थान भिन्न - भिन्न हैं, उसी प्रकार वैदिक देव - त्रिक् के स्थान भी भिन्न - भिन्न है ।

वैदिक त्रिक की भांति पौराणिक देव-त्रिक् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश से बनता है तथा देवियों का सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती या गौरी से बनता है ।[3]

प्रकृत सन्दर्भ में ऋग्वैदिक देवी-त्रिक् में इला दूध तथा घी की बलि का केतन रूप है । इस प्रकार इला उस धन का प्रतिनिधत्व करती है, जो गौ से प्राप्त होता है । वह उर्वरता की भी देवी समझी जाती है । ऋग्वेद में बहुत कम मन्त्रों में इला की स्तुति अकेले की गयी है,अन्यथा वह सरस्वती तथा भारती के साथ

1- ऋग्वेद, 7/35/11

2- ऋग्वेद, 10/65/13

3- डोनाल्ड ए0 मकेंजी, इण्डियन मिथ एन्ड लेजेण्ड [लन्दन, 1913] पृ0 151

वर्णित है । सरस्वती की भाँति इला एक दुधारू गाय है ।[1] दुधारू गाय के रूप में वह पशुओं में सर्वोत्तम है, अतएव वह पशु-समुदाय की माँ कही जाती है ।[2]

इला की भाँति भारती एक यज्ञ की देवी है ।[3] वेदों में तो वह सर्वथा स्वतन्त्र है तथा सरस्वती से भिन्न एक देवी है, परन्तु वैदिकेत्तर काल में उसकी वैयक्तिक सत्ता सरस्वती में धुल-मिल सी गई है । दोनों के नाम प्राय: एक दूसरे के पर्याय हैं । इस सामंजस्य की बीज स्वत: अथर्ववेद में उपलब्ध होता है, जहाँ न केवल सरस्वती तथा भारती के, अपितु इला के भी व्यक्तित्व का पारस्परिक सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है ।[4]

श्री अरविन्दो के अनुसार इला, सरस्वती और भारती क्रमश: दृष्टि, श्रुति तथा सत्य चेतना की महानता का प्रतिनिधित्व करती है ।[5] ये तीनों देवियाँ वाणी के तीन रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं । वेदों में सम्भवत: यह वर्णित नहीं है कि कौन देवी किस वाग्रूप का प्रतिनिधित्व करती है । भारती का एक अन्य नाम मही भी है । सायण ने स्पष्ट किया है कि तीनों देवियाँ स्वत: वाणी के तीन रूप हैं । उन्होंने भारती को 'द्युस्थाना वाक्'[6] तथा 'रश्मिरूपा'[7] माना है ।

1- ऋग्वेद 3/55/13

2- ऋग्वेद 5/41/19

3- तु0 जेम्स हेस्टिंग्स, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग 12 (न्यूयार्क 1956) पृ0 607

4- अथर्ववेद, 6/100/1 (तु तिस्र: सरस्वती:)

5- श्री अरविन्दो, ऑन द वेद (पाण्डिचेरी, 1956) पृ0 110

6- सायण-भाष्य ऋ0 1/142/9 "भारती भरतस्यादित्यस्य सम्बन्धिनी द्युस्थाना वाक्

7- सायणभाष्य ऋ0, 2/1/11

इसी प्रकार उन्होंने सरस्वती को 'माध्यमिका वाक्' माना है । और उसे 'स्तनि - तादिरूपा' कहा है । सरस्वती की व्याख्या इस प्रकार किया है "सरस्वती सरः वागुदकं वा । तद्वत्यन्तरिक्षदेवता तादृशी "[1] ध्वनि वायु द्वारा बाह्य है, अतएव सरस्वती वायुरूपा है यथा वायु की नियन्तृ है ।[2] अन्यत्र अनेकशः उसे "माध्यमिका वाक् " कहा गया है ।[3] इला पार्थिवी वाणी (पार्थिवी पेषादिरूपा) है ।[4] तीनों देवियों की तीन वाणियाँ बताते हुए उन्हें तीनों वाणियों की अधिष्ठातृ देवियाँ भी माना गया है, तथा वह कथन वेदसिद्धान्तानुगत भी है ।

"एतास्तिस्रः त्रिस्थानवागभिमानि देवता"[5]

ऋग्वेद में इला सरस्वती तथा भारती का अग्नि से समन्वय भी उपलब्ध होता है । ऋग्वेद में उन्हें 'अग्निमूर्तयः' कहा गया है । एक अन्य स्थल पर सरस्वती को 'त्रिषधस्था' कहा गया है । इला, सरस्वती तथा भारती भूः, भुवः तथा स्वः की प्रतिनिधिकारिणी देवियाँ है अतएव वे तत्तत्स्थानों की वाक् हैं ।[6] तीनों देवियों में से भारती पश्यन्ती है, सरस्वती मध्यमा है तथा इला वैखरी है ।[7]

1- सायणभाष्य ऋ0, 1/188/8

2- वही - 2/1/11, 'सरस्वती सरणवान् वायुः ।
तत्सम्बन्धिनी एतन्नियामिका माध्यमिका'

3- वही - 2/30/8, 5/43/11, 10/17/7, 65/12

4- वही - 1/42/9

5- वही - 1/149/9

6- डा0 सूर्यकान्त, 'सरस, सोम एण्ड सीर' ए0बी0ओ0 आर0 आई0 भाग 38 (पूना 1958) पृ0 127-128

7- सायणभाष्य ऋ0 1/164/4-5

वही नादात्मिका वाक् परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूपों में प्रसिद्ध है । अपने मूल-स्रोत में वाक् परा है । जब वह सूक्ष्म रूप से हृदयगत है तब वह पश्यन्ती है, क्योंकि उस अवस्था में वह केवल योगियों द्वारा ही जानी जा सकती है । जब वह हृदय के मध्य में उत्पन्न होकर स्पष्ट तथा ज्ञातव्य हो जाती है तब मध्यमा है । जब वह तालु, कण्ठ, ओष्ठ आदि अवयवों से बहिर्गत होती है, जब वैखरी कही जाती है ।[1] वाणी के ये चतुर्विध रूप एक मनुष्य में वाणी के प्रकटी - करण की चार अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

एक अन्य मतानुसार इला, सरस्वती तथा भारती के तीनों लोकों के सम्बन्ध को भिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है । वाक् रूप में इला का अर्थ पार्थिव ज्ञान से है जो जीविकोपार्जन में सहायता प्रदान करता है । अन्तरिक्ष स्थानीय वाक् के रूप में सरस्वती धर्मनिष्ठा के ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है । भारती स्वर्गीय वाणी का ज्ञान है जो निर्वाण लाता है ।[2]

सरस्वती पौराणिक काल में महालक्ष्मी तथा दुर्गा के साथ त्रिक् बनाती है । यहाँ पार्वती के स्थान पर दुर्गा को प्रदर्शित किया गया है । जो दुर्गा शक्ति की अवतार है । सामान्यत: वैदिकेतर काल में लक्ष्मी ही त्रिक् बनाती हैं परन्तु पुराणों में कहीं-कहीं महालक्ष्मी को लक्ष्मी के स्थान पर रखा गया है । यहाँ महालक्ष्मी को लक्ष्मी के अर्थ से भिन्न है । यह महालक्ष्मी परमात्मा के समान

1- परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चत्वारीति ।

- - - - - - - - - - - - - - - - बहिर्निर्गच्छति

तदा वैखरी इत्युच्यते ", विल्सन-भाष्य , वही 1/164/45

2- डा0 सूर्यकान्त पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ0 128

स्त्री - शक्ति की बोधिका है तथा इसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सरस्वती, अम्बिका आदि की उत्पादिका माना गया है ।[1] ऋग्वेद के एक मन्त्र में स्पष्ट रूप से वाणी के चार रूप बताये गये हैं ।

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणाये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाच मनुष्या वदन्ति ।।[2]

वाक् के चार पाद हैं, वे गूढ़ हैं और अंधकारमय हैं । उसे मनीषिगण ही जान सकते हैं । धरती के मनुष्य वाक् तुरीय अर्थात् चतुर्थ पाद को ही समझ सकते हैं तथा बोल सकते हैं ।

पौराणिक युग में सरस्वती को वाक् वाग्देवी तथा वाग्रूप स्वीकार किया गया है । यही सरस्वती को ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई बताया गया है अतएव ब्रह्मा वाग्रूप सरस्वती का स्वामी है ।

ऋग्वेद में वाक् वाणी का मानवी रूप हैं, जिसके द्वारा ज्ञान की किरण मनुष्य तक पहुँची । इसकी सृष्टि देवों ने की इसी कारण वाक् को दिव्य तथा कामधेनु कहा गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों में वाक् का दिव्यत्व अत्यन्त निखरा हुआ है । यह वेदों की माँ और विश्व की जननी हैं । इससे वाक् की शक्ति तथा प्रभुता का अनुमान लगाया जा सकता है । शतपथ ब्राह्मण में विश्व की उत्पत्ति प्रजापति तथा वाक् की सहायता से बतायी गयी है ।

1- ब्रह्माण्ड पुराण 4/40/5

2- ऋ0 1/164/4-5

इस प्रकार वाक् प्रजापति रूप है । प्रजापति मे अलग होने पर इसकी स्वतन्त्र सत्ता है । सृष्टि कर्त्ता की इच्छा ही वाणी रूप मे व्यक्त होती है । इसी प्रकार वाणी के चारों पाद वस्तुत: एक है । पृथ्वी पर जो वाणी बोली जाती है, उसका नाम वैखरी है ।

सरस्वती देवता से सम्बन्धित स्तोत्र - ऋग्वेद में सरस्वती से सम्बद्ध अनेक स्थलों पर स्तोत्र उपलब्ध हैं ।[1] शतपथ ब्राह्मण, कौषीतकी ब्रा0, तैत्तिरीय ब्रा0, ऐतरेय ब्रा0, ताण्ड्य ब्रा0, गोपथ ब्रा0, साभविधान ब्रा0 इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों में सरस्वती नाम से सम्बन्धित कुछ वाक्य प्राप्त है । 'सरस्वती रहस्योपनिषद्' में सरस्वती के स्तोत्र हैं । देवीभागवत[2] पु0, ब्रह्मवैवर्त पु0[3], वामन पु0[4], विष्णु-धर्मोत्तर पु0[5], ब्रह्म पु0, स्तोत्रार्णव: इत्यादि में सरस्वती से सम्बन्धित स्तोत्र हैं ।

नर्मदा- यह नदी आज भी अपने नाम से जानी जाती है । यह म0 प्र0 के अमर - कण्टक से निकलकर भड़ोच के पास खम्भात की खाड़ी में गिरती है । इस नदी का समुद्र से जहाँ संगम हुआ है उसे 'नर्मदाउदधि-संगम' कहा जाता है । यह संगम एक तीर्थ है । है ।[6] नर्मदा का विस्तृत वर्णन स्कन्द पु0 के आवन्त्य खण्डान्तर्गत रेवा खण्ड में

1- ऋग्वेद 10/125, 6/61, 7/95, 1/3, 2/41, 8/21 इत्यादि

2- देवी भा0, स्कन्ध 9, अ0, 2,7

3- ब्रह्मवैवर्त पु0, प्रकृति खण्ड, अ0 2

4- वामन पु0, अ0 32

5- विष्णुधर्मोत्तर पु0, खण्ड 3, अ0 64

6- मत्स्य पु0 , अ0, 193

वर्णित है । नर्मदा का उत्पत्ति स्थान वंशगुल्म नामक तीर्थ है ।[1] शंकराचार्य द्वारा रचित नर्मदाष्टक प्राप्त है ।

<u>सरयू</u> - परम पावन अयोध्या नगरी इसी तट पर है ।[2] 'मिलिन्द पन्ह'[3] के प्रमाण से यह शरभू है । कुमायूं की पर्वत श्रेणी से प्रकट होती है । काली नदी से मिलने पर आगे नीचे यह सरयू नदी कहलाती है । घाघरा के अतिरिक्त इसे देवा भी कहते हैं ।[4] महाभारत[5] में इसका उद्गम मानस - सरोवर बताया गया है । यह स्पष्ट भी कर दिया गया है कि कैलास की ओर जाती हुई गंगा को वशिष्ठ-जी मानस सरोवर में ले आये । वहाँ आते ही गंगा जी ने सरोवर का बांध तोड़ दिया । उससे जो स्रोत निकला वही सरयू है । टालेमी[6] ने सरयू को सरबेज और अलबेरूनी[7] ने सरवा कहा है । काशिका[8] में सरयू के जल को सरवा कहा गया है । अयोध्या पहुंचने के पहले जहाँ सरयू घाघरा से मिली है । गोंडा जिले में वही उत्तर पूर्व रेलवे का सरयू स्टेशन है ।

<u>कावेरी</u>- यह दक्षिण भारत की एक नदी है । कुर्म में ब्रह्मगिरि पर्वत पर स्थित चन्द्रतीर्थ इसका उद्गम स्थल है । इसका वर्णन राइस महोदय ने भी किया है ।

1- महाभारत वन प० अ० 85/9

2- रामा० बाल, अ० 24

3- मिलिन्द पन्ह 4, 1, 35 । 4- ज्या० डिक्श० - 'डे'

5- ऐज डेस्क्राइब्ड इण्डिया-टालेमी मैक्रिण्डले - पृ० 99

6- ज्य० आफ ऐ० मेडी० इ० पृ० 43 सरकार

7- काशिका, 6/4/174

यह एक उत्तम तीर्थमय नदी है । इसमें स्नान करने से सहस्रों गोदान का फल बताया गया है । गोदान के समय इस पवित्र नदी का स्मरण पुण्यदायक है । कावेरी का उद्गम विन्ध्य भी बताया गया है ।

सिन्धु - यह नदी वेदमन्त्रों में भी बहुत विख्यात है । ऋग्वेद के मन्त्र में वर्णित है कि आर्यावर्त की नदियों में अतिशय वेग रखने वाला सिन्धु नाम का महानद है । 'त्रि:सप्त सस्रा नद्या:' {10/64/8} आदि अन्य वाक्यों में भी इन इक्कीस नदियों का उल्लेख मिलता है । ऋग्वेद के नदी सूक्त के ऋचा 10/75/2 में सिन्धु का मार्ग 10/75/3 में सिन्धु के शब्दायमान होने का, 10/75/4 में सिन्धु नदी का इक्कीस नदियों के पुत्र और राजा के रूप में चित्रण, 10/75/5 में गंगा, यमुना, शतुद्रि, मरूद्‌धा, आर्जीकीया और सुषोमा इन सात नदियों का उल्लेख है । सप्तसिन्धु का सिन्धु शब्द सिन्धु का वाचक नहीं अपितु नदी सामान्य का वाचक है । इस सूक्त की छठी ऋचा 10/75/6 में सिन्धु का नामोल्लेख हुआ है । इसमें त्रिष्टामा सुसर्तु एसा, कुभा गोमतीक्रमु इन सात नदियों का साक्षात या परम्परा से सिन्धु नदी से सम्बद्ध अवश्य है । इस सूक्त के सप्तम और अष्टम ऋचाओं में सात नदियों में सिन्धु का आकर्षक वर्णन है ।

1- पतरेदव्दरूणो यातवे पथ: यद्वाजानभ्य द्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ।।
{ऋ0 -10/72/12 }

2- इमे मे गंगे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परूष्णया ।
असिक्नया मरूद्‌वृधे वितस्त यार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया ।।
{ ऋ0-10/75/5}

गोदावरी[1] - यह दक्षिण भारत के नासिक जिले में त्रयम्बक ज्योतिर्लिंग के समीप से निकलकर समुद्र में गिरती है। त्रयम्बक का वर्णन सौर पु०[2] और ब्रह्म पु०[3] में हुआ है जो महादेव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है।[4] ब्रह्मवैवर्त में वर्णित है कि स्त्री रूप गोदावरी ने योग के द्वारा अपने शरीर को गोदावरी नदी के रूप में परिणत कर लिया।[5] पाणिनी के सूत्रवार्तिक में इसका नाम आया है।[6] इसे अग्नि का उत्पत्ति स्थान बताया गया है।[7]

इन उपर्युक्त नदियों के अलावा गोमती, गण्डकी, कृष्णा इत्यादि नदियों का वर्णन मिलता है।

1- ब्रह्मवैवर्त पु०, 1/26/66, 2/64/58, 3/28/26, 4/129/46,

2- सौर पु०, अ०-69

3- ब्रह्म पु०, अ० 77/79

4- शिव पु० 1, अ० 54, वराह पु०, अ० 79, 80

5- ब्रह्म वै०, 1/10/130

6- पाणिनि०, 5/4/75

7- महाभारत वन पर्व, 222/24

द्वितीय अध्याय

1- शक्ति-स्तोत्रों के प्रकार

2- नख-शिख वर्णन

3- शक्ति के अवदानोल्लेख

द्वितीय अध्याय

प्रथम अध्याय में शक्ति की कल्पना - वैदिक काल से वर्तमान काल तक और शक्ति विविध रूपों का अध्ययन किया गया है । इस शक्ति की स्तुति में प्रयुक्त किये गये स्तोत्रों के अनेक प्रकार हैं उनमें से कुछ शक्ति स्तोत्रों के प्रकार इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है ।

शक्ति स्तोत्रों के प्रकार

कवच - देवपूजा के प्रमुख पंचांग स्तोत्रों में प्रथम अंग कवच है । स्मार्तों के गृहों में देवी की दक्षिणमार्गी पूजा की सबसे महत्वपूर्ण स्तुति चण्डीपाठ है जिसे दुर्गा - सप्तशती भी कहते हैं । इसके पूर्व एवं पीछे दूसरे पवित्र स्तोत्रों का पाठ होता है । ये कवच, कीलक और अर्गला स्तोत्र हैं, जो मार्कण्डेय और वराह पुराणो से लिये गये हैं । कवच में कुल 50 पद्य हैं तथा कीलक में 14 । इसमें शस्त्र रक्षक लोहकवच के तुल्य ही शरीर के अंगों की रक्षात्मक प्रार्थना की गयी है । कवच दशमहाविद्याओं के भी प्राप्त होते हैं ।

किसी धातु की छोटी डिबिया को भी कवच कहते हैं, जिसमें भुर्जपत्र पर लिखा हुआ कोई तान्त्रिक यन्त्र या मन्त्र बन्द रहता है । पृथक - पृथक देवता तथा उद्देश्य के पृथक - पृथक कवच होते हैं । इसको गले तथा बाँह में रक्षार्थ बाँधते हैं । मलमासतत्व में कहा है -

यथा शस्त्रप्रहाराणां कवचं प्रतिवारणम् ।

तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।।

जैसे शस्त्र के प्रहार से चर्म अथवा धातु का बना हुआ कवच (ढाल) रक्षा करता है, उसी प्रकार दैवी आघात से (यान्त्रिक शक्ति) कवच रक्षा करता है ।

ब्रह्मवैवर्त महापुराण में प्रकृतिखण्ड में नारद - नारायण संवाद में ब्रह्माण्ड मोहन कवच नाम 67 वाँ अध्याय है । ब्रह्मवैवर्त में 2 खण्ड 67 वें अध्याय में प्रथम श्लोक से प्रारम्भ होकर 27 वें श्लोक तक है । नारद नारायण से कहते हैं :-

इस कवच के धारण करने से, सभी तीर्थयात्रा और पृथ्वी का भ्रमण करने से जो फल मिलता है, वही फल मिलता है । कवच के सिद्ध होने पर पुत्र-पौत्र आदि होते हैं और घर में लक्ष्मी स्थिर रहती है ।

कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्नसंशय: ।
स्थाने च सर्वतीर्थानां, पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ।।
यत्फलं लभते लोकस्तदेव धारणान्मुने ।
पंचलक्ष जपेनैव सिद्धमेतद् भवेन्मुने ।।[1]

इस पुराण के इसी अध्याय में दुर्गा नाम है जैसे - 'श्रृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गाया: कवचं शुभम्' । इस अध्याय के अन्त में दुर्गतिनाशिनी कवच है । ब्रह्मवैवर्त में महागणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में दुर्गतिनाशिनी कवच नाम से एक चौथा अध्याय ही है ।

1- ब्रह्मवैवर्त पु0 2/67/16-19

ब्रह्मवैवर्त में तृतीय खण्ड में 39 वें अध्याय में 15 वें श्लोक से 23 तक है । नारायण नारद से कहते हैं - सभी तीर्थ व्रतादि से जो फल प्राप्त होता है वही इसके धारण करने से होता है -

सुस्नात: सर्वतीर्थेषु, सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।

सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नर: ।।

इदं कवचमज्ञात्वा, भजेद् दुर्गतिनाशिनीम् ।

शतलक्षं प्रजप्तोऽपि, न मन्त्र: सिद्धिदायक: ।।[1]

दुर्गोपासना कल्पद्रुम के प्रारम्भ में दुर्गाब्रह्मकवच है । यह हरि-हर-ब्रह्म विरचित देवी कवच है । वराह पुराण से दुर्गोपासना कल्पद्रुम से उद्धृत है । इस स्तोत्र के नित्य पाठ करने से प्रेतादि बाधा शान्त होती है -

ब्रह्मराक्षसवेताला:, कूष्माण्डाभैरवादय: ।

नश्यन्ति दर्शनादस्य,कवचे हृदि संस्थिते ।।

मानोन्नतिर्भवेद् राजस्तेजोवृद्धिकरंपरम् ।

यशसा वर्द्धते सोऽपि, कीर्तिमण्डित भूतले ।।

देहान्ते परमं स्थानं, यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।

प्राप्नोति पुरूषो नित्यं, महामाया प्रसादत:।।[2]

1- ब्रह्मवैवर्त पुराण - 3/39/19,22

2- दुर्गोपासनाकल्पद्रुम, 52, 53, 54 श्लोक वराहपुराण से उद्धृत

कीलक स्तोत्र - कीलक का तात्पर्य है कि कील ठोकना । सप्तशती के इस स्तोत्र के फलश्रुति में इस स्तोत्र का महत्व वर्णित है,जोइस कीलक मन्त्र को पढ़ता है और निरन्तर जप में तत्पर रहता है उसका कल्याण होता है ।[1] सर्वप्रथम देवी पाठ करने के लिये पवित्र होना चाहिये और इस कीलक स्तोत्र का समाख्यान करने के पश्चात सप्तशती का स्तोत्र पढ़ना चाहिए । कील को तोड़कर निष्कील करके देवी स्तुति करने पर भगवती अभीष्ट फल देती हैं ।[2]

अर्गला स्तोत्र - एक छोटा सा दुर्गा स्तोत्र है । स्मार्तों के दक्षिणमार्गी शाखा के अनुयायी अपने घरों में साधारणत: यन्त्र के रूप में या कलश के रूप में देवी की स्थापना या पूजा करते हैं । पूजा में यन्त्र पर कुंकुम तथा पत्र पुष्प चढ़ाते हैं किन्तु देवी की पूजा का सबसे महत्वपूर्ण भाग है 'चण्डीपाठ' करना तथा उसके पूर्व एवं पश्चात् दूसरे पवित्र स्तोत्रों का पढ़ा जाना उनके नाम हैं, कीलक, कवच तथा अर्गला स्तोत्र । 'अर्गला स्तोत्र' मार्कण्डेय और वाराह पुराण से लिया गया है -

जय त्वं देवि चामुण्डे ! जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि ! कालरात्रि ! नमो स्तुते ।।
जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा-स्वधा नमो स्तुते ।।[3]

1- सर्वमेतद् विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ।
सोऽपि क्षममवाप्नोति सततं जप्य तत्पर: ।। - सप्तशती कीलक स्तोत्र श्लोक- 2

2- प्रथमं पठते देव्या ह्यग्रे भूत्वा शुचिस्तथा ।
कीलकेयं समाख्याता पश्चात सप्तशती स्तुति: ।।
निष्कीलकं तत: कृत्वा ख्याता निष्कील-कारणात् ।
देव्याश्चैव महाभक्त्या तेनाभीष्टफला भवेत् ।। - सप्तशती कीलक स्तोत्र,श्लोक 15, 16

3- मार्कण्डेय पु0 अर्गला स्तोत्र - 1, 2

अर्गला से पापनाश, कीलक से चण्डी पाठ की फलोपयोगिता और कवच पाठ से सब विघ्ननाश होते हैं । अर्गला और कीलक स्तोत्र में ध्यान एक ही दिया गया है, वह ध्यान श्रीशाकम्भरी देवी का है ।

<u>कर्पूर स्तोत्र</u> - इस स्तोत्र का नाम कर्पूर स्तोत्र इसलिये पड़ा कि इस स्तोत्र के प्रारम्भ में कर्पूर शब्द है । कर्पूर स्तोत्र में देवी के स्वरूप का वर्णन होता है । 'कर्पूरस्तोत्र' यों तो दशमहाविद्याओं के सम्बन्ध में भी उपलब्ध है किन्तु भगवती दक्षिणाकाली का कर्पूरस्तोत्र ही विशेषतया प्रचलित है । यह स्तोत्र और इसका विधान 'महाकालसंहिता' नामक दुर्लभ ग्रन्थ में लिखा हुआ मिलता है । इस स्तोत्र के रचयिता स्वयं भगवान महाकाल माने जाते हैं, जिससे इसे और भी गौरव प्राप्त है । 'कर्पूरादि स्तोत्र' का नाम इतना प्रसिद्ध है कि शाक्त-साधकों में प्रायः सभी व्यक्ति इसे जानते हैं । साथ ही यह लोकप्रिय इतना है कि इसके आगे कवच, हृदय सहस्रनाम जैसे स्तोत्रों के प्रति लोग कम ध्यान देते हैं और इसी के पुरश्चरण में संलग्न हो जाते हैं । 'कर्पूरादि स्तोत्र' की लोकप्रियता का मूल कारण यही प्रतीत होता है कि इसके पाठ करने से पाठ-कर्त्ता साधक की मनोकामना अवश्य पूरी होती है । श्रीकाली कर्पूर स्तोत्र का प्रथम श्लोक निम्न है -

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तम् ।
बीजं ते मातरेतत् त्रिपुरहरवधु ! त्रिः कृतं ये जपन्ति ।।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचम् ।
स्वच्छंदं ध्वांत धाराधररुचिरुचिरे ! सर्वसिद्धिंगतानाम् ।।

काली जी के बाये हाथ में छिन्नमुण्ड और कृपाण शोभित होता है । त्रिभुवन पापविनाशिनी माता के दाये हाथ में अभय वरदान है । जो दक्षिणा - काली का नाम जपता है, वह शिव की सर्वसिद्धियाँ प्राप्त करता है -

उर्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं ततो धः,

सत्ये भीति वरं च त्रिजगदघ हरे । दक्षिण कालिके च ।

जपत्वेतन्नाम ये वा तव मनु विभवं भावयन्त्येतदम्ब ,

तेषामष्टौ करस्था: प्रकटितरदने । सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ।[1]

प्रात: स्तोत्र - वह स्तोत्र है जो प्रात: काल पाठ किया जाता है । प्रात: स्मरण किये जाने के कारण ही इसे प्रात: स्तोत्र कहते हैं । प्रात: स्तोत्र सभी महाविद्याओं के और अन्य देवियों के भी पाये जाते हैं ।

मैं प्रात: काल संसार के भयों को हरने वाली देवेश्वरी काली का स्मरण करता हूँ, जो नये मेघों की रंग जैसी श्याम-वर्णा है, जिनके नेत्र दया से रसपूर्ण हैं जिनकी भौहें तिरछी है, सूर्य, चन्द्र, अग्नि जैसे जिसके नेत्र हैं और जो नर - मुण्डों की माला धारण किये हैं ।

प्रात: स्मरामि भवभीतिहरां सुरेशीं कालीं कृपाद्रनयनां नव मेघवर्णाम् ।

सूर्येंदु वाह्निनयनां भृकुटीकरालां सृक्कप्रवाह रुधिरां नरमुण्डमालाम् ।।[2]

1- महाकालविरचित श्रीकाली कपूर स्तोत्र, श्लोक - ।

2-दशमहाविद्या स्तोत्र संग्रह - श्रीकालीस्तवमंजरी । - पंचश्लोक प्रात: स्मरणम् ।

कस्तूरिकाकृतमनोज्ञललामभास्वदर्धेन्दु-मुग्ध-निटिलाचल नील केशीम् ।

प्रालम्बमाननवमौक्तिकहारभूषां, प्रात: स्मरमि लीलतां कमलायताक्षीम् ।।[1]

प्रात: स्मरामि ललितावन्दनारविन्दं, बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिक शोभिनासाम्

आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं, मन्दस्मितु मृगमदोज्जवल भालदेशम् ।।[2]

हृदय स्तोत्र - जिस प्रकार शरीर के अंगों में हृदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग {प्राण} है उसी प्रकार स्तोत्रों में हृदय स्तोत्र प्राण-तत्व के समान है और सर्वोत्तम है ।

हृदय-कमल के मध्य में विराजमाना, ब्रह्मा, से आत्मा का ऐक्य कराने वाली त्रिकोणस्थिता माता मेरे हृदय की रक्षा करें । अवर्ण-माला, शक्तिवर्णमाला - स्वरूपा, नित्या और अनित्या, तत्व-व्यापिनी वे निराकारमय है -

हृदयाम्बुज-मध्यस्था ब्रह्मात्मैक्य-प्रदायिनी ।

त्रिपुराम्बा त्रिकोणस्था पातु मे हृदयं सदा ।।

अवर्ण-मालिका शक्तिवर्णमाला-स्वरूपिणी ।

नित्याऽनित्या तत्वगा सा निराकार-मयान्विता ।।[3]

जगज्जननी श्रीविद्या सृष्टि, स्थिति, संहार की ईश्वरी हैं, उस महा - त्रिपुरसुन्दरी ललिता को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ -

---

1- दशमहाविद्या स्तोत्र संग्रह - श्रीकालीस्तवमंजरी -श्रीत्रिपुरसुन्दरी प्रात: स्मरण

2- " " " - श्रीललिता प्रात: स्तोत्र पंचम्

3- महातन्त्र, श्रीललिता हृदय स्तोत्र - श्लोक - ।

श्रीविद्यां जगतां धात्रीं सर्गस्थिति - लयेश्वरीम्,

नमामि ललितां नित्यं महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।[1]

त्रिपुरसुन्दरी का 'हृदय' सभी कामनाओं को देने वाला, देवताओं के लिये भी अति दुर्लभ बड़ा रहस्यमय है -

'एतत् त्रिपुरसुन्दर्या हृदयं सर्वकामदं-महारहस्यं परमं दुर्लभं देवतैरपि'[2]

मानस पूजा स्तोत्र - इन स्तोत्रों में शक्ति की पूजा मन से अर्थात् मानसिक रूप से की जाती है । 'पराऽपरा - पूजा' हिन्दुओं की मध्यम श्रेणी की पूजा प्रणाली है । यह समुन्नत साधकों द्वारा ही की जा सकती है । इसमें पूजन 'अन्तः' (मानस पूजा) और बाह्य (बहिर्यजन) द्विविध रूप में होता है । इसके अभ्यास से साधक क्रमशः उत्तम श्रेणी की पूजा का अधिकारी बन जाता है । इस प्रकार हिन्दुओं की पूजा-प्रणाली में 'मानस - पूजा' का विशेष महत्व है । वस्तुतः पूजा की सफलता 'मानस-पूजा' में पारंगत होने पर ही निर्भर करती है जितने शीघ्र सहज भाव से 'मानस-पूजन' करने में साधक समर्थ बनेगा, उतने ही शीघ्र पूजा की सिद्धि उसे प्राप्त होगी ।

शंकराचार्य विरचित 'श्रीभगवती मानस-पूजा स्तोत्र' का उदाहरण निम्न है -

कनकमयवितर्दिशोभमानम्, दिशिदिशिपूर्णसुवर्णकुम्भयुक्तम् ।

मयि कृपया हि समर्चनं गृहीतुम, मणिमयमण्डपमध्यमे हि मातः ।। -श्लोक 2

1- रूद्रयामल, ईश्वर - पार्वती संवाद श्रीत्रिपुर सुन्दरी हृदय-स्तोत्र, श्लोक - 3

2- " " " " " " फलश्रुति श्लोक - 1

इस श्लोक में भक्त भगवती का मानसिक पूजा के द्वारा भगवती का आवाहन करता है । श्री शंकराचार्य द्वारा ही रचित 'श्रीत्रिपुरसुन्दरीमानसपूजा - स्तोत्र' का उदाहरण -

कस्तूरिका श्यामलकोमलांगी

कादम्बरीपानमदालसांगीम् ।

वामस्तनालिंगितरत्नवीणां

मातंगकन्यां मनसा स्मरामि ।। - श्लोक - 8

<u>अपराधक्षमापन स्तोत्र</u> - अपराधक्षमापन स्तोत्र जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि भक्त अपने अपराधों के क्षमा हेतु अपने इष्ट की विविध रूपों से भावपूर्ण स्तुति करता है । 'देव्यपराध क्षमापनस्तोत्र' शंकराचार्य द्वारा रचित है । इसमें 12 श्लोकों में भगवती से विविध प्रकार से क्षमा करने के लिये प्रार्थना की गयी उदाहरणार्थ -

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहव: सन्ति सरला:

परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुत: ।

मदीयोऽयं त्याग: समुचितमिदं नो तव शिवे

कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति ।। श्लोक - 3

इसमें भक्त देवी से भावविह्वल होकर कहता है कि पुत्र तो कुपूत हो सकता है लेकिन माता कुमाता नहीं हो सकती । यह सत्य है, इस लोक में देखा जाता है कि मातायें अपने पुत्र को नहीं छोड़ती हैं । भक्त उसी प्रकार भगवती से न छोड़ने के लिये प्रार्थना करता है ।

फलाकांक्षा के अभाव में भी लोग इस स्तोत्र का पाठ करते हैं -

न मोक्षस्याकांक्षा न च विभववांछापि च नमे -

विज्ञानापेक्षाशशिमुखि सुखेच्छापि न पुन: ।

अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै

मृडानी रूद्राणी शिव शिव भवानीति जपत: ।। श्लोक - 8

इस स्तोत्र में भक्त संसार के सारे सुखों का त्यागकर केवल भगवती के विभिन्न नामों को मृत्युपर्यन्त जपते रहने की प्रार्थना करता है ।

मंगल स्तोत्र - इन स्तोत्रों में स्तुति कर्ता भगवती से कल्याण के लिये प्रार्थना करता है । देवीभागवत के 9 वें स्कन्ध के 47 वें अध्याय में 26 वें श्लोक से लेकर 37 वें श्लोक तक मंगल स्तोत्र हैं । देवी के इस मंगल स्तोत्र का जो पाठ करता है और सुनता है उसका केवल मंगल होता है, अमंगल नहीं, उसके पुत्रों और पौत्रों की वृद्धि होती है, जैसा कि देवीभागवत के इस मंगल स्तोत्र में वर्णित है -

देव्याश्च मंगलस्तोत्रं य: शृणोति समाहित: ।

तन्मंगलंभवेत्तस्य न भवेत्तदमंगलम् ।।

वर्धते पुत्र पौत्रैश्च, मंगल च दिने दिने ।।[1]

इस स्तोत्र की भाषा सरल और संगीतमय है और भगवती का अपने अन्त: - करण से नाम-मात्र के सम्बोधन से भी मंगल की कामना की गयी है -

मंगलाधिष्ठातृदेवि मंगलानां च मंगले । संसारमंगलाधारे मोक्षमंगलदायिनि ।

1- देवीभागवत नवम स्कन्ध, अ0 47, श्लोक 37

प्रथमे पूजिता देवि शिवेन सर्वमंगला । द्वितीये पूजिता स व मंगलेन ग्रहेण च ।

तृतीये पूजिताभद्रा मंगलेन नृपेण च । चतुर्थे मंगले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता ।।[1]

मंगल - स्तोत्र के समान कल्याणकारी स्तोत्र शंकराचार्य का 'कल्याणवृष्टिस्तवः' है, जिसमें भगवती से कल्याण की वर्षा करने की प्रार्थना की गयी है -

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि -

र्लक्ष्मीस्वयंवरणमंगलदीपिकाभिः ।

सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले

नाकारि किं मनसि भाग्यवतां जनानाम् ।।[2]

<u>रहस्यत्रय</u> - तीन रहस्य हैं - प्राधानिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य और मूर्तिरहस्य । प्राधानिक - रहस्य में अनाख्येय इस सृष्टि के सर्जन, पालन तथा संहार में तत्पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश यदि शक्तिमान हैं तो उनकी शक्तियां महासरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली को माना गया है । 'दुर्गासप्तशती' में इस रहस्य का वर्णन इस प्रकार है -

शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।

बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ।।

महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।

आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा सुरेश्वरी ।।

महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।

एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ।।[3]

1- देविभागवत नवम स्कन्ध, अ0 47 श्लोक - 30, 33, 34

2- शंकराचार्य का कल्याणवृष्टि स्तवः, श्लोक - ।

वैकृतिक रहस्य में दुष्टों के दलन हेतु जगदम्बा भगवती के अनेक स्वरूपों का वर्णन किया गया है, जैसे मधु-कैटभ-बध, महिषासुर-बध, शुम्भ-निशुम्भ-बध, रक्तबीज-बध इत्यादि की प्रवर्तिका आदिशक्ति यहाँ पूजित होती रही हैं। सप्तशती में यह रहस्य वर्णन इस प्रकार है -

त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ।।
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूताऽमितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ।।
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप !।
पूजयेत् सर्वदेवानां स लोकानां प्रभुर्भवेत् ।।[1]

मूर्ति-रहस्य में भगवती के विविध स्वरूपों का वर्णन है, "इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याऽहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॐ ।।" इत्यादि तथा देवताओं के लिये सौम्यस्वरूपा भगवती का ध्यान यहाँ किया जाता है। सप्तशती में मूर्ति-रहस्य का वर्णन इस प्रकार है -

जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित् त्वया ।।
व्याख्यानं दिव्यमूर्तिनामभीष्टफलदायकम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ।।[2]

1- दुर्गासप्तशती वैकृतिक रहस्य श्लोक 1, 7, 13

2- सप्तशती मूर्ति-रहस्य, श्लोक 22, 23

उपर्युक्त तीनों रहस्यों के ज्ञान से पापक्षय एवं पुण्योदय होता है, जो साधना का सोपान है ।

ध्यान - यह स्तोत्र का एक प्रकार है जिसमें देवी के स्वरूप का वर्णन होता है । इसमें देवी के अंग, वस्त्र, आसन, वाहन, सभी देवियों और दशमहाविद्याओं का ध्यान प्राप्त होता है ।

कुंजिका - जिस प्रकार कुंजी द्वारा ताला खोलने से घर का द्वार खुल जाता है उसी प्रकार कुंजिका स्तोत्र का पाठ करने से साधना का द्वार खुल जाता है । शक्ति स्तोत्रों में ताले की कुंजी की तरह ही यह स्तोत्र महत्वपूर्ण है । सप्तशती के इस कुंजिका स्तोत्र में कहा गया है कि कवच, कीलक, अर्गला, रहस्य, सूक्त, ध्यान, न्यास, अर्चन इत्यादि किसी के पाठ करने से दुर्गापाठ का फल प्राप्त नहीं होता, केवल कुंजिका पाठ से ही दुर्गापाठ का फल प्राप्त होता है ।[1]

अष्टक - अष्टक शक्ति स्तोत्र का वह प्रकार है जिसमें प्राय: श्लोकों की संख्या आठ होती है । प्रकीर्ण शक्तियों (नदियों) का भी अष्टक प्राप्त होता है जैसे गंगा, यमुना, नर्मदा इत्यादि ।

अष्टक स्तोत्र के उदाहरण -

(1) वाल्मीकि रचित गंगाष्टक

(2) कालिदास रचित दो गंगाष्टक

(3) शंकराचार्य रचित गंगाष्टक

(4) शंकराचार्य रचित दो यमुनाष्टक

1- कुंजिका पाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
श्री रूद्रयामल गौरीतन्त्र के शिवपार्वती संवाद के कुंजिका स्तोत्र में श्लोक 3

§5§ शंकराचार्य रचित नर्मदाष्टक

§6§ शंकराचार्य रचित श्रीमणिकर्णिकाष्टक

§7§ शंकराचार्य रचित अम्बाष्टक

§8§ शंकराचार्य रचित त्रिपुरसुन्दर्यष्टक

§9§ सत्यज्ञानानंदतीर्थ रचित गंगाष्टक

§10§ नीलतन्त्र में ताराष्टक

§11§ स्कन्दपुराण में शीतलाष्टक

§12§ पद्म पुराण में संकटानामष्टक

§13§ अमरदास नामक कवि द्वारा रचित भगवत्यष्टक

§14§ वाराहीनिग्रहाष्टक

§15§ वाराह्यनुग्रहाष्टक

§16§ इन्द्रकृत महालक्ष्म्यष्टक

§17§ अन्नपूर्णाष्टिक

इस अन्नपूर्णाष्टिकस्तोत्र में देवी के विविध स्वरूप को बताया गया है -

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलदोषपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।। - श्लोक - ।

स्कन्द पुराण शीतलाष्टक स्तोत्र में शीतला देवी को जगत्माता, जगत्पिता और जगत्-धात्री कहा गया है -

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता ।

शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नम: ।। - श्लोक - ।2

शङ्कराचार्य के इस त्रिपुरसुन्दरी - अष्टक में देवी को मेघ के समान श्याम वर्ण वाली बताया गया है -

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्बकादम्बिनीं

नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनी सेविताम् ।।

नवाम्बुरूहलोचनाभिनवाम्बुदश्यामलां

त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ।। - श्लोक - ।

शतक - भारतीय साहित्य आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत रहा है, इसी पर्यावरण में ही शतक-काव्यों-स्तोत्रों का विकास हुआ । स्तोत्र-शतकों की आत्मा काव्य का ही अनुकरण करती है । शतक-स्तोत्रों में भी अनेक रूपों में भावों की अभिव्यक्ति हुयी है । इन स्तोत्रों का मूल उद्गम स्रोत वैदिक ऋषियों की तपस्या तथा देवार्चना ही है । संस्कृत काव्यविधाओं में शतक-स्तोत्रों का स्थान गीतिकाव्य के अन्तर्गत ही प्रतिष्ठित होता है ।

शतक-काव्य हमें मुख्यत: तीन रूपों में ही प्राप्त होते हैं, जिनमें धार्मिक, नैतिक तथा श्रृंगारिक की परिगणना की जाती है । श्रृंगारिक शतकों में श्रृंगार की भिन्न - भिन्न अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है । रमणी के सौन्दर्य का जितना सुन्दर तथा स्वाभाविक विकास इन काव्यों में हुआ उतना अन्यत्र पाना दुर्लभ प्रतीत होता है । श्रृंगार के क्षेत्र में भारतीय मनीषियों की दृष्टि केवल लौकिक

धरातल तक ही नहीं सीमित रही अपितु दिव्य श्रृंगार की भी झांकी प्रस्तुत करने वाली है । अनेक आदि शक्ति देवियों की आराधना में कवियों ने दिव्य श्रृंगारिक काव्य रचे हैं । शतक स्तोत्रों में अधिकांश शतक नाम से उल्लिखित है किन्तु ऐसे भी हैं जो शतक नाम से उल्लिखित नहीं हैं किन्तु उनकी भी गणना शतक काव्यों में ही की जाती है ।

शतक स्तोत्र के उदाहरण - चतुः शतक, अध्र्य शतक, आनन्दवर्धन कृत देवीशतक बाणभट्ट कृत चण्डीशतक इत्यादि ।

ध्वन्याचार्य आनन्दवर्धन के देवीशतक काव्य में हृदयपक्ष की कमी आलोचकों को बेहद खटकती है । सरस्वती के चतुष्ट्य प्रयोग से यमकालंकार का यह सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस दुर्बोध काव्य का अर्थ समझना पाठकों के लिये टेढ़ी खीर होता है ।

रार स्वति-प्रसादं मे स्थिति चित्तसरस्वति ।

सरस्वति कुरु क्षेत्रकुरुक्षेत्रसरस्वति ।। - देवी शतक - 50

श्लोक का आशय है - हे सरस्वति, आप अतिशय (स्वति) प्रसाद को धारण कीजिये और चित्त रूपी समुद्र (सरस्वान्) में आप स्थिति कीजिये । शरीर (क्षेत्र) रूपी कुरुक्षेत्र में आप सरस्वती नदी के समान सर्वदा निवास करने वाली है ।

महिष-वध के अनन्तर उपद्रव शान्त हो जाने पर जब शिव और पार्वती उस घटना की बातें करने लगे तो देवी ने शम्भु का इस प्रकार परिहास किया -

मेरौ मे रौद्रश्रृंगक्षतवपुषि रूषौ नैव नीता नदीनां
भर्त्तारौ रिक्ततां यत्तदपि हितमभून्निः सपत्नोऽत्र कोऽपि
एतन्नो मृष्यते यन्महिषकलुषिता सर्वधुनि मूर्द्धिनमान्या
शम्भोर्भिद्यात हसन्ती पतिमिति शमिताऽराति रीतिरूमा वः ।।

महाकवि बाण विरचित चण्डीशतकम्, श्लोक 3।

इस पद्य में पति के प्रति सपत्नी को लेकर स्त्रीसुलभ व्यंगयोक्ति है - हे शम्भो ! आप जिसका इतना मान करके सिर चढ़ाये रहते थे वही महिष द्वारा कलुषित हो गयी है । साथ ही, इस पद्य 'अभून्निसपत्नोऽत्र कोऽपि' इस वाक्य से पति का सीधा नाम न लेने के भारतीय शिष्टाचार का भी पता चलता है ।

<u>अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र</u> - जिन स्तोत्रों में 108 नाम होते हैं उन्हे अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र कहते हैं । इस स्तोत्र के नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें 108 नाम होंगे । पुराणों में भी अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र पाये जाते हैं । जैसे - मत्स्य पु० के 13 वें अध्याय में है । इसमें देवी ने स्वयं कहा है कि इसके श्रवण से सभी पापों से मुक्ति मिलती है -

एतदुद्देशतः प्रोक्तं नाम्नामष्ट शतुत्तमम् ।
अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदयुदाहृतम् ।।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं वसति शिवपुरे ।।[1]

1- मत्स्य पु० 13/54, 55, 56

ऋषियों के पूछने पर देवी स्वयं 108 नाम बताती हैं । भगवती के नामों की परिगणना में कुछ नाम प्रसिद्ध और कुछ अप्रसिद्ध भी है । उदाहरण -

शिवकुण्डे सुनन्दात्वं नन्दिनी देविका तटे ।
रुक्मिणी द्वारवत्यां, तु राधा वृन्दावने वने ।।
देवकी मथुरायान्तु, पाताले परमेश्वरी ।
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी ।।
प्रयागे ललितादेवी, कामाक्षीगन्धमादने ।
मानसेकुमुदानाम, विश्वकाया तथाम्बरे ।।[1]

सभी दशमहाविद्याओं के अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र उपलब्ध होते हैं । उनके नामों में समानता है । श्रीललिताम्बिका दिव्याष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र का उदाहरण -

महामनोन्मनी शक्तिशिव - शक्तिशिव शंकरी ।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति स्वरूपिणी ।।
शान्त्यातीता कला नन्दा शिव माया शिवप्रिया ।
सर्वज्ञा सुन्दरी सौम्या सच्चिदानन्द निग्रहा ।।

भुवनेश्वरी अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र का उदाहरण -

1- मत्स्य पु० 13/38, 39, 27

ॐ महामाया महाविद्या महायोगा महोत्कटा ।
माहेश्वरी कुमारी च ब्रह्माणि ब्रह्मरूपिणी ।।
वागीश्वरी योगरूपा योगिनी कोटिसेविता ।
जया च विजया चैव कौमारी सर्वमंगला ।।

त्रिशती - इस प्रकार के स्तोत्रों में शक्ति के तीन सौ नामों का वर्णन होता है । 'त्रिशती' केवल ललिता देवी का ही प्राप्त होता है, इसके तीन भाग हैं पूर्व भाग नामावली और फलश्रुति । इस स्तोत्र में केवल 145 श्लोक हैं । त्रिशती को भी भी वही मान्यता प्राप्त है जो ललितासहस्रनाम को है । यह भी भगवान हयग्रीव और अगस्त्य का संवाद है । इसमें ललितात्रिपुरसुन्दरी के तीन सौ नाम पंचदशाक्षरी मंत्र के पन्द्रह अक्षरों से बने हैं । प्रत्येक अक्षर से बीस नामों की रचना हुई है । ललिता - सहस्रनाम के सदृश इसका भी श्रीविद्या से अभिन्न सम्बन्ध है -

ककाररूपा कल्याणी कल्याणगुणशालिनी ।
कल्याणशैलनिलया कमनीया कलावती ।।
एकाररूपा चैकाक्षर्येकानेकाक्षराकृतिः ।
ईकाररूपा चेशित्री चेप्सितार्थप्रदायिनी ।।
लकाररूपा ललिता लक्ष्मीवाणीनिषेविता ।।
ह्रींकाररूपा ह्रींकारनिलया ह्रींपदप्रिया ।
हकाररूपा हलधृक्पूजिता हरिणेक्षणा ।
सकाररूपा सर्वज्ञा सर्वेशी सर्वमंगला ।
हकारार्था हंसगतिर्हाटकाभरणोज्ज्वला ।।

1- ललितात्रिशतीस्तोत्र - 30, 34, 38, 42, 46, 49, 53, 59

सहस्रनाम - सहस्रनाम स्तोत्रों में शक्ति के हजार नामों का उल्लेख होता है। विष्णु सहस्रनाम सबसे प्राचीन है। उसी के अनुकरण पर अन्य सहस्रनाम स्तोत्र लिखे गये। दशमहाविद्याओं में सभी के सहस्रनाम स्तोत्र पाये जाते हैं। इनके अलावा प्राय: अन्य देवियों के भी सहस्रनाम स्तोत्र हैं। श्री बगला सहस्रनाम-स्तोत्र से उद्धृत निम्न नाम है -

पीताम्बर परीधानां पीनोन्नत पयोधराम् ।
जटामुकुट शोभाढ्यां पीतभूमि सुखासनां ।।
उग्रचण्डा चण्डचण्डा चण्डदैत्यविनाशिनी ।
चण्डरूपा प्रचण्ड च चण्डा चण्ड शरीरिणी ।।[1]

ॐ श्रीं तारा तुला तोतला च त्रैलोक्यविजया तति: ।
तारिणी तरुणसेव्या तपस्या च तपोमयी ।।
तपोगम्या तापसी च तीर्था तीर्थ परायणा ।
त्रींकार बीजनिलया तृतीया त्रिगुणात्मिका ।।[2]

कूर्म पुराण के पूर्वार्द्ध के 12 वें अध्याय में 62 वें श्लोक से प्रारम्भ होकर 199 वें तक 138 श्लोक है। उदाहरण -

---

1- प्रयाणतन्त्रे षोडश-सहस्रे विष्णुशंकर संवादे पीताम्बरा सहस्रनाम - स्तोत्रम्

2- महाकाल संहिता के श्री तारा खण्ड के श्रीमदुग्रताराक्रोधोपशमनं सहस्रनाम - स्तोत्र से उद्धृत

यश्चैतत्पठितस्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपत:

समाहितमना: सोऽपि सर्वपापै: प्रमुच्यते ।।

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै: भक्तियोग समन्वित: ।

संस्मरन्परमं भावं दिव्यं माहेश्वरं परम् ।।

सोन्तकाले स्मृतिंलब्ध्वापरं ब्रह्माधिगच्छति ।।[1]

इन स्तोत्रों में स्त्री वाचक सभी शब्द देवी रूपा ही प्रतिपादित हैं -

आत्मन्याधाय चात्मानमोंकारं समनुस्मरन् ।

नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ।।

ईश्वराणी च शर्वाणि शंकरार्द्ध शरीरिणी ।

भवानी चैव रूद्राणि, महालक्ष्मीरथाम्बिका ।।[2]

ललितासहस्रनाम में उल्लिखित है कि सहस्र नामों की रचना करने का आदेश सर्वप्रथम माँ ललिता ने स्वयं दिव्य एवं शक्तिशाली वाक् देवियों को दिया था । किन्तु फिर भी वाक् की एक देवी को सृष्टि की सूत्रधार महामयी माँ ने प्रेरित किया है कि वे दहराकाश में संचरण कर मेरी उस जिह्वा के अग्रभाग पर नृत्य करें, जो उस जल से पवित्र है, जिसने मेरे तीन गुरूओं के चरण कमलों का प्रक्षालन किया है और मैं उस देवी को ही अपनी स्व-आत्मा मानता हूँ ।

1- कूर्म पुराण 1/12/315, 16, 18

2- कूर्म पुराण 1/12/ 69, 62

तथापि श्रीमात्रा दहरकुहरे सूत्रधरया

समादिष्टा वाचामधिपतिषु काऽप्यन्तम्मिका

मदी याश्रीनाथत्रयचरणनिर्णे जन जलै:

पवित्रे जिह्वाग्रे नटति ममता सा मम मता ।।

ललिता सहस्रनाम - 4

ऐसे उपासक को जो पवित्र एवं निर्मल हृदय है, सहस्रनामों का ज्ञान दिया जा सकता है । तन्त्र में महादेवी ललिता के सहस्रो शक्तिशाली नाम हैं । पुराणों में भी सहस्र नामों का उल्लेख है । किन्तु ये सहस्रनाम सर्वश्रेष्ठ है । सभी मन्त्रों में श्रीविद्या के मन्त्र श्रेष्ठ हैं और उनमें भी कादि विद्या सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ है ।

हजारों नामों में से केवल ऐसे दस समूहों का चयन किया गया है जिनमें प्रत्येक में सहस्र नाम है । इन दस समूहों का आरम्भ क्रमश: इन अक्षरों से होता है - ग, गा, श्या, ल का, वा, ल, श, स, भा । चौसठ आगमों में हजारों नाम हैं ।

जैसे श्रीपुर समस्त पुरों में श्रेष्ठ है, शक्तियों में ललिता हैं और परम शिव श्रीविद्या के उपासकों में सर्वश्रेष्ठ हैं -

पुराणां श्रीपुरमिव शक्तीनां ललिता यथा ।

श्रीविद्योपासकानां च यथा देवो वर: शिव: ।।

तथा नामसहस्रेषु वरमेतत्प्रकीर्तितम् ।। 19

यथास्य पठनाद्देवी प्रीयते ललिताम्बिका ।

अन्यनामसहस्रस्य पाठान्न प्रीयते तथा

श्रीमातु: प्रीतये तस्मादनिशं कीर्तयेदिदम् ।। 20

विभिन्न सहस्रनामों में यह सहस्रनाम सर्वोत्तम है । देवी ललिताम्बा किसी अन्य सहस्रनाम के पाठ से इतनी प्रसन्न नहीं होती हैं जितनी इसके पाठ से होती हैं । अत: अम्बा का अनुग्रह अर्जन करने के लिये उपासकों को इसका नियमित पाठ करना चाहिये ।

त्रिपुरसुन्दरी के साधकों में ब्रह्मा, विष्णु आदि भी आते हैं, संपत्कारी एक देवी का नाम है । ललितोपाख्यान में सम्पत्कारी देवी को हाथियों की अधिष्ठात्री भी बताया गया है । तंत्र में अश्वारूढ़ा एक देवी का नाम है ।

श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत् सिंहासनेश्वरी ।
चिदग्निकुण्डसम्भूता देवकार्यसमुद्यता ।।
उद्यद्भानु सहस्राभा, चतुर्बाहुसमन्विता ।
रागस्वरूप पाशाढ्या क्रोधाकारांकुशोज्ज्वला ।।[1]

जिस प्रकार दशमहाविद्याओं में षोडशी महाविद्या के द्वितीय स्वरूप 'श्रीविद्या' (पंचदशी: ललिता) को प्रमुख माना जाता है । उसी प्रकार श्रीविद्या (ललिता) के सहस्र नामों को विशेष मान्यता प्राप्त है । 'श्रीललितासहस्रनाम' अन्य महाविद्याओं के उपासकों के लिये भी उपयोगी है क्योंकि सभी महाविद्याओं के सहस्रनामों में कुछ विशेष नामों के अतिरिक्त शेष नाम सर्वसामान्य ही होते हैं ।

1- श्रीब्रह्माण्डपुराण ललितोपख्यान हयग्रीवागस्त्य संवाद श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्र उद्धृत ।

सभी देवियों के सहस्रनामों में समानता है । सहस्रनाम को माला-मन्त्र भी कहते हैं । क्योंकि सहस्रनामों के निरन्तर पाठ या जप से उन नामों की एक माला बन जाती है । ये नाम - मंत्र के ही समान फलदायक होते हैं । यह सहस्रनाम का विधि-पूर्वक पाठकरने से यथोक्त फल की प्राप्ति होती है ।

इन उपर्युक्त स्तोत्रों के अतिरिक्त कुछ ऐस स्तोत्र भी थे जिनकी उपासना तान्त्रिक थी तथा वे तन्त्रों में उल्लिखित है । यद्यपि ये स्तोत्र तान्त्रिक साधना के है परन्तु ये इतने ललित हैं कि इनकी सौम्य उपासना की जाने लगी । जो आज भी शक्ति उपासकों में प्रचलित हैं । उनमें से कुछ निम्न है -

<u>त्रिपुररहस्य</u> - त्रिपुर के लिये शाक्त ग्रन्थों में एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है - त्रिपुररहस्य । इसके तीन खण्डों में माहात्म्य और ज्ञानखण्ड उपलब्ध होता है, चर्याखण्ड उपलब्ध नहीं होता । इस ग्रन्थ में शुद्ध चित्ति को त्रिपुरा की संज्ञा दी गयी है । इसमें दत्तात्रेय और परशुराम का संवाद है और ऋषि हरितायन हैं । इसमें मुख्य रूप से त्रिपुरा देवी की महिमा का वर्णन है जो ललिता का ही दूसरा स्वरूप है और यही श्रीविद्या है, जो परमतत्व का शुद्ध चैतन्य स्वरूप है । शुद्ध चैतन्य में अनन्त शक्तियाँ हैं तथा ये अनेक नामों से सम्बोधित की जाती हैं, जैसे परमज्योति, परात्परा, तत्वमयी, तपसाराध्या, पंचब्रह्मासनस्थिता इत्यादि । कठ, केन, ईश, देवी इत्यादि उपनिषदों और श्रीमदभगवद्गीता में इसी प्रकार के नामों का उल्लेख है । इसी शक्ति से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, इससे आविर्भूत शक्तियों की गणना ही दशमहाविद्याओं के रूप में की जाती है ।

<u>ललितास्तवरत्नम्</u> - इसके प्रणेता एवं रचयिता दुर्वासा हैं । भाषा की दृष्टि से यह अत्यन्त मधुर और लालित्यपूर्ण है । इसमें ब्रह्माण्ड की कल्पना श्रीचक्र के रूप में की गयी है तथा अधिष्ठाता देवों और अधिष्ठातृ देवियों का विविध रूपों में वर्णन है । इस स्तोत्र का प्रारम्भ माँ ललिता के स्तवन से हुआ है और उन्हें गगनाथ प्रिया से सम्बोधित किया गया है । इसमें उल्लिखित है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड श्रीचक्र में समाविष्ट है और श्रीचक्र का प्रतिनिधि सुमेरु पर्वत है । ललितासहस्रनाम में आये देवी के नामों का इसमें भी उल्लेख है । इसमें पंचब्रह्मज्ञ रूप में पर्यंक की कल्पना की गयी है -

पर्यंकस्य भजामः पादान् बिम्बाम्बुदेन्दुहेमरुचः ।
अजहरिरुद्रेश मयानन नलासुरमारुतेशकोणस्थान् ।।[1]

ललिता देवी का स्वरूप इस स्तोत्र में वर्णित है -

ललिता पातु शिरो मे ललाटमम्बा च मधुमतीरूपा ।
भ्रूयुग्म च भवानी पुष्पशरा पातु लोचनद्वन्द्वम् ।।
कामेश्वरी च कर्णौ कामाक्षी पातु गण्डयोर्युगलम् ।।
श्रृंगारनायिकाव्याद्‌ वदनं सिंहासनेश्वरी च गलम् ।
भार्यां रक्षतु गौरी पायात् पुत्रांश्च बिन्दुगृहपीठा ।
श्रीविद्या च यशो मे शीलं चाव्याच्चिरं महाराज्ञी ।।[2]

1- ललितस्तवरत्नम् श्लोक 15

2- ललितस्तवरत्नम् श्लोक 198, 200, 205.

ललितोपाख्यान [1] में कहा गया है -

'चित्तिस्तत्तादलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी '

त्रिपुरामहिम्न स्तोत्र - यह स्तोत्र भी दुर्वासा कृत है । इसमें 56 श्लोक हैं । इसकी समाप्ति ठीक उसी प्रकार हुई है, जैसे ललितास्तवरत्नम् की, और अंतिम श्लोक दोनों का एक ही है । इस स्तोत्र की गणना श्रीविद्या के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में होती है । सृष्टि, स्थिति और संहार - ये त्रिविधात्मक कार्य ललिता सुन्दरी के हैं, अत: उन्हें ही त्रिपुरा कहते हैं । प्रथम श्लोक में ही त्रिपुरसुन्दरी के त्र्यक्षरी मंत्र का प्रतिपादन किया गया है । त्रिपुरसुन्दरी को श्रीमाता कहा गया है जैसा कि ललितासहस्रनाम की नामावली में सर्वप्रथम नाम श्रीमाता है जिसका अर्थ इस स्तोत्र में भारती, पृथ्वी रूद्राणि स्वरूप इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति की समष्टि अम्बिका है । सभी स्तोत्र श्रीविद्या के गूढ़ रहस्यों तथा ज्ञान से परिपूर्ण हैं । श्रीचक्र के रहस्यों पर भी इनसे विशद प्रकाश पड़ता है । बाह्य पूजा की अपेक्षा आन्तरिक पूजा को विशिष्ट बतलाया गया है । सर्वदर्शनों की अधिदेवता, गायत्री, सन्ध्या आदि को महात्रिपुरसुन्दरी ललिता का स्वरूप माना गया है ।इस देवी की उपासना से भोग और मोक्ष प्राप्त होता है । इस स्तोत्र में श्रीचक्र का वर्णन है ।[1] तथा मातृकादिन्यास, करन्यास, महाशक्ति न्यास इत्यादि की विस्तृत चर्चा करते हुये उसकी क्रिया बतलायी गयी है ।[2]

1- त्रिपुरामहिम्न स्तोत्र - श्लोक 28

2- वही - - श्लोक 46

त्रिपुरा_भारती_लघु स्तव - यह एक बहुत ही भावपूर्ण एवं रहस्यपूर्ण अर्थद्योतक 21 पद्यों का लघु स्तुति है । इसके कर्त्ता कवि ने ज्योतिर्मयी ज्ञानशक्ति की प्राप्ति की कामना से प्रेरित होकर इसमें भगवती भारती - वाग्वादिनी स्वरूप देवी शक्ति की प्रभुता, प्रार्थना, साधना आदि का वर्णन करने का प्रयत्न किया है । इस स्तुति में त्रिपुरा स्वरूप भारती माता का रहस्यपूर्ण वर्णन किया गया है । भारती देवी के भिन्न - भिन्न स्वरूप और भिन्न - भिन्न शक्ति-प्रदर्शक माया कुण्डलिनी इत्यादि 24 नाम उल्लिखित किये हैं ।[1] त्रिपुरा शक्ति की आराधना करने के लिये प्रथम मंत्र में प्रयुक्त 'ऐं क्लीं सौं' ये तीन वर्ण तंत्रशास्त्रों में व्यवहृत हुए हैं ।[2] अत: इन वर्णों के ध्यानादि के प्रभाव से जो शक्ति प्रसन्न होती है, वह त्रिपुरा है । कवि ने स्वयं 'आ ई' इत्यादि अक्षरों के मेल से 'त्रिपुरा' के बीस हजार से भी अधिक रहस्य नामों का विन्यास सूचित किया है ।[3]

1- माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्ति: शंकरवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यासि ।।

त्रिपुराभारती लघुस्तव - 18

2- त्रिपुर-भारती-लघु स्तव, ।

3- वही - 19

<u>मातंगी स्तोत्र</u> - उमासाहाचार्य कृत आगमसार तंत्र से उद्धृत मातंगी स्तोत्र में भैरवी, त्रिपुरा इत्यादि मातंगी महाशक्ति के पर्यायवाचक नाम हैं । जैसा कि इस स्तोत्र में भी उल्लिखित है -

भैरवी त्रिपुरा लक्ष्मीर्वाणी मातंगिनीति च ।

पर्यायवाचका ह्येते सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।।[1]

इस स्तोत्र में प्रधान रूप से मातंगी देवी की स्तवना, प्रार्थना और आराधना इत्यादि का वर्णन है । इसमें मातंगी देवी के भूतभावन भगवान शंकर की अर्धांगिस्वरूपा दिव्य शक्ति के रूप में स्तुति की गयी है और उसमें भी मुख्य रूप से वीणावादिनी गायन-देवता-स्वरूप का ध्यान लक्षित है । अत: 'त्रिपुरास्तव' की तरह यह स्तोत्र भी वाग्देवी भगवती त्रिपुरा भारती के ही एक विशिष्ट स्वरूप का बहुत भावपूर्ण और हृदयोल्लासक स्तुति - पाठ है । कवि कहता है -

ज्ञानात्मके जगन्मयि निरंजने नित्यशुद्धपदे ! ।

निर्वाणरूपिणि परे त्रिपुरे ! शरणं प्रपन्नस्त्वाम् ।।[2]

नख-शिख वर्णन

नख-शिख वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । पहले इसका प्रयोग कवि बड़ी शालीनता के साथ करते थे । हमें अपने प्रारम्भिक ग्रन्थों को देखने पर भी इसका पता चलता है । उस वर्णन में एक विशेष मर्यादा का पालन किया जाता था ।

1- उमासाहाचार्यकृत मातंगीस्तोत्र, 36

2- वही - 44

धीरे - धीरे साहित्य में प्रगति की इस परम्परा का भी ह्रास होता गया तथा कवियों ने नायिकाओं तथा देवियों के वर्णन में मर्यादा का उल्लंघन कर दिया तथा उनके अंग-प्रत्यंगों का वर्णन इस प्रकार किया, जो अम्बा (देवी) के विषय में कहना उचित नहीं लगता । इसका कारण यह था कि कवि अपने उपास्य के सौन्दर्य का वर्णन करते समय इतना भावविभोर हो जाता है कि वह अपने इष्ट को त्रिलोक से सुन्दर बताना चाहता है । प्राचीन काल में मूर्तियां प्राय: नग्न थी तथा वस्त्र प्राय: कम पहने जाते थे इस कारण भी कवि लोग इस प्रकार के सौन्दर्य की कल्पना करते रहे होंगे । नख-शिख वर्णन क्रमश: रामायण, महाभारत पुराण - विशेषकर हरिवंश पुराण में हुआ । तदनन्तर कालिदास (कुमारसम्भव में पार्वती तथा रघुवंशी में इन्दुमती), दण्डी (दशकुमार चरित में) बाणभट्ट, श्रीहर्ष इत्यादि अनेकानेक कवियों ने अपने ग्रन्थों में नायक-नायिक के चित्र खींचे हैं जो संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है । संस्कृत साहित्य से प्रभावित होकर ही हिन्दी कवियों - विद्यापति, जायसी, बिहारी इत्यादि ने नख-शिख वर्णन किया है ।

सृष्टि के आदि काल से ही मानव सौन्दर्य की आराधना करता आ रहा है, नारी का रूप सौन्दर्य सदा ही पुरुष के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है । नारी के अंग-प्रत्यंग वर्णन को काव्य-शास्त्र में 'नख-शिख वर्णन' की संज्ञा प्रदान की है । नारी का नख-शिख वर्णन कवियों तथा आचार्यों का प्रिय विषय रहा है । स्तोत्र परम्परा में भी नख-शिख वर्णन का अपना विशिष्ट स्वरूप है । कवि सम्प्रदाय में चरण से प्रारम्भ करके शिख-पर्यन्त वर्णन करने की रीति है ।

पंडितराज जगन्नाथ ने अपने 'लक्ष्मी लहरी' में इसी परम्परा का पालन किया है । विष्णु के हृदय को हरण करने वाली उनकी प्रियतमा लक्ष्मी के लाल रंग का चरण - नख विष्णु के अन्त: सन्ताप को बढ़ा रहा है -

हरन्तो नि:शङ्कं हिमकरकलानां रूचिरतां
किरन्त: स्वच्छन्दं किरणमय पीयूषनिकरम् ।
विलुम्पन्तु पौढ़ा हरिहृदयहारा: प्रियतमा
ममान्त: सन्तापं तव चरणशोणाम्बुजनखा: ।।[1]

लक्ष्मी के दोनों जंघे मांसलयुक्त और रोमयुक्त हैं । जिस प्रकार भ्रमर खिले हुये लाल कमल के सौन्दर्य के मध्य भ्रमण करता है, उसी प्रकार विष्णु भी लक्ष्मी के जंघों की नीराजना कर रहे हैं अर्थात देख रहे हैं -

मणिज्योत्स्नाजालैर्निजितनुरूचां मांसलतया
जटालं ते जङ्घायुगलमघभङ्गाय भवतु ।
भ्रमन्ती यन्मध्ये दरदलितशोणाम्बुजरूचां
दृशां माला नीराजनमिव विधत्ते मुनिरिपो: ।।[2]

कालिदास ने भगवती पार्वती के रोमराजि का चित्रण इस प्रकार किया है - पार्वती के गहरी नाभि में प्रविष्ट होने वाली काली पतली रोम-पुंक्ति ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो उसकी करधनी में स्थित नीलमणि की कान्ति

1- सौन्दर्य लहरी - 12

2 वही - 14

ही नीवी को पार करके झुकी हुयी नाभि के छिद्र में प्रविष्ट हो रही है ।[1]

कवि ने नितम्ब वर्णन इस प्रकार किया है -

मुनिव्रातैः प्रातः शुचिवचनजातैरतिनुतं ।

नितम्बास्ते बिम्बं हसति नवमम्बाम्बररमणे: ।।[2]

इसी प्रकार कवि ने क्रमशः नाभि[3], कुच[4], कपोल,[5] दृष्टि,[6] श्रोत्र,[7] इत्यादि का वर्णन अति सुन्दर ढंग से किया है ।

सौन्दर्य लहरी स्तोत्र में नख-शिख वर्णन नहीं अपितु शिख-नख वर्णन है । देवी का यह सौन्दर्य वर्णन बड़ा ही मार्मिक तथा कोमल पदावली में किया गया है । यह वर्णन मुकुट से प्रारम्भ करके चरण में समाप्त किया गया है । इसका कारण समयाचार का साधनक्रम है, इस मत में शक्ति का चिन्तन सहस्रार करते हुए क्रम से आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार होता है अतः स्तोत्र परम्परा में देवता का नख-शिख वर्णन न करके शिख-नख वर्णन प्रचलित है ।

1- तस्याः प्रविष्टाः नतनाभिरन्ध्रंरराज तन्वी नवलोमराजिः ।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणे-रिवार्चिः ।। - कु0 सं0, 1/38

2- लक्ष्मी लहरी श्लोक 16

3- वही - श्लोक 19

4- वही - श्लोक 21

5- वही - श्लोक 33

6- वही - श्लोक 35

7- वही - श्लोक 36

आचार्य शंकर ने भगवती पार्वती के प्रत्येक अंग का चित्रण सुन्दर उपमानों के द्वारा भाव विह्वल होकर स्वाभाविकता से किया है । इस स्तोत्र में देवी के किरीट प्रारम्भ करके चरण पर्यन्त समस्त अवयवों का श्रृंगारिक वर्णन किया गया है । इस देवी के रूप सौन्दर्य तथा यौवन से देदीप्यमान अंगों का ही प्राय: चित्रण किया गया है । इस शिख-नख वर्णन में कवि ने तन्त्र सिद्धान्त का पालन किया है ।

भगवती के केशराशि का कितना स्वाभाविक वर्णन किया है - भगवती के केशराशि घने, काले, चिकने, चमकीले, खिलते हुए कमल के समान हैं जिसमें नन्दनवन के कल्पवृक्षों की उत्तम सुगन्ध समाहित है ।[1] श्री हर्ष ने दमयन्ती के केशों का वर्णन कुछ इसी प्रकार किया है - दमयन्ती के केशों के प्रतिद्वन्द्वी मयूरपंख श्रेष्ठता का निर्णय पाने के लिये ब्रह्म के पास गये, निर्णायक ब्रह्मा ने दमयन्ती के केशों को सपुष्प बना दिया तथा मयूर पंख को अर्द्धचन्द्रता प्रदान कर दी ।[2]

भगवती के नेत्रों का कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक और प्रभावकारी वर्णन किया है - दक्षिण नेत्र सूर्यात्मक होने से दिन का प्रतीक है तथा वामनेत्र

1- धुनोति ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं
घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरम्बं तव शिवे ।
यदीयं सौरभ्यं सहजमपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन् मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम् ।। - सौ० ल० - 43

2- यस्या: कचानां शिखिनश्च किन्नु विधिं कलापौ विमतेरगाताम ।
तेनयामेभि: किमपूजि पुष्पैरमर्षि दृष्ट्वा स: किमर्धचन्द्रम् ।। - नै0.7/22

चन्द्रात्मक होने से रात्रि का प्रतीक माना गया है तथा किंचित विकसित स्वर्णिम कमलवत शोभायुक्त तीसरी दृष्टि दिन तथा रात दोनों के बीच रहने वाली सन्ध्या है ।[1]

कवि ने भगवती के निमेषोन्मेष में विश्व के प्रलय तथा उत्पत्ति की कल्पना की है ।[2] कालिदास ने भी पार्वती की दृष्टि का वर्णन अत्यन्त चंचलता के प्रतीक के रूप में किया है - आयात लोचनी पर्वती का चिन्तन वायु से हिलते नीलकमल के सदृश चंचल थी । उसे देखकर यह पता नहीं चलता था कि यह कला उसने हिरणियों से सीखी है या हिरणियों ने उससे ।[3] श्री हर्ष ने भी दमयन्ती के विशाल नेत्रों का चित्रण किया है जो नेत्र दूर तक जाकर अवश्य मिल जाते पर कर्णफूल के भय से आगे नहीं बढ़ जाये । अर्थात उनके नेत्र कानों तक व्याप्त हैं ।[4]

1- अहः सूते सव्यं तव नयनं अर्कात्मकतया, त्रियामाँ वामं ते सृजति रजनीनायकतया । तृतीया ते दृष्टिः दरदलितहेमाम्बुजरुचि,समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तर-चरीम ।। - सौ0 ल0 - 48

2- निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये ।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शंके परिहृतनिमेषास्तव दृशः ।। - सौ0 ल0 - 55

3- प्रवातनीलोत्पल निर्विशेषमधीर विप्रेक्षितमायाताक्ष्या,
तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः ।। - कु0सं0, 1/46

4- दृशौ किमस्याः चपलस्वभावे न दूरमाक्रम्य मिथो मिलेताम् ।
न चेत्कृतः स्यादनयोः प्रयाणे विघ्नः श्रमः कूपनिपातभीत्या ।। - नैष0,7/34

भगवती के दमकते हुये कपोलों पर प्रतिबिम्बित दोनों कर्णफूलों से सम्पन्न उनका मुख कामदेव के चार पहियों वाले रथ के समान प्रतीत होता है ।[1]

भगवती के रक्तिम ओष्ठों ﴾ अधरों ﴿ की शोभा का सादृश्य मूगों की लता में यदि फल आ जाय तो उसी से किया जा सकता है । बिम्बफल तो किसी भी प्रकार उनके अधरों से समानता नहीं कर सकता, यदि उससे ओष्ठों की तुलना की जायेगी तो भगवती की ओष्टों की सुन्दरता के बराबर भी सुन्दर न होने से बिम्बफल को लज्जित होना पड़ेगा ।[2]

कवि ने भगवती के हृदयस्थल से उछलते हुये कविता सागर को स्तनों में से पयरूपेण बहता हुआ माना है । उस स्तन क्षीर का पान कर द्रविण बालक मैं उत्तम कवि बन गया हूं ।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि भगवती के स्तनपान

1- स्फुरद्गण्डाभोग - - - - - - - - - प्रमथपतये सज्जितवते ।। सौ0ल0 59

2- प्रकृत्या रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचे:

प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता ।

न बिम्बं तद्बिंबप्रतिफलनरागादरुणितं

तुलामध्यारोढुं कथमिव विलज्जेत कलया ।। - सौ0 ल0 - 62

3- तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयत:

पय:पारावार: परिवहति सारस्वतमिव ।

दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्

कवीनां पौढ़ानामजनि कमनीय: कवयिता ।। - सौ0 ल0 - 75

इसके चरणों का महावर हरि मुकुटस्थ कौस्तुभमणि के समान चमकता है । हे मा ! इन चरणों से इस दास का भी उद्धार करो ।[1] भगवती के युगल चरण - नख सर्वकामना को पूर्ण करने वाले हैं । इनके चरण-नखों की ज्योति बहुत से चान्द्रमसों के समान है जिनकी देव-स्त्रियाँ सदा वन्दना करती हैं । जिस प्रकार चन्द्रोदय होने पर कमल बन्द हो जाता है, उसी प्रकार देवस्त्रियों के कर कमल आपके चरण-नख की वन्दना में बन्द हो जाते हैं ।

इसी प्रकार शंकराचार्य ने भगवती के शिख-नख वर्णन में समस्त अवयवों का बड़ा ही मनोरम तथा मनोमुग्धकारी चित्रण किया है ।

1- श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया

ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ ।

ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी

ययोः लाक्षालक्ष्मीः अरुणहरिचूडामणिरुचिः ।। - सौ0 ल0 - 84

में वह अनुपम शक्ति है कि जो भी उस अमृत रस का पान कर लेता है वह सारस्वत ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है ।

भगवती के नितम्ब अत्यन्त ही विस्तृत है पर्वतराज ने आपको अपने नितम्ब से निकालकर गुरूत्व तथा विस्तार प्रदान किया है । अत: आपके नितम्ब चौड़े तथा भारी हैं और इस भारी पृथ्वी के गुरूत्व की महिमा को हरण कर उसे लघु बना देते हैं ।[1] श्री हर्ष ने दमयन्ती के नितम्बों की समता चक्र से की है - नल की दृष्टि दमयन्ती के चक्रतुल्य नितम्बों से स्खलित हो कदली स्तम्भ सदृश उरूद्वय पर रूकी रही ।[2]

भगवती के चरणों का माहात्म्य कवि ने बड़ी विनम्रता के साथ किया है । माँ के चरणों को नेपथ्य के प्रधान देवता शिरोमुकुटवत धारण करते हैं तथा इनके धोवन से गंगा जी प्रकट हुयी हैं जिन्हें पशुपति ने अपनी जटाओं में धारण किया है ।

1- गुरूत्वं विस्तारं क्षितिधरपति: पार्वती निजात्

नितंबात् आच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ।

अतस्ते विस्तीर्णो गुरूरयमशेषां वसुमतीं

नितम्बप्राग्भार: स्थगयति लघुत्वं नयति च - सौ0 ल0 , 81

2- विभ्रम्य तच्चारू नितम्ब चक्रे द्रुतस्य दृक् तस्य खलु स्खलन्ती ।

स्थिरा चिरादास्त तदूरूरम्भस्तम्भावुपाशित्य करेण गादम् ।।- नैष0, 7/7

शक्ति का अवदानोल्लेख

देवी परम रहस्यमय एक अति निगूढ़ दुर्जेय तत्व हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश की यह त्रिमूर्ति भी इनकी महिमा के भीतर है और इनसे प्रभावित तथा रचित है । सगुण ब्रह्म तो देवी के अंगभूत गुणों से ही गठित है फिर उसे अपनी उद्भावयित्री भगवती का सन्धान - पता कैसे लग सकता है ? मार्कण्डेय पु0 में ब्रह्मा का यह कथन सर्वथा सत्य है -

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्यपताऽत्ति यो जगत ।
सोऽपि निद्रावशं नीत: कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वर: ? ।।
विष्णु शरीरग्रहणहमीशान एव च ।
करितास्तेऽयतो तस्त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ? ।

जगत की रचना करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधीन कर देती हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव को इनकी इच्छा से शरीर धारण करना पड़ता है उन महामहिमशालिनी महामाया की स्तुति कौन कर सकता है ? मार्कण्डेय पु0 के 81 से 93 तक 13 अध्यायों में वर्णित है । सप्तशती के पहले अध्याय के अन्तिम भाग में ब्रह्मा द्वारा एवं चौथे, पाँचवे तथा ग्यारहवे अध्याय में देवताओं द्वारा जो देवों की स्तुति है । उन सबसे देवी तत्व का जो परिचय प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है - देवी सत्व रज और तम रूप प्रकृति तथा सत्, चित् और आनन्द रूप पुराण पुरूष की मिश्रित अयुतसिद्ध मूर्ति है । यह अनादि और अनन्त हैं । इनकी शक्ति अपार है । इनकी प्रभुता के समक्ष बड़े - बड़े ज्ञानी

जनो की भी कुछ नहीं चलती । ये ही चराचर जगत का सृजन करती हैं, ये ही बन्ध और मोक्ष का कारण है । वस्तुत: देवी के माहात्म्य का वर्णन शब्दों में नहीं किया जाता है । संसार में जो कुछ भी भूत वर्तमान अथवा भविष्य है वह सब शक्ति से ही है । लोगों के मनोरथ की पूर्ति इसके प्रभाव से ही सम्भव हैं । शक्ति के प्रभाव से ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि अपने कार्य का सम्पादन करते हैं । जैसा कि शक्तिआगमसर्वस्वतन्त्र में वर्णित है -

शक्तिं बिना महेशानि, सदाहं शवरूपक: ।
शक्तियुक्तो यदादेवि शिवोऽहं सर्वकामद: ।।
शक्तियुक्तं जपेन्मन्त्रंनमन्त्रं केवलं जपेत् ।
- - - - - - - - - - - - - -
ईश्वरोऽहंमहादेवि, केवलं शक्ति-योगत: ।।[1]

शक्ति आगम सर्वस्वतन्त्र में शक्ति महत्ता इस प्रकार बतायी गयी है -

सहवुद्ध्या बुद्धिमन्तो, न वक्तुमुचितेक्षरा: ।
सर्वे श क्त्यालयेविश्वे, शक्तिमन्तोहि जीविन: ।।[2]

शिव पुराण में ज्ञान शक्ति को कारण और करण क्रियाशक्ति को सम्पूर्ण कार्यों को करने वाली और संकल्पों को क्षीण करने वाली बताया गया है -

---

1- शब्दकल्पद्रुम भाग 5, 1961, वाराणसी, शक्ति शब्दार्थ में।

2- शब्दकल्पद्रुम भाग 5, 1961, वाराणसी, शक्तिआगमसर्वस्वतन्त्र ।

ज्ञानशक्तिस्तुतत्कार्यं कारणं करण तथा ।

प्रयोजनं च तत्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति ।।

यथेप्सितं क्रियाशक्तिः यथाध्यवसितं जगत् ।

कल्पयत्यखिल-कार्याणि, क्षिणोत्संकल्परूपिणी ।।[1]

देविभागवत में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि सभी कार्य शक्ति के द्वारा ही सम्भव है कार्य सम्भव न होने पर लोग विष्णु और शिव से रहित नहीं मानते अपितु शक्ति का अभाव मानते हैं ।[2] ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणेश खण्ड के सातवें अध्याय में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि शक्ति के सहयोग से ही कोई कार्य करते हैं । जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा बनाने में असमर्थ है उसी प्रकार शिवादि भी शक्ति के बिना कुछ भी करने में असमर्थ हैं । शक्ति यहाँ उपादान कारण है और जगत का उसके साथ समवाय सम्बन्ध है । दुर्गासप्तशती में कहा गया है कि विविध स्तोत्रों द्वारा आराधना करने से असम्भव कार्य भी सम्भव होते हैं ।

सप्तशती के चतुर्थाध्याय में शक्रादिः स्तुति में देवी के कार्यों की प्रशंसा की गयी है । वह सम्पूर्ण देवों के शक्ति समूह से युक्त जगत में सर्वतः व्याप्त और सभी देवर्षियों द्वारा पूजित हैं । उनसे सबका कल्याण करने के लिये प्रार्थना की गयी है -

---

1- शिव पुराण वायवीय संहितातः 7/8

2- रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल ।
शक्तिहीनं यथासर्वं प्रवदन्ति नराधमम् ।।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निश्शेषदेवगण शक्तिसमूह मूर्त्या ।

ताममिम्बकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नता: स्म विदधातु शुभानि सा न: ।।[1]

देवी के अतुल्य प्रभाव और बल का वर्णन करने में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी असमर्थ हैं । उस भगवती चण्डिका से अशुभ और भय का नाश करने के लिये प्रार्थना की गयी है -

यस्या: प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तमलं बलं च ।

सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ।।[2]

इस प्रकार भगवती सब कुछ करने में समर्थ हैं । उनके निमेषपात मात्र से ही असम्भव भी सम्भव हो जाता है । ये ही पुण्यात्माओं के घरों में निवास करती हैं और इनसे ही विश्व की रक्षा सम्भव है ।[3] देवी जगत् की उत्पत्ति का कारण त्रिगुण से युक्त, सम्पूर्ण जगत् का आश्रय और सबकी आदि भूत भव्याकृता परा प्रकृति हैं ।[4] मोक्ष की अभिलाषा वाले मुनिजन देवी का ध्यान करते रहते हैं और वह भगवती परा विद्या हैं ।[5] वह वेदत्रयी, ऐश्वर्यशालिनी, संसार की कर्त्ता

1- सप्तशती 4/3

2- सप्तशती 4/14

3- या श्री: स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मी: पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धि: ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्यलज्जा तां त्वां नता: स्म परिपालय देवी विश्वम् ।।
सप्तशती 4/5

4- हि परमा प्रकृतिस्त्वामाद्या ।। - सप्तशती

5- सप्तशती 4/19

और जगत की पीड़ा का हनन करने वाली हैं ।[1] देवी मेधा शक्ति, दुर्गम भव - सागर को पार उतारने वाली दुर्गा देवी हैं तथा वही विष्णु के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मी रूप और शिव द्वारा सम्मानित गौरी देवी रूप हैं -

मेधासि देवी विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ।
श्रीः कैटभारि हृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ।।[2]

परमात्मा स्वरूपा देवी के प्रसन्न होने पर जगत का अभ्युदय और क्रोध-युक्त होने पर अनेक कुलों का नाश होता है ।[3] वह जिन पर प्रसन्न हैं उनके पास समाज में सम्मान धन, यश एवं सुख है ।[4] स्मरण की गयी माँ दुर्गा प्राणियों के भय का हरण, परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करने वाली और दूसरों के उपकार करने वाली आर्द्रचित्ता हैं ।[5] भगवती का शील दुराचारियों के बुरे कर्मों को भी शमन करने वाला है तथा इन्होंने शत्रुओं पर भी दया ही प्रकट की है ।[6] भगवती के पराक्रम की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती है, उनका शत्रुओं को भय प्रदान करने वाला मनोहारी रूप अप्राप्त रूप है, उनके हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता है तथा वह तीनों लोकों में मौजूद देखी जाती हैं -

---

1- सप्तशती 4/10

2- वही - 4/11

3- वही - 4/14

4- वही 4/15

5- वही - 4/17

6- वही - 4/21

"केनोपमाभवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्ट्वा त्वय्येव देवी वरदे भुवनत्रयेऽपि ।"[1]

देवी ने तीनों लोकों की रक्षा, शत्रुओं का बध तथा दैत्यों से हमारे भय को दूर किया है -

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ।।[2]

देवी से सब प्रकार से और सब दिशाओं में तथा उनसे तीनों लोकों को व भूलोक को अपने सौम्य और भयंकर रूपों से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है । देवी ही इस जगत का एकमात्र आधार हैं । सम्पूर्ण विद्याएं, स्त्रियां और यह सारा संसार देवी का ही भिन्न-भिन्न रूप है, उन्होंने अकेले ही इस जगत को व्याप्त कर रखा है, देवी की स्तुति स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परावाणी है । उनकी शक्ति से उत्तम और कोई शक्ति नहीं है, वह स्वर्गदात्री, मोक्षदात्री, सर्वमंगल को देने वाली, शरणागत - वत्सला, संसार की सृष्टि, स्थिति एवं संहार की शक्ति गुणाश्रय एवं सर्वगुणमयी हैं ।

देवी शरणागत, दीन एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली, सबकी पीड़ाओं का हरण करने वाली हैं ।[3] वह सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी और सर्वशक्तियों

1- सप्तशती 4/22

2- वही - 4/23

3- शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ।
सप्तशती स्तोत्र, 11/12

से सम्पन्न हैं ।[1] वह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाली, सम्पूर्ण मनोवांछित अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली और शरणागतों को आश्रय देने वाली हैं । विद्याओं में ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में उन्हीं का वर्णन है ।[2] वह विश्व का पालन करने वाली विश्वेश्वरी, संसार को धारण करने वाली विश्वात्मिका, भगवान विश्वनाथ की वन्दनीया हैं । उनके सामने नतमस्तक होने वाले भक्त भी विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं ।[3]

देवीभागवत महापुराण में देवी के अवदानों का विस्तृत उल्लेख है । यह एक उपपुराण है परन्तु शाक्त योग के लिये यह किसी भी महापुराण से कम महत्व नहीं रखता । इसमें पराशक्ति के स्वरूप का जहाँ दार्शनिक विवेचन है, वहाँ उनकी पूजाविधि का गम्भीर तान्त्रिक प्रतिपादन है । समग्र पुराण का वातावरण ही तन्त्रमय है । नाना रूपों में शक्ति का प्राधान्य बतलाना पुराणकर्ता को अभीष्ट है । विभिन्न स्थानों में विशिष्ट देवी के नाम का उल्लेख एक पूरे अध्याय

1- सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।। - सप्तशती स्तोत्र, 11/24

2- रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।
सप्तशती स्तोत्र, 11/29

3- विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ।।
सप्तशती स्तोत्र, 11/33

में भिन्नता है,[1] जिसमें विन्ध्याचल निवासिनी विन्ध्य देवी सर्वोत्तम बतलायी गयी हैं। इससे पूर्व ही एक अध्याय में[2] षट्चक्र के निरूपण में पूर्णतान्त्रिकता की अभिव्यक्ति है। शारद तथा चैत्र-उभय नवरात्रों के व्रत भगवती की प्रसन्नता के कारण होते हैं तथा देवी का पूजा - विधान वैदिक तथा तान्त्रिक उभयमन्त्रों की सहायता से निष्पन्न माना गया है।[3] वाह्य पूजा का इसमें विस्तृत वर्णन है।[4] इससे पूर्व ही तृतीय स्कन्ध में कुमारी पूजन जैसे विशुद्ध तान्त्रिक अनुष्ठानों की विधि बतलायी गयी है। नवम स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में सरस्वती के स्तोत्र पूजा, कवच आदि तान्त्रिक अनुष्ठानों के अनिवार्य अंगों का विवरण देकर ग्रन्थ - कार लोकप्रचलित षष्ठी, मंगल, चण्डी तथा मनसा (नाग) देवी के पूजन का वर्णन करता है।[5] इन देवियों का पूजा क्षेत्र बंगाल में होने से इस पुराण का भौगोलिक क्षेत्र भी यहीं पूर्वी प्रान्त माना जाना चाहिये। इस प्रकार देवी - भागवत शक्ति की तान्त्रिक आराधना का प्रतिपादक एक महनीय उप-पुराण है। जो विषय की गम्भीरता, प्रतिपादन की विविधता तथा दार्शनिक तत्वों के उन्मीलन में किसी महापुराण से घटकर नहीं है। इसी पुराण में अन्यत्र देवों ने

1- देवीभागवत पु0, 7/38

2- देवीभागवत पु0, 7/35

3- देवीभागवत पु0, 7/39

4- देवीभागवत पु0, 7/40

5- देवीभागवत पु0· 3/26 तथा अन्य अध्याय

श्रद्धानत होकर भगवती की स्तुति की और उनसे दानवों से रक्षा करने की इस प्रकार से प्रार्थना की -

नम:शिवायैकल्याण्यै शान्त्यै पुष्टये नमो नम: ।
कल्याणं कुरु भो मात: त्राहि न: शत्रुत्रापितान् ।।

देवी ने नवशक्ति और स्फूर्ति पाकर अपने चक्र से शिरश्छेद कर डाला । दु:खों से मुक्ति और शाश्वत सुख की प्राप्ति का एकमात्र उपय महामहिमामयी जगदम्बा भगवती आदिशक्ति की शरणागति है । माता अपने शरणागतों के जन्म - जन्मान्तरों के पापों का निरसन करके उन्हें इस जन्म में भक्ति और मरणोपरान्त मुक्ति प्रदान करती है । भगवती के भजन के बिना अन्य कोई गति नहीं यह निश्चल् और अटल सिद्धान्त है । समस्त देवता ही शक्ति की प्रेरणा से सुख - दु:ख का अनुभव किया करते हैं, मनुष्य तथा अन्य जीवों की तो बात ही क्या है । जैसे चेतन पदार्थों में शक्ति का विलास प्रत्यक्ष दिखायी देता है, वैसे ही जड़-पदार्थों में भी उसका प्रभाव प्रत्यक्ष दीख पड़ता है । ईश्वर में समस्त कार्य करने की जो सामर्थ्य है, वही शक्ति है । परब्रह्म परमात्मा शक्ति विशिष्ट होकर ही जगत का रक्षण, नियमनादि सब कार्य करने में समर्थ होते हैं । शक्ति से रहित होकर वह भी कुछ नहीं कर सकते । यही बात देवीभागवत के इस श्लोक में कही गयी है -

तच्छक्तिभत: सर्वेषु भिन्नो ब्रह्मादिमूर्तिभि: ।
कर्त्ता भोमा च संहर्त्ता सकल च जगन्मय: ।।

शक्तिविशिष्ट परब्रह्म ही देव, तिर्यक, मनुष्य, स्थवरादि सब प्रपंच के सृष्टि रक्षण और संहरण कार्य में समर्थ होते हैं । देवीभागवत में दो प्रकार की शक्ति मानी गयी है - सगुणा और निर्गुणा ।[1] देवीभागवत में जहाँ - जहाँ देवी का वर्णन किया गया है, वहाँ - वहाँ देवीपद से शक्तिविशिष्ट परब्रह्म का ही ग्रहण किया गया है, दूसरी ओर जो सगुणा शक्ति है वह पराशक्ति का ही रूपान्तर है, इसलिये देवस्तुतियों में कहीं सगुण रूप से और कहीं निर्गुण रूप से वर्णन है ।

तृतीय स्कन्ध के तीसरे अध्याय में शक्ति ही सम्पूर्ण जडाजड जगत का आत्मा होने के कारण जडाजड रूप में वर्णित है -

> एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः । महाविद्या महामाया पूर्णा - प्रकृतिरव्यया ।
>
> दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया । इच्छा परमात्मनः कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी ।।
>
> श्लोक - 51 - 52

व्यावहारिक सभी भेदों के कारण में विलीन होने पर सर्व जगत् की कारण स्वरूपा एक ब्रह्म शक्ति निर्गुण रूप में अवस्थित रहती है । किन्तु जब उसी निर्गुण शक्ति का रूपान्तर सगुण शक्ति में होता है तब स्पष्टरूप से मालुम होता है । दृश्यमान समस्त जगत् सगुण शक्ति का कार्य है और वह शक्ति सत्व,

---

1- सगुणा निर्गुणा चेत्ति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ।।

रज, तथा तमस् गुण की साम्यावस्था रूप है, इसलिये इसका प्रत्येक कार्य सुख, दु:ख और मोहात्मक होता है । सभी दृश्य वस्तु सगुण शक्ति का कार्य होने के कारण दृश्य वस्तुओं में जो स्वरूप देखा जाता है वही स्वरूप सगुण शक्ति का भी है । देवीभागवत का यही परम सिद्धान्त है कि ईश्वर का जो स्वरूप है वही शक्ति का भी है और जो जगत का स्वरूप है वह भी शक्ति का स्वरूप है और ईश्वर की प्राप्ति का उपाय भी शक्ति है । देवीभागवत पु0 के प्रथम स्कन्ध में ही देवी के अवदानों का विस्तृत उल्लेख है । वह विश्व की उत्पत्ति करने वाली, महामायारूपिणी शुभस्वरूपा, गुणातीता, सब प्राणियों की स्वामिनी तथा शंकर जी को आनन्द प्रदान करने वाली है ।[1] देवी ही जय, विजय, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा, तथा दया आदि हैं । देवी ही अपनी इच्छा से लीला करके ब्रह्मा विष्णु तथा शिवादि को उत्पन्न करके उनके द्वारा अविरल भुवनों का सर्जन पालन तथा संहार करती हैं । उन्हीं के संकेत से यह सारा प्रवर्तन होता है ।[2] सकल देवों के मध्य एक भी ऐसा देव नहीं जो उनकी महिमा को समग्र रूप में समझ सके ।[3]

1- नमोदेवि महामये विश्वोत्पत्तिकरे शुभे,निर्गुणि सर्वभूतेशि मात: शंकर कामदे ।।
त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि व्यहृतिस्तथा, जया च विजया धात्री लज्जा कीर्ति: स्पृहादया ।। - देवीभागवत, प्रथम स्कन्ध 5/53

2- सकल भुवनमेतत् कर्तुकामा यदा त्वं, सृजसि जननि देवान् विष्णुरुद्राजमुख्यान् ।
स्थितिलयजननं तै: कारयस्येकरूपा, न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेश: ।।
देवीभागवत, 1/5/55

3- न देवानां मध्ये भगवति । तवानन्त विभवम्,विजानात्येकोऽपि त्वमिह - भुवनैकाऽसि जननी । - देवीभागवत, 1/5/60

इनकी महिमा का वर्णन वेदशास्त्र कर ही नहीं पाते, सत्य तो यह है कि यह स्वयं भी अपनी महिमा से सम्यक् रूप से परिचित नहीं। संकल संसार की रचना जिस निरीहभाव से यह करती हैं, उससे मनुष्य सचमुच विस्मय-व्यथित हो उठता है।[1] देवी ही आदि प्रकृति विधात्री, कल्याणस्वरूपा, सकल कामनाओं तथा सभी ऋद्धियों-सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं।[2] जड़-चेतन संसार इन्हीं में समाया हुआ है और इस संसार की सत्ता इन्हीं की सत्ता है और यही लोक - मयी है।[3] देवी के बिना इस संसार की कोई सत्ता ही नहीं। यही इस समग्र जड़ चेतनमय संसार में व्याप्त हो रही हैं। जिस प्रकार शक्ति के अभाव में मनुष्य असमर्थ है - यह सभी बुद्धिमान स्वीकार करते हैं उसी प्रकार देवी के बिना भी सभी ब्रह्मादि देवता, यक्ष गन्धर्व, किन्नर आदि असमर्थ हैं।[4] बुद्धिमानों में बुद्धि

त्वं निखिल जगतां कारणमद्ये! चरित्रं ते चित्रं भगवति मनोनो-
गरं वाच्यः सकलनिगमागोचर गुण प्रभावः, स्वं अस्मात् -
नसि परमम् ॥ - देवीभागवत, 1/6/6।

ये च विधत्र्यै सततं नमः ।
ाये च वृद्धसिद्ध्यै नमो नमः ॥

मिदं त्वयि सन्निविष्टं, त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य ।
करणे वितत प्रभावा, ज्ञाताऽधुना सकल लोकमयीति नूनम् ॥

पि वस्तुगतं विभाति, व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थितासि ।
व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तः, बंभण्यते जननि बुद्धिमता जनेन ॥

शक्तिमानों में शक्ति, कीर्ति, कान्ति, लक्ष्मी, विद्या, सन्तुष्टि, रति, विरति तथा मुक्ति देवी ही हैं। ये ही विभूति का सर्वत्र साम्राज्य है।[1] देवी प्राणियों के मोक्ष साधनरूपी कल्याण के लिये ही विश्व की सृष्टि करती हैं, वस्तुत: जिस प्रकार समुद्र की अनन्त लहरें उसकी अनन्तता को ही प्रकट करती हैं उसी प्रकार यह विविधरूपा सृष्टि भी देवी-शक्ति का अणु प्रदर्शन मात्र ही है।

शक्ति का प्रभाव लोकप्रसिद्ध है, सदैव उनका प्रताप लोकरक्षा के लिये समय-समय पर विविध रूपों में प्रकट होता रहता है। वह पाप के विनाश के लिये काल स्वरूपा हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, इन्द्र, वरुण, अग्नि तथा सूर्य, चन्द्र इत्यादि सभी देवता, ऋषि, मुनि आदि देवी के प्रभाव को नहीं जानते, उनकी महिमा अनुपम और अवर्णनीय है।[2] देवी ने संसार के सभी पदार्थों की सृष्टि की है और वही सभी पदार्थों की प्रभावमयी शक्ति हैं। वस्तुत: जिस प्रकार नट अपने बनाये नाटक में स्वच्छन्द विचरण करता है उसी प्रकार देवी संसार में लीला करती है[3]। इन्हीं की शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव

1- विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां, शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव।
त्वं कीर्ति कान्ति कमलामल तुष्टिरूपा, मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके॥

2- ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथा हरिश्च, इन्द्रो यमोऽत्र वरुणोऽग्नि समीरणौ च।
जातु क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा: यस्या: प्रभावमतुलं निगमागमश्च॥

3- त्वं शक्तिरेव जगतामखिल प्रभावा त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम्।
त्वं क्रीडसे च निजविनिर्मित्त मोहजाले नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै॥

अपना ईशत्व स्थापित करते हैं । इसलिये देवी ही सृष्टि की कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता हैं,[1] सुख देने वाली विद्या और क्लेश देने वाली अविद्या दोनों देवी का ही स्वरूप है । योगी लोग मुक्ति प्रदात्री के रूप में उनका ध्यान करते हैं । सभी देवों के समुच्चय के रूप में उनका आविर्भाव हुआ है । जिस प्रकार सेवक गोपाल को गाय अपने दुग्ध से तृप्त करती है उसी प्रकार देवी भी सबको विद्या प्रदान कर तत्व निर्णय में समर्थ बनाती हैं ।[2] वह सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और उसका अन्त करने वाली हैं, वही प्रकट अप्रकटरूपा तथा सबकी आधार स्वरूपा हैं ।[3] वह शुम्भ-निशुम्भ, रक्तबीज, वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसों का विनाश करके देवों का परित्राण करने वाली महामहिमामयी हैं सृष्टि में सर्वत्र वही व्याप्त हैं, वही जगदीश्वरी हैं सहस्रों देवता उन्हीं के अंशभूत हैं और उनकी शक्ति अकल्पनीय है ।[4]

1- ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेश: शक्त्या त्वैव हरते ननु चान्तकाले ।
ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीना: तस्मात्त्वमेव जगत: स्थितिनाश कर्त्री ।।

2- देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा: पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागिस्मानुपसुष्ठुतैतु ।।

3- नमो देवि महाविद्ये सृष्टि स्थित्यन्तकारिणी,
- - - - - - - - - - - - - - - - - -
नमो व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नम: ।।

4- नामस्तुभ्यं भगवत्यै जगदीशायै नित्यश: ।
यस्या अंशभागा सर्वे जाता: देवा सहस्रश: ।।

हरिवंश पु0 में विष्णु पर्व के तृतीय अध्याय में विष्णु द्वारा की गयी आर्या स्तुति में आर्या का मानवी रूप प्रधान है। देवी समस्त संग्रामों में आग से जलते हुये घरों में, दुर्गम स्थानों में, राजा द्वारा बन्धन प्राप्त होने पर प्राणरक्षक और पापरक्षक हैं। विष्णुकृत इस आर्या स्तुति में देवी का स्वरूप बहुत व्यापक है। वह अधीश्वरी, नारायणी, ब्रह्मचारिणी एवं सिद्धसेन हैं। वह सरस्वती स्मृति और धर्मबुद्धि हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण के परिशिष्ट में ललितोपाख्यान तथा अन्य कई तन्त्रग्रन्थों में भण्डासुर बध का वर्णन है। देव कार्यवशात काम भस्म होकर भण्डासुर राक्षस हुआ है। श्री ललिता देवी उसका बध करती है। मत्स्य पुराणानुसार देवी वृत्रासुर का वध करती है।

तृतीय अध्याय

शक्ति-स्तोत्रों में अलंकार, कल्पना सौन्दर्य, गुण एवं छन्द

तृतीय अध्याय

द्वितीय अध्याय में अनेक प्रकार के शक्ति-स्तोत्र बतलाये गये हैं । अब इन शक्ति स्तोत्रों के साहित्यिक अध्ययन हेतु उनमें वर्णित गीतिकाव्यत्व अलंकार, कल्पना सौन्दर्य, गुण एवं छन्दोयोजना पर विचार करना आवश्यक है । इन्हीं साहित्यिक विशेषताओं का इस अध्याय में विवेचन किया गया है ।

गीतिकाव्यत्व

शाक्त स्तोत्र स्तोत्र काव्य होने के कारण गीतिकाव्य के अन्तर्गत परिगणित है । स्तोत्र साहित्य का आध्यात्मिक साहित्य में वही स्थान है जो जन साहित्य में लोकगीतों का । स्तोता अपनी अनुभूति को सघन बनाकर अपने हृदय की भावनाओं को लय एवं माधुर्य के आधार पर अभिव्यक्त करते हैं । स्तोत्रों में विस्तार नहीं गहराई होती है । जीवन के हास-रूदन, सुख-दुख, अनुनय-विनय एवं राम-विराम जितनी सफलता के साथ गेय काव्य में प्रस्तुत किये जा सकते हैं उतनी सफलता के साथ अन्य किसी काव्य विधा में नहीं । किसी भी काव्य को गेय बनाने के लिये दो बातें आवश्यक होती हैं - स्वरचातुर्य एवं शब्दचातुर्य ।

कवियों ने स्तोत्रों में उक्त दोनों प्रकार के चातुर्य को अभिव्यक्त करने के लिये कई स्तोत्रों में आदि यमक, मध्य-यमक, अन्तयमक और महायमक का प्रयोग किया है । जहाँ कुशल शिल्पियों के समान कवि लोग प्रत्येक वर्ण को लय और माधुर्य पूर्वक प्रस्तुत करते हैं वहाँ वे अपने भावों और विचारों को आत्मनिष्ठ भी बनाते हैं । रागयोजना और तालपद्धति का प्रयोग कवियों ने प्राय: प्रत्येक स्तोत्रों में किया है । अत: कवियों को स्वर-संयोग साधने का कार्य सम्पन्न करने में कठिनाई नहीं हुई है । स्वरात्मक, तालात्मक और लयात्मक गुणों का समवाय

करने का उसका प्रयास नितान्त प्रशंसनीय है ।

धार्मिक गीतिपरम्परा में स्तोत्र काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है । प्रांजल एवं मधुर भाषा का कमनीय प्रयोग गीतिकाव्य की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है । गीतिकाव्य का रचयिता आत्मनिष्ठता और वैयक्तिकता का पूर्ण प्रयोग करता है । अत: धार्मिक या स्तोत्र - गीतिकाव्य में प्रेमी के मनोगत भावों का सुन्दर चित्रण भले ही न हुआ हो, पर कल्पना का पुट और अव्याहृत भावान्विति अवश्य पायी जाती है ।[1] हडसन ने गीतिकाव्य में अनुभूति की सघनता और औचित्य आवश्यक माना है । इसमें भाव और भाषा का सामंजस्य अपेक्षित है । उसके कलेवर की लघुता घनीभूत भावों की सान्द्रता ही व्यक्त करती है ।[2] अर्नेस्ट राइस के मत से सच्ची गीति में भाव का भाषा के रूप में प्रस्फुटन होता है । उसमें शब्द और लय का सामंजस्य अभीष्ट भाव को पूर्णतया चित्रित कर देता है तथा पदलालित्य एवं नादमाधुर्य से प्रभावित संगीतमय ध्वनि उसे अभिव्यक्ति की पूर्णता प्रदान करती है ।[3]

वस्तुत: गीतिकाव्य में आत्मनिष्ठा और भावान्विति का रहना उसका आवश्यक गुण है । उसके बिना कोई भी काव्य गीति कोटि में नहीं जा सकता ।[4]

1- लीरिक {इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 14}

2- इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव लिटरेचर - पृ0 126 - 127

3- लीरिक { इन0 ब्रि0 भाग 14 }

4- टिपिकल फोर्म्स ऑव इंगलिश लिटरेचर, पृ0 319

स्तोत्र साहित्य में भक्तिभावना के प्रचार और विकास के लिये धर्मपरक स्तोत्र काव्य लिखे गये हैं । इन काव्यों का उद्देश्य समाज में आध्यात्मिकता, विषयभोगों के प्रति विरक्ति एवं आत्मनिष्ठ भावना को व्यक्त करना है । यही कारण है कि इनकी गणना गीतिकाव्य में की जाती है ।

शाक्त स्तोत्रों में श्रेष्ठ गीति काव्य के समस्त गुण पाये जाते हैं । विद्वानों का मत है कि स्तोत्रकाव्य में संगीत के दोनों तत्व - नाद सौन्दर्य एवं संगीत तत्व - उपलब्ध होते हैं ।[1] यों तो गीतों में जैसी भाव-सघनता और गेयता, समाविष्ट रहती है, वैसी स्तोत्र गीतों में नहीं मिलती पर भावों की अभिव्यक्ति एक ही केन्द्र में निहित रहती है । अत: स्तोत्र-काव्यों को गीतिकाव्य मानने में किसी भी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं है । कवियों ने भक्तविह्वल हो हृदय से जिन स्तोत्रों का उच्चारण किया है, उसमें नाद-सौन्दर्य एवं संगीततत्व पूर्णतया समाहित हैं ।

पंडित ओंकार नाथ ठाकुर ने बताया है, "गीतियकी प्राणधाराएं भाव केन्द्रण एवं संगीत ही हैं । भावघनत्व अनुमेय, ग्राह्य या चर्व्य तभी होता है जब अर्थबोध हो जाता है । लेकिन संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीति हो जाती है । यहाँ तक की शब्द हो या न हो, केवल नाद के बल से ही संगीत में रस की निष्पत्ति होती है "[2]

1- विशेष के लिये द्रष्टव्य : लीरिक (इन॰ब्रि॰, भाग 14)

2- प्रणव भारती पृ0 19, संगीत भारती, हिन्दू विश्व वि0

इसमें सन्देह नहीं कि स्तुतिकर्त्ता केवल स्तोता एवं कवि ही नहीं है अपितु निष्णात संगीतज्ञ भी हैं । वे स्तोत्रों की रचना इस प्रकार करते हैं जैसे वे संगीत के लिये ही प्रस्तुत किये जा रहे हों । धार्मिक गीतों में कितनी संगीतात्मकता निहित की जा सकती है, यह कवियों के स्तोत्र से स्पष्ट है । काव्य, दर्शन, स्वरमाधुर्य, भक्ति एवं तालपद्धति का पंचामृत कवियों के इन स्तोत्र काव्यों में पाया जाता है ।

शक्ति स्तोत्रों या गीतिकाव्यों की निम्नलिखित विशेषताओं के आलोक में मूल्यांकन किया जा सकता है - संगीतात्मकता, रागात्मक अनुभूतियों की इकाई और समत्व; अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता, लयात्मक अनुभूति, जीवन के किसी विशेष पक्ष की अभिव्यंजना एवं समाहित प्रभाव ।

संगीतात्मकता - काव्य का आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है । शब्द एक ओर अर्थ की सृष्टि करते हैं तो दूसरी ओर नाद के द्वारा श्राव्य मूर्त विधान प्रस्तुत मानसिक चित्र एवं नापित वस्तु के सामंजस्य में है । जो वस्तु देखी नहीं गयी है, उसका चित्र मानस चक्षुओं के समक्ष अंकित कर देना ही कल्पना की दक्षता है । गीतिकाव्य का रचयिता कवि रागयोजना और तालपद्धति द्वारा संगीतात्मकता का सृजन करता है ।

संगीत में रागयोजना आवश्यक है ।[1] 'राग' शब्द की निष्पत्ति रज धातु से है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना । अतः स्वरों की वह विशिष्ट रचना

1- 'कन्सेप्शन आँव रागज इज वन आँव द बेसिक प्रिंसिपुल्स आँव द सिस्टम आँव इण्डियन म्यूजिक' द रागाज एण्ड रागिनीज {ओ०सी० गांगुली, पृ० 1}

राग है जिसमें सुनने वाले के चित्त को प्रसन्न करने वाले स्वर तथा वर्ण दोनों हों ।[1] अतएव स्पष्ट है कि अनुकूल राग-विधान द्वारा पद्य अधिक प्रभावशाली एवं प्रेषणीय होते हैं । यों तो स्वर गायन या वादन से भी रसोत्पत्ति सम्भव है, पर स्वर रचना से रसोत्पत्ति अधिक सुगम और सहज होती है ।

सामवेद सात स्वरों का श्रेष्ठ संगीत ही है । यह भी उच्च कोटि का स्तुति काव्य है । अत: ज्ञात होता है कि भारतीय काव्य संगीत का साहचर्य लेकर ही अवतरित हुआ है । संगीत प्रारम्भिक अवस्था में जहां मानवीय हर्ष, उल्लास एवं रुदन की अभिव्यक्ति करता था वहां वह शास्त्रीय बनकर अनेक कृत्रिम बन्धनों की भी सीमा निर्धारित करता है ।

संस्कृत के स्तोत्र काव्य की यह विशेषता है कि राग एवं लय का अनुबन्ध स्वीकार करने पर भी वह मार्मिकता की स्नेहपिच्छल रस धारा का समाहित प्रभाव मानवीय वृत्ति पर डालता है । शाक्त स्तोत्रों में भक्ति की प्रेम पीड़ा, भावोन्माद, मिलनोत्कण्ठा, आत्मसमर्पण एवं आत्मविस्मृति आदिका समन्वय अनुभूति के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित है ।

शाक्त स्तोत्र कर्त्ताओं ने अपने हार्दिक भावों की अभिव्यंजना नाद सौन्दर्य के आधार पर उपस्थित किया है । संगीत और काव्यत्व का ऐसा निर्वाह अन्यत्र सम्भव नहीं है । लय और माधुर्य द्वारा कवियों ने संगीत का तादात्म्य प्रस्तुत किया है । राग, ताल, लय और स्वरमैत्री का विधान सर्वत्र पाया जाता है ।

1- 'बेसिक कन्सेप्ट आॅव हिन्दू म्यूजिक इन राग {डिक्शनरी आॅव म्यूजिक, पृ0332}

2- लिटरेली राग इज समथिंग दैट कलर्स और टिंगेज द माइण्ड विद् सम डेफिनिट फीलिंग्स, ए वेद आॅव पैशन एण्ड इमोशन'{द् रागाज, एण्ड रागिनीज - ओ0 सी0 गांगुली-इंट्रोडक्शन, पृ0 । }

रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व - स्तोत्रकाव्य का रचयिता कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश कर बाह्य जगत् को अपने अन्त:करण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है । यही रंजन की प्रवृत्ति रागात्मक अनुभूति की इकाई कहलाती है । कवि स्वाभाविक गीतमय स्वरलहरी में आत्मानुभूति को उपस्थित कर रागात्मक सान्द्रता का समावेश करता है । गेयत्व और सघन आत्मानुभूति का सामंजस्य स्तोत्रकाव्यों की अपनी एक विशेषता है । कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बताया है, "यह वाह्य जगत् जब हमारे चेतन जगत् में प्रविष्ट होता है तो एकदम कुछ और ही हो जाता है । यद्यपि इसके रूप, रंग एवं ध्वनि आदि सभी ज्यों की त्यों रहते हैं, तो भी वे हमारे संवेदन, भय, विस्मय, हर्ष तथा विषाद आदि से रंजित हो जाते हैं और इस प्रकार यह जगत् हमारे भावों के अनेक गुणों से अनुप्राणित होकर हमारा अपना बन जाता है ।"

अतएव यह मानना तर्कसंगत है कि वाह्य जगत् के साथ तदाकार परिणति कवि की अनुभूति का अवलम्ब है । कवि जब अपनी अनुभूति को एकनिष्ठ बना लेता है और उसकी आन्तरिक भावनायें अत्यन्त सान्द्र हो जाती हैं तब उसमें उत्तम गीतिकाव्य के तत्त्व स्वयमेव प्रस्फुटित हो जाते हैं । जब भाव उद्दीप्त होकर अनुभूति और राग का साहचर्य प्राप्त कर लेते हैं, तब संगीत के अनन्य धर्म-स्वर और ध्वनियों का माधुर्य भी अभिव्यक्त हो जाते हैं ।

अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता - भक्त कवि अपनी स्तोत्र रचना में आत्मनिष्ठता का प्रयोग सर्वाधिक रूप में करता है । वह वैयक्तिक सुख-दु:ख, राग-द्वेष, एवं हर्ष-शोक को व्यक्त करने का सफल प्रयास करता है । आत्मभावना की अभिव्यंजना इतनी

प्रबल रहती है कि कल्पनाशील भावुक कवि वाह्य कारणों को छाड़ आन्तरिक कारणों से ही प्रभावित होता है । वह अपने अन्तरतम से प्रेरणा प्राप्त कर वाह्य संसार से अनासक्त रहता है । चर्मचक्षुओं के स्थान पर मानस-चक्षु अधिक उद्‌बुद्ध होते हैं । वह अपनी भावनाओं को विश्वजनीन बनाने के लिये वैयक्तिक भाव एवं चेतना को आदर्श एवं भावात्मक रूप प्रदान करता है ।

लयात्मक अनुभूति - लय किसी भी गीतिकाव्य का एक आवश्यक गुण है । राग - रागिनियों के न रहने पर भी लयद्वारा संगीत-माधुर्य उत्पन्न होता है । जहाँ कवि सुन्दर छन्दों की योजना करता है, वहाँ लय का समावेश हो जाना कठिन नहीं है ।

राग और कविता के भाव में घनिष्ठ सम्बन्ध है । किस रस में किस राग का प्रयोग होना चाहिए, इसका विवेचन संगीत शास्त्र में विस्तार पूर्वक हुआ है । वर्णों की निश्चित संख्या एवं लघु तथा गुरू का क्रम नियत कर लय का समुचित संयोजन किया है ।

छन्द का सम्बन्ध ताल से है और संगीत का ताल और स्वर दोनों से । संगीत में स्वर तत्व मुख्य है जिसके कारण राग-रागिनियों का वैविध्य मिलता है, पर जहाँ नादसौन्दर्य के आधार पर छन्दोयोजना प्रस्तुत की जाती है वहाँ लय और ताल ये दोनों तत्व मुखरित हो जाते हैं । निर्जीव शब्द भी कितने कोमल सजल, और कलरव से युक्त हो जाते हैं, ये देखते ही बनता है । छन्दोबद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौहचूर्ण की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षण क्षेत्र तैयार कर लेते हैं । उनमें एक प्रकार का सामंजस्य, एक रूप और एक विन्यास आ जाता है जिससे राग

की विद्युत - धारा प्रवाहित होने लगती है ।

जीवन के किसी विशेष पक्ष की अभिव्यंजना - गीतिकाव्य-रचयिता जीवन के किसी विशेष पक्ष को ही ग्रहण करता है । जो कवि भक्ति प्रधान स्तोत्रों की रचना करता है वह अपने दैन्य और करूणाभाव की सर्वाधिक अभिव्यंजना करता है । मेघ, पावस एवं पर्वत आदि उसका भाव-साहचर्य सम्पन्न करते हैं और वह किसी विशेष भाव - चाहे वह प्रणय हो या भक्ति हो, अथवा प्रशस्तिमूलक हो, की अभिव्यक्ति करता है ।

समाहित प्रभाव - गीतिकाव्य का अन्तिम उत्कर्ष, तत्व, भाव और अभिव्यंजना के समन्वय में अनुभूति की अन्विति है । इसके बिना न तो संवेदनशीलता रहती है और न तो उत्तेजना ही प्राप्त होती है । जीवन में ऐसे कम ही अवसर आते हैं, जब मानव की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है । मानसिक प्रतिक्रियाएं सामाजिक आधार रखकर गतिशीलता ग्रहण करती हैं । सहसा दीप्त हो उठने वाले क्षणों में संवेदन - शीलता गतिमति नहीं हो सकती । जिस प्रकार रेखाचित्र में एक रेखा के अभाव में चित्र अपूर्ण रह जाता है और एक रेखा के अधिक होने से चित्र विकृत हो जाता है, उसी प्रकार अनुभूति की अभिव्यंजना में भी न्यूनता या अधिकता होने पर विकृति आ जाती है । अत: अभिव्यंजना में अत्यन्त सावधानी रखनी पड़ती है ।

अलंकार योजना - कवि की काव्य सर्जना में दो प्रधान पक्ष होते हैं, पहला भाव और दूसरा कल्पना । भाव पक्ष में रस, भाव आदि की निष्पत्ति रहती है एवं सम्पूर्ण अलंकार योजना शब्दालंकार या अर्थालंकार कल्पना पक्ष में पड़ते हैं । कवि अपनी प्रतिभा के सहारे नव - 2 उन्मेष करता हुआ वस्तु वर्णन को एक सप्तरंगी

परिधान देता है फलत: उसके शब्द एवं अर्थ दोनों ही कल्पना के पंखों पर उड़ते हैं । प्रतिभा के धनी होने के कारण शब्द सुन्दर सज-धज के साथ उसकी लेखनी से प्रसूत होते चलते हैं और अर्थयोजना उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, संशय, भ्रान्तिमान आदि अनेक परिधानों में सारे काव्य गगन को सप्तरंगी बना देता है । कवि की कल्पना जितनी ही समृद्ध होगी उतनी ही अलंकारों का उत्कृष्ट सौन्दर्य देखने को मिलेगा और यदि कवि की सहृदयता उत्कृष्ट नही तो वह सारी अलंकार की योजना और अलंकार कल्पना भावों और रसों की अभिव्यक्ति में सहायक बनकर काव्य को यथार्थत: उत्तम कोटि का बनाती है । काव्यकामिनी के शोभावर्द्धक धर्म को अलंकार कहते हैं ।[1] रस के अंग अर्थात रस व्यंजना के उपकरण - रूप जो शब्द तथा अर्थ हैं, अलंकार उनमें उत्कर्ष की स्थापना करते हैं और शब्द तथा अर्थ की शोभा बढ़ाते हुए काव्य की आत्मा रस के भीउत्कर्षक हो जाते हैं । ठीक इसी प्रकार जैसे हार आदि आभूषण कण्ठ आदि की शोभा बढ़ाते हुए कामिनी - सौन्दर्य के वर्द्धक होते हैं अत: ये रस के धर्म नहीं हैं तथा रसधर्मरूप गुणों से पृथक हैं । ये अनुप्रास तथा उपमा आदि अलंकार कहलाते हैं ।[2] ये रस के उपकारक होते हैं । यों तो मधुराकृति के लिये मण्डन की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु क्रम एवं संगति की दृष्टि से अलंकार का रहना अनिवार्य है ।[3] भावनाओं के प्रवाह

1- तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा: । - काव्यालंकार सूत्रवृत्ति

2- उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादय: ।। - काव्य० प्र० , अष्टमउल्लास,67

3- किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनां । - अभिज्ञान शा०, 1/19

में अलंकार स्वयं ही पुष्पगुच्छ की तरह प्रस्फुटित होकर सुन्दरता उत्पन्न कर देते हैं । अत: भावों का उत्कर्ष दिखलाने और वस्तुओं के रूप गुण एवं क्रिया का तीव्र अनुभव कराने के लिये उक्तिवैचित्र्यरूप अलंकार की आवश्यकता पड़ती है ! अलंकारों के प्रयोग के उद्देश्य हैं - भावों का उत्कर्ष दिखलाना, वस्तुओं के रूप और अनुभव को तीव्र करना, गुण के अनुभव को तीव्रतम बनाना एवं क्रिया के अनुभव को सहज रूप में उपस्थित करना ।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अलंकार काव्य के लिये आवश्यक धर्म हैं, क्योंकि वक्तव्य को चमत्कारपूर्ण बनाने का कार्य अलंकार द्वारा ही सम्भव होता है । वस्तुत: किसी कथन का सामान्य जन की साधारण बोलचाल से भिन्न विचित्र और चमत्कार पूर्ण शैली में कथन करना ही अलंकार है । यह उक्ति वैचित्र्य अनेक प्रकार का होता है अतएव अलंकार भी भिन्न- 2 प्रकार का है और उनकी भिन्नता निर्धारित करना सम्भव नहीं ।

स्तोत्रकाव्यों में अलंकारों की योजना दो प्रकार से हुई है - सायास और अनायास सायास अलंकारों के मध्य उन शब्दालंकारों की गणना की जा सकती है जहाँ स्तुतिकारों ने यमक, अनुप्रास और श्लेष की बुद्धि पूर्वक योजना की है । पूर्वोक्त स्तोत्रों में ये अलंकार प्राप्त होते हैं । यमक के समस्त भेदों यमकालंकार की योजना किसी सुनिश्चित रूपरेखा के आधार पर ही की गयी है । यमक का ऐसा सुन्दर नियोजन महाकाव्यों में भी कम ही उपलब्ध होता है । इन अलंकारों में भिन्नार्थता के साथ वर्णावृत्ति या शब्दावृत्ति हुई है । यमक अलंकार में आवृत्त

निरर्थक नहीं, सार्थक होते हैं। ऐसा लगता है कि स्तुतिकारों का भाषा और पदावली पर अपूर्व आधिपत्य है। उन्होंने आदि मध्य एवं अन्त यमक की जो योजना की है वह योजना कृत्रिम नहीं लगती है।

अनुप्रास - रसानुकूल होने के कारण अनुप्रास अलंकार का अन्य शब्दालंकारों मे प्रथम स्थान है। रसभावादि के अनुकूल वर्ण तथा शब्दों की इस प्रकार की योजना करना कि उनके बीच में अधिक व्यवधान न हो अनुप्रास अलंकार है। वर्णों के साम्य का नाम अनुप्रास है। अनुप्रासों की योजना शब्दों में आदि-अन्त के अक्षरों की आवृत्ति से होती है। आचार्यों ने छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास ये पाँच भेद माने हैं।

> उदंचन्मात्सर्य स्फुट कपट हेरम्ब जननी,
> कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहा: ।
> भवन्तु त्वंगन्तो हरशिरसि गांगा पुनरमी,
> तरंगा: प्रोत्तुंगा दुरितभरभंगाय भजताम् ।। - गंगालहरी - 7

यहाँ तरंगा: प्रोत्तुंगा में 'ङ' तथा भरभंगाय भजताम् में 'भ' व्यंजनों के साम्य के कारण अनुप्रास अलंकार है।

श्लेष - श्लेष में अर्थ-भेद के कारण भिन्न - 2 होकर भी शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए संयुक्त {चिपके} प्रतीत होते हैं। यह शब्द और अर्थ दोनों में होने के कारण शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष दो रूपों में होता है। जहाँ श्लेष मूलत: शब्दाश्रित रहता है वहाँ शब्दश्लेष होता है। अभंग और सभंग भेद से यह दो प्रकार का होता है।

नखैर्नाकिस्त्रीणां करकमलसंकोचशशिभि:

तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ ।

फलानि स्व:स्थेभ्य: किसलयकराग्रेण ददतां

दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियं अनिशमह्नाय ददतौ ।। - सौन्दर्य लहरी - 89

इस श्लोक में 'स्व:स्थेभ्य: ' इस शब्द में श्लेष अलंकार है ।

साहाय्यकं गतवती मुहुरर्जुनस्य

मन्दस्मितस्य परितोषितभीमचेता: ।

कामाक्षि पाण्डवचमूरिव तावकीना

कर्णान्तिकं चलति हन्त कटाक्षलक्ष्मी: ।। - कटाक्षशतकम् - 5

यहाँ पर उपमान पाण्डवचमू तथा उपमेय कटाक्षलक्ष्मी में साधर्म्य तथा कर्ण, भीम आदि शब्द श्लेष मूलक है, अत: श्लेषोपमा अलंकार है ।

उपमा- आलंकारिक उपमा को अलंकार वृक्ष का बीज मानते हैं । उपमा के अनेक भेद प्रभेद हैं ।

धुनोति ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं

घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्बं तव शिवे ।। - सौ० ल०, 43 का पूर्वार्द्ध

यहाँ भगवती के 'स्निग्ध केशों ' को विकसित कमलवन के सदृश बताया गया है । अत: उपमा स्पष्ट है । व्यंगत उपमा के माध्यम से कवि ने हँसी के द्वारा संपादित विभिन्न आचरणों का कितना सुन्दर चित्रण किया है -

या पीनस्तनमण्डलोपरि लसत्कर्पूरलेपायते

या नीलेक्षणरात्रिकान्तितीतषु ज्योत्स्नाप्ररोहायते ।

या सौन्दर्यधुनीतरंगततिषु व्यालोलहंसायते

कामाक्ष्या शिशिरीकरोतु हृदयं सा मे स्मितप्राचुरी ।। -मन्द०श० - 4

इसमें लेपायते, प्ररोहायते, हंसायते आदि व्यंगत उपमा के सुन्दर प्रयोग है ।

उत्प्रेक्षा - जब उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है । भगवती के भक्तवत्सल दृष्टि का कितना स्वाभाविक त्रितीर्थवत रूप प्रस्तुत किया गया है -

पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये

दयामित्रैर्नेत्रैः अरूणधवलश्यामरूचिभिः ।

नदः शोणो गंगा तपनतनयेति ध्रुवमम्

त्रयाणां तीर्थानां उपनयसि संभेदमनघम् ।। - सौन्द० ल० - 54

यहाँ पर स्वभावसिद्ध नयनगत रेखात्रय श्वेत, श्याम तथा रक्तवर्ण का - गंगा, यमुना एवं शोण के संगम में सम्भावना की जाने से उत्प्रेक्षा है । नयनगत रेखात्रय उपमेय तथा गंगा यमुना शोण उपमान है ।

श्रीकामकोटि शिवलोचनशोषितस्य

श्रृंगारबीजविभवस्य पुनः प्ररोहे ।

प्रेमाम्भसाऽऽर्द्रमचिरात् प्रचुरेण शंके

केदारम्ब तव केवलदृष्टिपातम् ।।-कटाक्ष शतकम , 19

यहाँ पर श्लोक में प्रयुक्त शंके शब्द से उत्प्रेक्षालंकार है ।

रूपक - भिन्न - 2 प्रकट होने वाले उपमान तथा उपमेय में अभेद का आरोप ही रूपक है । यह अभदारोप अत्यन्त साम्य के कारण होता है । इसके अनेक भेद प्रभेद हैं -

असौ नासावंश: तुहिनगिरिवंशध्वजपटि

त्वदीयो नेदीय: फलतु फलमस्माकमुचितम् ।

वहत्यन्तर्मुक्ता: शिशिरकरनिश्वासगलितं

समृद्धया यत्तासां बहिरपि स मुक्तामणिधर: ।। - सौन्द0 ल0, 61

इस श्लोक में वंशत्व आरोप विषय का नासिका उपमेय पर अभदारोप होने के कारण रूपक अलंकार है ।

परम्परित रूपक के माध्यम से कामाक्षी के मन्दस्मित का कितना स्वाभाविक चित्रण किया गया है -

श्रीकांचीपुरदेवते मृदुवव: सौरभ्यमुद्रास्पदं

प्रौढप्रेमलतानवीनकुसुमं मन्दस्मितं तावकम् ।

मन्दं कन्दलति प्रियस्य वदनालोके समाभाषणे

श्लक्ष्णे कुड्मलति प्ररूढपुलके चाश्लेषणे फुल्लति ।। - मन्द 0 - 82

इस श्लोक में 'प्रौढप्रेमलतानवीनकुसुमं मन्दस्मितं' में परम्परित रूपक है । समस्त वस्तुविषयक रूपक का कमनीय उदाहरण महालक्ष्मी की दृष्टि के वर्णन प्रसंग में द्रष्टव्य हैं -

दद्याद्दयानुपवनो द्रविणां बुधाराम -

स्मिन्नकिंचनविहंगशिशौ निषण्णे ।

दुष्कर्मधर्मपनीय चिराय दूरा -

न्नारायण प्रणयिनीनयनाबुवाह: ।। - कनकधारा स्तोत्र - 9

यहाँ नयन, दया, दुष्कर्म एवं द्रविण रूप उपमेय पर क्रमश: अम्बुवाह:, अनुपवन· धर्मम् और अम्बुधारा रूप के उपमान के आरोप होने से रूपक अलंकार है । चूंकि यहाँ उपमेय के समान उपमान भी शब्दत: उपात्त है, अत: समस्त वस्तु विषयक रूपक है ।

विरोधाभास - जहाँ वस्तुत: विरोध न होने पर भी दो वस्तुओं का विरूद्धों के समान वर्णन किया जाता है । वह विरोधाभास अलंकार है ।

शिवे शृंगाराद्रा तदितरजने कुत्सनपरा
सरोषा गंगायां गिरिशचरिते विस्मयवती ।
हराहिभ्यो भीता सरसिरूहसौभाग्यजननी
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टि सकरूणा ।। - सौन्द0 ल0 - 51

यहाँ पर परस्पर विरूद्ध रसों का एक ही दृष्टि में समावेश रूप कथन के कारण विरोधालंकार है । अवस्था भेद के परिहार से उसके विरोध का आभास होने के कारण विरोधाभास अलंकार है ।

अर्थान्तरन्यास - जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न विशेष या सामान्य द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है -

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरूचा
दवीयांसै दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकर: ।। - सौन्द0 ल0 - 57

यहाँ पर हिमकर 'वने वा हर्म्ये वा समकर निपात:' इस सामान्य बात का समर्थन 'नीलोत्पलरूचा दवीयांसं दीनं स्नपय' इस विशेष बात से किया गया है । अतः अर्थान्तरन्यास है ।

सन्देह - जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान रूप में संशय हुआ करता है वहाँ सन्देह अलंकार होता है । वह दो प्रकार का है - निश्चयगर्भ और निश्चयान्त ।

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभि: सान्द्रघटितं
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति य: ।
स नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं
धनु: शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ।। सौ० ल० - 42

भगवती के किरीट में चन्द्रशकल अथवा इन्द्रधनुष का सन्देह होने से सन्देह अलंकार है ।

भ्रान्तिमान - जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय को उपमान रूप में समझ लिया जाता है वह भ्रान्तिमान अलंकार है -

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा
गम्भीरे ते नाभीसरसि कृतसंगो मनसिज: ।
समुत्तस्थौ तस्मात् अचलतनये धूमलतिका
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति ।। - सौ० ल० - 76

इस श्लोक में 'रोमरेखा' में धूमरेखा की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान है ।

अतिशयोक्ति - अतिशयोक्ति का अर्थ है - 'अतिशयिता प्रसिद्धम् अतिक्रान्ता लोकातीता उक्ति: ।'

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो:

तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकव ते ।

असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते

पशूनामीशान: प्रमदवनेकङ्केलितरवे ।। - सौ० ल० - 85

इस श्लोक में भगवती के पादाघातु के लिये लालायित अशोक से पशुपति {शिव} की ईर्ष्या का वर्णन असम्बन्ध में सम्बन्ध का निबन्धन है ।

निदर्शना - जहाँ उक्त पदार्थों या वाक्यार्थों का अन्वय नहीं बन पाता है तथा वह उपमानोपमेय भाव में परिणत हो जाता है वह निदर्शना अलंकार दो प्रकार का होता है - वाक्यार्थ निदर्शना और पदार्थ निदर्शना ।

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितु: कण्टकवती

तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनाल श्रियमियम् ।

स्वत: श्वेता कालागरूबहुलजम्बालमलिना

मृणालीलालित्यं वहति यदधो हारलतिका ।। - सौ० ल० - 68

इस श्लोक में 'मुख कमलनाल श्रियमियम्' पद में नालश्री की भाँति श्रीपदों का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट है । इसी प्रकार उत्तरार्ध में लालित्य सदृश लालित्य का वर्णन भी बिम्ब प्रतिबिम्ब युक्त है । अत: सम्पूर्ण श्लोक में निदर्शना है ।

व्यतिरेक - व्यतिरेक वह अलंकार है जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का गुण विशेष के द्वारा उत्कर्ष {व्यतिरेक} वर्णित किया जाता है ।

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ

निशायां निद्राणं निशि चरमभागे च विशदौ ।

वरं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां

सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतिश्चित्रमिह किम् ।। - सौ०ल० - 87

यहाँ पर भगवती के चरणों का सरोज से श्रेष्ठ होने का वर्णन है ।

अत: व्यतिरेक अलंकार है ।

विशेषोक्ति - जहाँ प्रसिद्ध कारणों के मिलने पर भी कार्य उत्पत्ति का नहीं किया जाता है वह विशेषोक्ति अलंकार है । वह उक्तनिमित्ता, अनुक्तनिमित्ता और अचिन्त्य निमित्ता तीन प्रकार का है । स्मित के विविध उपाख्यानों का कवि ने बड़ी ही मार्मिकता से चित्रण किया है -

कर्पूरैरमृतांशुभिर्जननि ते कान्तैश्च चन्द्रातपै -

र्मुक्ताहारगुणैर्मृणालवलयैर्मुग्धस्मितश्रीरियम् ।

श्रीकांचिपुरनायिके समतया संस्तूयते सज्जनै -

स्तातादृगम्ग तापशान्तिविधये किं देवि मन्दायते ।। मन्द० - 24

इस श्लोक में विशेषोक्ति अलंकार है क्योंकि ताप शान्ति के कारण के होते हुये भी कार्य का अभाव कहा गया है ।

विभावना - जहाँ प्रसिद्ध कारणों के अभाव में भी कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाता है वहाँ विभावना अलंकार होता है ।

धनु: पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंच विशिखा:

वसन्त: सामन्तो मलयमरुदायोधनरथ: ।

तथाऽप्येक: सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपां

अपांगात्ते लब्ध्वा जगदिदमनंगो विजयते ।। - सौ० ल० - 6

काम का विजय साधनों के अभाव में भी विजयोत्पत्ति का वर्णन होने से यहाँ विभावना अलंकार स्पष्ट होता है ।

तद्गुण - अपने रूप का त्यागकर दूसरे के उत्कृष्ट गुण को ग्रहण करने का अनूठा वर्णन ही तद्गुण अलंकार है ।

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाम्रेडनजपा

जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वाजयति सा ।

यदाग्रासीनाया: स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी

सरस्वत्या मूर्ति: परिणमति मणिक्यवपुषा ।। - सौ० ल० - 64

देवी के रक्तजिह्वाग्र में बसी हुयी सरस्वती स्फटिक की भाँति स्वच्छ मूर्ति माणक के समान लाल हो जाती है अत: यहाँ तद्गुण अलंकार है ।

गतास्ते मंचत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृत:

शिव: स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपट: ।

त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया

शरीरी शृंगारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ।। सौ० ल० - 92

यहाँ भगवती की रक्तिमय कान्ति का शिवजी की धवल छाया के द्वारा ग्रहण किये जाने के कारण तद्गुण अलंकार स्फुट है ।

दृष्टान्त - जहाँ उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य में उपमान, उपमेय और साधारण धर्म सभी का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है और दोनों वाक्यार्थों में सादृश्य होता है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है ।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकर नीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम् ।। - सौ०ल० 100

यहाँ पूर्वार्द्ध का उत्तरार्द्ध में बिम्ब प्रतिबिम्बाक्षेप होने से दृष्टान्त अलंकार है ।

काव्यलिंग - कवि कल्पित अर्थ के उपपादन के लिये हेतु कथन ही काव्यलिंग अलंकार है । यह हेतु दो प्रकार से सम्भव है - वाक्यार्थ और पदार्थ रूप में ।

तवापर्णे कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिता
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः ।
इयं च श्रीर्बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ।। - सौ०ल० - 56

यहाँ नेत्रों द्वारा किये जाने वाले पेशुजन्य से मछलियों का भयभीत होना काव्यलिंग व्यक्त करता है ।

अपह्नुति - जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान की सिद्धि की जाती है अर्थात उपमेय को असत्य बतलाकर उपमान को सत्य रूप में स्थापित किया जाता है, वह अपह्नुति अलंकार शाब्दी तथा आर्थी दो प्रकार का होता है ।

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा
शरीरार्धं शम्भोः अपरमपि शङ्के हृतमभूत् ।
यदेतत् त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमकुटम् ।।

यहाँ शिव अर्धनारीश्वर रूप का प्रतिषेध पूर्वक भगवती के पूर्ण रक्तिम वपु में व्यवस्थापन का वर्णन होने से अपह्नुति है ।

संसृष्टि - जहाँ शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की परस्पर निरपेक्ष रूप (स्वतन्त्र रूप) से एक स्थान पर स्थिति होती है वह संसृष्टि अलंकार है । वह शब्द में, अर्थ मे तथा शब्द और अर्थ दोनों में होने से तीन प्रकार की होती है ।

नखानामुद्योतै: नवनलिनरागं विहसतां
कराणां ते कान्तिं कथय कथयाम: कथमुमे
कस्यचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं
यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारसचरणम् ।। - सौ० ल० - 71

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है । पूर्वार्द्ध में तद्गुणालंकार है । 'नवनलिनरागं विहसतां ' इस पद में उपमालंकार है । इन सभी के मेल से संसृष्टि है ।

संकर - दो या अधिक अलंकारों का परस्पर सापेक्षभाव से एकत्र स्थिति ही संकर अलंकार है । वह तीन प्रकार का है - अंगांगिभाव, सन्देह और एकप्रति - पाद्य संकर ।

तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी -
परीवाहस्रोत: सरणिरिव सीमन्तसरणि: ।
वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर -
द्विषां बृन्दै: बन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम् ।। - सौ० ल० - 44

यहाँ पर 'सीमन्तसरणि' की 'स्रोत:सरणि' में सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है । कबरीभार में तिमिरत्व का आरोपण करने से रूपकालंकार है तथा दोनों में अंगांगिभाव संकर है ।

अलंकार योजना का प्राणभूत तत्व अप्रस्तुत या उपमान है । कवि लोग अपनी कल्पना के विस्तार के लिये अप्रस्तुतों का चयन करते हैं और इन अप्रस्तुतों को इस प्रकार व्यवहृत करते हैं, जिससे प्रस्तुत अर्थ में चमत्कार या वैचित्र्य उत्पन्न होता है । अतएव किसी भी काव्यकृति के रचयिता की अलंकार-योजना के प्राणभूत तत्व अप्रस्तुत या उपमान होते हैं । केवल साम्य मूलक अलंकारों के प्रयोग में ही अप्रस्तुत या उपमानों का महत्व नहीं है किन्तु वैषम्यमूलक, श्रृंखलामूलक और न्यायमूलक अलंकारों के व्यवहार में भी अप्रस्तुतों का महत्व कम नहीं है । अप्रस्तुत योजना के अभाव में अलंकारों का संयोजन चमत्कार का सृजन कर ही नहीं सकता है । रसोत्कर्ष और भावों की तीव्रता भी अभुक्त उपमान या नवीन अप्रस्तुत-योजना से ही सम्भव होती है । जो कवि या लेखक पुराने पिष्टपोषित उपमानों का व्यवहार करता है, उसकी अलंकार-योजना में मौलिकता नहीं आ पाती है । अतएव कुशल कवि अपनी अप्रस्तुत योजना द्वारा अलंकारों को एक नया ही रूप प्रदान करता है ।

कल्पना सौन्दर्य :- प्राय: यह देखा जाता है कि जो वस्तु जितनी ही निकटवर्ती एवं चिरपरिचित होती है उसकी परिभाषा निर्धारण की समस्या उतनी ही जटिल एवं दुरूह होती है । सौन्दर्य के विषय में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है उसकी अनुभूति जितनी ही सहज-सरल, कमनीय और स्पृहणीय है परिभाषा निर्धारण की समस्या उतनी ही जटिल, दुर्बोध और असाध्य है ।

विभिन्न विद्वानों ने उसकी परिभाषा विभिन्न दृष्टियों से की है । कोई उसके आत्मगत पक्ष को महत्व देता है कोई उसके वस्तुगत पक्ष को, कोई उसका अस्तित्व उसकी किसी एक विशेषता में मानता है तो कोई उसकी अन्य विशेषता में ।

रस प्रसंग में प्राय: जिस सौन्दर्य की ओर संकेत किया जाता है उसका उद्देश्य सौन्दर्य का शास्त्रीय विवेचन नहीं माना जाता । सौन्दर्य साहित्यिक सृष्टि का मूलाधार है उसके अभाव में मानव अस्तित्व सम्भव नहीं है । मानव प्रकृति एवं वस्तु, आन्तरिक एवं वाह्य, स्थूल एवं सूक्ष्म आनुभूतिक एवं अभिव्यक्ति सौन्दर्य के बहुविध रूपों की नींव पर ही उनके ईंट गारे एवं पत्थरों से ही साहित्य के विराट भवन का निर्माण होता है । सौन्दर्य के भव्यरूपों के साक्षात्कार से आत्मविभोर एवं आनन्द विह्वल साहित्यकार उनकी अभिव्यक्ति के लिये व्याकुल हो माता वागीश्वरी की शरण लेता है और तभी उसकी कलम कूर्चिका से साहित्यिक सौन्दर्य के शत-शत रूपों एवं भव्यतिभव्य चित्रों की सृष्टि होती है ।

मानव सौन्दर्योपासक प्राणी है । वह सौन्दर्य से जितना अभिभूत होता है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं । सौन्दर्य के प्रति सहज आकर्षण एवं कुरूपता के प्रति विकर्षण मानव की जन्म-जात प्रवृत्ति है । सौन्दर्य का प्रभाव अमोघ है । मानव ही नहीं प्रकृति के जड़ रूप के भी सौन्दर्य का साक्षात्कार करके कविजन धन्य हो उठते हैं । सच्चा कवि सौन्दर्य के इन सभी रूपों पर और अपने हृदय के योग द्वारा कल्पना एवं यथार्थ के ताने बाने के साहित्यिक सौन्दर्य का वह दिव्य-पट बुनता है जिसका साक्षात्कार कर

मानव अपनी पृथक सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कर अपना जीवन सार्थक समझता है । साहित्य का एकमात्र विषय सौन्दर्य है चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में हो अथवा परोक्ष रूप में । कवि वस्तुत: जीवन में देखे हुये सौन्दर्य को वाणी देता है । उसका साधन एवं साध्य सब कुछ सौन्दर्य है ।

कवि सर्वाधिक भावुक होता है । वह सौन्दर्य से प्रभावित होता है किन्तु वह कृपण के धन के समान अपने अनुभूत सौन्दर्य रत्नों को अपनी हृदय मंजूषा में छिपाकर नहीं रखता प्रत्युत निकाल-निकाल कर और संवारकर संसार के समक्ष रख कर उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करता है । उसकी महत्ता से अभिभूत करके सहृदयों के हृदय पर उनका सिक्का जमा देता है ।

साहित्यिक सौन्दर्य के स्थूलत: दो वर्ग किये जा सकते हैं - आनुभूतिक एवं अभिव्यक्ति । आनुभूतिक सौन्दर्य कवि की अनुभूति का विषय है और अभिव्यक्ति उस अनुभूति अथवा कला का । आनुभूतिक सौन्दर्य का भी मोटे तौर पर दो वर्ग किये जा सकते हैं - वाह्य एवं आन्तरिक । अभिव्यक्ति अथवा कलागत सौन्दर्य के वर्ग हैं - रसगत सौन्दर्य, आलंकारिक सौन्दर्य, कल्पनागत सौन्दर्य इत्यादि । वाह्य सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य के अस्तित्व का संकेतक है - वाह्य सौन्दर्य के अभाव में आन्तरिक सौन्दर्य की ओर प्राय: ध्यान ही नहीं जाता । नारी सृष्टि की रम्यतम उपकरणों के सौन्दर्य का निचोड़ है, उसका दिव्य भव्य रूप समग्र सृष्टि की प्रशंसा का विषय है । यही कारण है कि कवि उसे कल्पना लोक की परी समझकर उसके सौन्दर्य का चित्रण करता है ।

कल्पना साहित्य की सहचरी है । उसके अभाव में साहित्य की सृष्टि सम्भव नहीं । काव्य जगत का समस्त वैभव और उसका समस्त आनन्द है । इसीलिये कहा है - "साहित्य कल्पना का नाम है, कल्पना आनन्ददायक होती है, इसी नाते साहित्य भी आनन्द का स्वरूप माना जा सकता है ।" साहित्य के बल पर साहित्यकार अतीत वर्तमान एवं भविष्य में विचरण करता है और सहृदय-हृदय संवेद्य कृतियाँ प्रस्तुत करता है । कह सकते हैं कि जिस प्रकार संसार की सृष्टि ब्रह्मा की शक्ति राधा, लक्ष्मी अथवा सीता के बिना सम्भव नहीं उसी प्रकार काव्य संसार की सृष्टि भी कवि पुरुष की प्रेयसी रानी के बिना सम्भव नहीं है । बाह्य सौन्दर्य हृदय में भावुकता उत्पन्न होने पर स्वत: बढ़ जाता है । यह चक्षुग्राह्य रूप सौन्दर्य सचमुच बड़ा प्रभावपूर्ण होता है । इसमें इन्द्रिय तृप्ति और हृदयतुष्टि होती है ।

<u>शक्ति स्तोत्र में रूप सौन्दर्य (स्थूल-सूक्ष्म) दोनों का विवेचन</u> - शृंगार की परिधि में सामान्यत: जिस सौन्दर्य का चित्रण किया गया है वह मानव रूप सौन्दर्य है साथ ही स्त्री रूप सौन्दर्य का ही आधिक्य है । भारतीय चिन्तकों की मूलगत सौन्दर्य-भावना ने कवियों के रूप वर्णन को अत्यधिक प्रभावित किया है । सौन्दर्य-वर्णन में प्रधान रूपेण दो बातें पायी गयीं । प्रथम मानवरूप के सौन्दर्य में दिव्यता एवं अलौकिकता का सन्निवेश । द्वितीय-प्रकृतिगत सौन्दर्य ही इसका आदर्श । इन्हीं दो बातों को मूल में रखकर भारतीय कवियों ने सौन्दर्य वर्णन किया है और अनेक स्तोत्र ग्रन्थों में भी दिव्यता का निरूपण

सौन्दर्य की परिधि से अपने को मुक्त न रख सका । कवि या उपासक अपने उपास्य देव का सौन्दर्य वर्णन करना प्रारम्भ करता है वहाँ उसे मात्र दिव्यता का निखार ही नहीं दिखाना है अपितु प्रकृतिगत सौन्दर्य का भी समावेश करना है । अत: दिव्यता एवं निसर्गज सौन्दर्य दोनों का समान रूप से निर्वाह करने वाला उपासक सौन्दर्य वर्णन करते समय अपने को यथार्थ की भावभूमि से अलग नहीं कर सकता ।

भारतीय कवियों ने नारी के सौन्दर्य चित्रण में जिन स्वस्थ, मांसल आयामों को ग्रहण किया है उसमें सूक्ष्मता के साथ कामोद्दीपक शक्ति को भी ग्रहण किया गया है । सौन्दर्य में प्रतिक्षण भासमान नवलता पायी जाती है जो एक बार अखण्ड योगी को भी विचलित करने का सामर्थ्य रखती है । कुमारसम्भव में शंकर का समाधि के बाद पार्वती द्वारा माला पहनाते समय काम के प्रभाव से जो इन्द्रिय क्षोभ उत्पन्न हुआ था वह इस सौन्दर्य का प्रभाव था किन्तु अखण्ड योगी शंकर ने अपने इन्द्रिय क्षोभ को नियंत्रित कर लिया था । ऐसा सौन्दर्य निश्चित रूप से उपासक को भी एक बार शृंगारिक भावनाओं से ओत-प्रोत करता हुआ सहज वर्णन के लिये उद्यत कर देता है । यही कारण है कि अनेक उपासक कवियों ने देवी को भी सौन्दर्य वर्णन में अपनी अनूठी कला का प्रदर्शन किया है ।

भारतीय साधना में जिन नाना देवियों का ग्रहण हुआ है उनकी सौन्दर्य-सम्पदा को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है । साधक का मनस्तत्व ऐसा प्रतीत होता है जो मांसल सौन्दर्य के अभाव में अपने उपास्य के निदिध्यासन

में संलग्न हो ही नहीं सकता है । दीप्तिमयता, कोमलता, अबलता तथा सुकुमारता स्त्री सौन्दर्य के आकर्षक धर्म माने गये और इनका समावेश आराध्य के सौन्दर्य में भी किया गया है । सौन्दर्य वर्णन की यही आकर्षण की भावना है जिसने शास्त्रीय प्रणाली का रूप लेकर 'नख-शिख' वर्णन या 'शिख-नख' वर्णन परम्परा के रूप में विकसित हुई ।

काव्य निर्माण में दो दृष्टियाँ कार्यशील होती हैं । प्रथम दृष्टि वह है जो सौन्दर्य के मनोभावों को ग्रहण करती हैं तथा वहीं समाप्त हो जाती हैं । द्वितीय दृष्टि वह है जो सौन्दर्य के स्थान पर उसकी अनिवार्यता एवं उसकी उपयोगिता का ध्यान करती है तथा ज्ञान-विज्ञान की सीमा का स्पर्श करती है । दोनों दृष्टियाँ अलग हैं । सौन्दर्य अपने विशेष आकर्षण से आत्मतृप्ति तथा आत्म-सन्तोष की आकांक्षा को ग्रहण कर अपने में पूर्ण हो जाता है । फलत: अन्तर्जगत तथा वाह्य जगत परस्पर प्रवेश करते हुये तथा उसके भिन्नता-अभिन्नता के रूप में परिलक्षित होते हैं । इसके लिये अन्त: प्रेरणा आवश्यक है ।

सौन्दर्य के दो पक्ष हैं - इन्द्रियजनित तथा आध्यात्मिक । प्रथम का प्रतिफलन सुख में होता है तथा दूसरे का आनन्द में । सुख एवं आनन्द का स्थूल प्रतीक सौन्दर्य है । अत: गीति काव्य निर्माता कवि आध्यात्मिक सौन्दर्य को ग्रहण करके अपने काव्य का प्रणयन अन्त: प्रेरणा से करता है ।

गुण योजना - स्तोत्रों में माधुर्य ओज और प्रासाद इन तीनों गुणों का समावेश होता है । ये रस के आश्रयभूत हैं । माधुर्य गुण द्वारा शृंगार रस की व्यंजना

ओज गुण द्वारा रौद्रादि रसों की व्यंजना और प्रसाद गुण द्वारा समस्त रसों की व्यंजना होती है । चूंकि शक्ति स्तोत्र संगीतमय और छन्दमय होते हैं अतएव उनमें प्राय: माधुर्य गुण ही होता है जैसा कि सौन्दर्य लहरी के सम्पूर्ण स्तोत्रों में माधुर्य गुण है । वाक्य में जो पृथक् पदता है वह माधुर्य-गुण का द्योतक है ।[1] इस लक्षण के आधार पर इस ग्रन्थ में सर्वत्र माधुर्य गुण का समावेश है । इसमें सुन्दर बन्ध, माधुर्यवृत्त तथा अल्प समास पदावली का निदर्शन है । शक्ति स्तोत्रों में तीनों ही गुणों का आवश्यकतानुसार सुरुचिपूर्ण समावेश किया जाता है ।

<u>छन्दो-योजना</u> - स्तोत्र काव्य में संगीत का आधार छन्द होता है । जो कवि छन्दोयोजना में जितना पटु होता है, उसके काव्य में संगीत - तत्व उतना ही अधिक विकसित होता है । काव्यरूपों के मूल में छन्द एक आवश्यक घटक है । यदि वाक्य भाषा की इकाई है तो छन्द भाषा की भंगिमा है । अत: जब भाषा में परिवर्तन होता है तो छन्दों में भी परिवर्तन हो जाता है । छन्दों का माधुर्य काव्य रूपों को सुदृढ़ तो बनाता ही है, साथ ही कविता में लय और स्वरमाधुर्य भी उत्पन्न करता है । कुशल कवि रसों के अनुकूल छन्दोयोजना कर काव्य को रसमय बनाते हैं । विभिन्न प्रकार के छन्दों की योजना पृथक - पृथक रस, भाव और अलंकार की व्यंजक है । यदि श्रृंगार रस के व्यंजक छन्दों का कवि प्रयोग करता है तो इसके द्वारा श्रृंगार रस की विशेष पुष्टि होती है । निष्कर्ष यह है कि केवल शब्दयोजना ही काव्य में रससिद्धि के लिये पर्याप्त नहीं है, उसके लिये छन्दोयोजना भी अपेक्षित है ।

1- या पृथक्पदता वाक्ये तन्माधुर्यं प्रकीर्त्यते ।

जो कवि छन्द: साधना करना चाहता है या जिसे छन्द:शास्त्र की सिद्धि प्राप्त है, वह अल्पप्रयास में ही अपने काव्य को सरस बना लेता है। वंश वर्णन और तपस्या के चित्रण के लिये कवि उपजाति छन्द का प्रयोग करता है। जहाँ उसे वीरता, युद्ध एवं सैन्य संगठन के वर्णन की आवश्यकता प्रतीत होती है, वहाँ वह वंशस्थ छन्द का प्रयोग करता है। करुणा, दीनता, कृपणता और मनोव्यथा के चित्रण हेतु वैतालीय छन्द का प्रयोग वांछनीय माना जाता है। भौतिक एवं पारलौकिक समृद्धि के वर्णन के लिये द्रुतविलम्बित का विधान है। रथोद्धता छन्द में काम क्रीड़ा, आखेट, रतिजन्यखेद एवं पश्चात्ताप आदि का वर्णन किया जाता है। प्रवास, विपत्ति और वर्षा ऋतु के वर्णन में मन्दा - क्रान्ता को विधेय माना गया है। प्रहर्षिणी का प्रयोग नाम के अनुसार हर्षातिरेक के वर्णन में होता है। हरिणीछन्द नायक के अभ्युत्थान और सौभाग्य वर्णन के प्रसंग में आता है। कार्य की सफलता, ऋतुचित्रण एवं जीवन - भोग वसन्ततिलका छन्द में अंकित किये जाते हैं। जीवन में जब अकस्मात् सम्पत्ति की प्राप्ति होती है तो स्वागतार्थ स्वागता छन्द का व्यवहार किया जाता है।

घबराहट में मत्तमयूर, प्रपंच परित्याग में नाराच निराशा के साथ निवृत्ति में तोटक, कृतकृत्यता में शालिनी, वीरता के चित्रण में शार्दूलविक्रीडित और आत्मनिवेदन के लिये शिखरिणी छन्द का प्रयोग प्रशस्त माना गया है।

नि:सन्देह स्तोत्रकर्त्ताओं ने अपनी इन रचनाओं में छन्दों की सुन्दर योजना किया है। यहाँ वर्णिक वृत्त रहने पर भी तुकजन्य सौन्दर्य दिखलायी

पड़ता है । कवियों ने भक्ति की सिद्धि के लिये जिन छन्दों का प्रयोग किया है वे संगीत का सुन्दर रूप प्रस्तुत करते हैं । वैसे तो संस्कृत भाषा ही निसर्गतः कोमल और मधुर है, पर प्रतिभासम्पन्न कवि के हाथ में पड़कर उसमें भाव - प्रकाशन की अद्भुत क्षमता उत्पन्न हो जाती है । भावों की सूक्ष्मता और मनोविकारों की व्यापकता के प्रकाशन में छन्द बहुत ही सहायक होते हैं ।

शक्ति स्तोत्रों में शब्दसौष्ठव, पदावली का मधुमय विन्यास एवं पदों की कोमल शैय्या विद्यमान है । कवियों ने भावप्रकाशन के लिये जिन - जिन छन्दों का चयन किया है, वे पूर्ण सशक्त तो हैं ही, साथ ही संगीत-तत्त्व के निर्माण में भी समर्थ हैं । रस के उन्मीलन हेतु छन्दोयोजना अपेक्षित होती है । भावों में तीव्रता और प्रवाहशीलता लाने के लिये कवि ऐसे छन्दों का प्रणयन करता है जिससे हृत्तन्त्रियाँ झनझना उठती हैं और पाठक तथा श्रोता रसविभोर हो झूमने लगते हैं । कवियों का छन्दों पर अपूर्व आधिपत्य है । जहाँ वे आत्म - निवेदन प्रस्तुत करते हैं और अपने दोषों का उद्घाटन करने लगते हैं, वहाँ वे शिखरिणी छन्द का प्रयोग करते हैं । कवियों में एक साथ दार्शनिकता, प्रौढ़ पाण्डित्य एवं विषयविवेचन की अद्भुत क्षमता उपलब्ध होती है ।

स्तोत्र के छन्द प्रायः गेय होने चाहिये जिसमें भक्त अपने भावों को लय के साथ गाकर अपने देवता को प्रसन्न कर सके क्योंकि देवताओं को गीत बड़े पसन्द हैं। कहा जाता है कि रावण ने भगवान शंकर को गीत के द्वारा प्रसन्न किया था । वैसे तो संस्कृत के प्रायः सभी छन्द गेय होते हैं किन्तु कुछ

विशिष्ट छन्द गीति के लय के अनुकूल बनते हैं जैसे उपजाति वर्ग - इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी भुजंगप्रयात, आर्या, द्रुतविलम्बित आदि और प्राय: यह भी देखा गया है कि स्तोत्र रचयिता को जो छन्द व्यक्तिगत रूप से प्रिय होता है और पद्य रचना का जिसमें विशिष्ट अभ्यास होता है उसी में वह स्तोत्र की रचना करता है ।

कटाक्षशतक तथा मन्दस्मितशतक में क्रमशः वसन्तीतलका तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों में पूरे श्लोकों का प्रणयन किया गया है । शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी के सम्पूर्ण श्लोकों में शिखरिणी छन्द की मनोहर उद्भावना पूरे काव्य में की है । कनकधारा स्तोत्र में कवि ने प्रथम श्लोक से लेकर दसवें श्लोक तक वसन्ततिलका की सुमधुर योजना की है । देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र में प्रथम से लेकर नवम तक वसन्ततिलका तथा दसवें स्तोत्र में इन्द्रवज्रा छन्द है ।

छन्दों के अध्ययन से लगता है कि जैसे महाकाव्य में अनेक छन्दों की बहुरंगी प्रदर्शिनी दृष्टिगोचर होता है, वैसी गीति या शक्तिस्तोत्र काव्यों में परिलक्षित नहीं होती है इसका कारण भी सुस्पष्ट है महाकाव्यों में कवि की दृष्टि मुख्यत: काव्यात्मक सौन्दर्य पर स्थिर हो जाती है । उस सौन्दर्य सर्जना में विभिन्न छन्द कलात्मक आवरण का काम करते हैं, किन्तु गीति या शक्ति स्तोत्र काव्यों में कवि का ध्यान मुख्यरूप में भावों के प्रवाह की ओर रहता है, जिसमें कि भाव कल्पना, संवेदना, अनुभूति ही मुख्य तत्व होता है और कलापक्ष अत्यन्त गौण रूप में रहता है अत: सरल एवं सुनियोजित छन्दों का प्रयोग ही अधिक समीचिन होता है । यही कारण है कि महाभारत, रामायणादि में अनुष्टुप छन्द प्रायश: प्रयुक्त किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय

शक्ति स्तोत्रों में भाव-प्रवणता एवं रसनिष्यन्द

चतुर्थ अध्याय

तृतीय अध्याय में शक्ति स्तोत्रों में वर्णित अलंकार, कल्पना-सौन्दर्य, गुण एवं छन्दों का अध्ययन करने के बाद इस अध्याय में शक्तिस्तोत्रों में भाव प्रवणता और रस-योजना का वर्णन किया गया है ।

स्तोत्रों में भक्तिभावना

मानव जब अपनी असमर्थता के कारण अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी अदृश्य शक्ति की कल्पना करने लगा तभी से उसमें आस्तिक्य - भाव का बीज उत्पन्न हुआ । जब किसी महती शक्ति के प्रति आस्तिक्य-भाव उत्पन्न होता है और उसमें आस्था जागृत होती है तब स्वयम ही इस शक्ति के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हो जाता है । वास्तव में भक्ति का मूल कारण आस्तिक्य भाव, श्रद्धा भाव और प्रेम ही है । मानव की मूल प्रवृत्तियों में सुख और दु:ख से ऊपर आनन्द की प्रवृत्ति होती है । जब मानव बाहर की वस्तुओं में आनन्दप्राप्ति को छोड़कर आन्तरिक अनुभवों से तृप्ति प्राप्त करने लगता है तब भक्ति-भावना स्वयमेव विकसित हो जाती है । भक्ति की परिभाषा व्युत्पत्ति के अनुसार 'भजनं भक्ति: ' है । भक्ति में कायिक व्यवहार के साथ इन्द्रिय और मन भी सम्बद्ध है । भट्टाजो दीक्षित ने 'क्लृपि सम्पद्यमाने च' के उदाहरण में 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते जायते वा' - उदाहरण दिया है । इससे स्पष्ट है कि भक्ति ही ज्ञान में परिणत होती है । जैसे मिट्टी का पिण्ड ही घट रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार भक्ति ज्ञान-शुद्ध, सच्चिदानन्द ब्रह्म में आसक्त चित्त जब प्रेमोद्रेक से द्रवित हो जाता है तब किसी की प्रतीति नहीं होती । अत: स्पष्ट है कि जब और इन्द्रियाँ आराध्य के गुणों में पूर्णतया समाविष्ट हो जाती हैं तब भक्ति का चरम रूप उपस्थित होता है अत: भक्ति आनन्द प्राप्ति का बड़ा साधन है ।

<u>भक्तिमार्ग के सिद्धान्त</u> - श्वेताश्वतर, नारायण, मुण्डक आदि प्राचीन उपनिषदों में, महाभारत के शान्तिपर्व एवं भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत तथा पांचरात्र आदि आगम ग्रंथों में भक्ति-सिद्धान्तों का विकसित रूप उपलब्ध होता है । ईश्वर में सर्वोत्कृष्ट अनुराग को भक्ति कहा गया है । भक्तिभावना का विश्लेषण करने पर भक्ति के निम्न तत्व उपलब्ध होते हैं -

§1§ अनुराग की प्रबलता, §2§ परमात्मा के प्रति समर्पणभाव §3§ श्रद्धा और आस्तिक्य बुद्धि §4§ अपनी समीपता एवं आराध्य की असीमता पर विश्वास §5§ लौकिक और पारलौकिक कार्यसिद्धि का आराध्य में पूर्ण समावेश §6§ आराध्य की द्रवणशीलता एवं §7§ भक्त और आराध्य के सम्बन्ध का परिज्ञान ।

अनुराग के प्रबल होने पर आराध्य द्रवित हो जाता है और वह भक्तों के दु:ख का अपहरण करता है । भगवान की भक्ति के लिये प्रत्यक्ष स्थूल पदार्थ की आवश्यकता है । अत: वैधी भक्ति विधिविधानमयी शास्त्रमर्यादापूर्ण भक्ति पद्धति को पंचागपूर्ण माना गया है । इस रागात्मिका भक्ति से अवगत होकर भक्त परमानन्द की प्राप्ति करता है । इस भक्ति का प्रथम अंग उपासक शरीर - शुद्धि एवं हृदयशुद्धि करके स्वयं देवतुल्य हो देवता की उपासना करता है । इन शुद्धियों से संकल्प-शक्ति की वृद्धि होती है, मन स्थिर होता है और स्वाभाविक रूप से हमारी प्रवृत्तियां ईश्वराभिमुख होती हैं । भक्ति का दूसरा अंग है - उपास्य जो निर्गुण और निराकार है उसकी उपासना सम्भव नहीं है । परमात्मा का सगुण रूप ही उपासना के लिये आवश्यक है । आकृति - प्रकृतिहीन उपास्य की ओर कोई भी आकृष्ट नहीं हो सकता । अत: गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार भगवान के नामरूप की कल्पना की जाती है । उपासक भगवान के किसी भी नाम

और रूप की आराधना कर सकता है । शक्तिस्तोत्रों में शक्ति के रूप की कल्पना विभिन्न प्रकार से की गयी है । उदाहरणार्थ - शक्ति के शरणागत रक्षक रूप, और उपास्य का सगुण रूप ।

शक्ति की पार्थिव - प्रतिमा विशेष महत्वपूर्ण है । प्रतिमा के अनुकूल ही मंदिर रचना और उसकी स्वच्छता आदि भी आवश्यक है । भक्ति का तीसरा अंग है - पूजाद्रव्य । स्तोत्रकाव्यों में भक्ति के लिये स्तुति एवं आत्मनिवेदन आदि को ही द्रव्य कहा गया है । कवि भक्ति के निम्न साधनों पर प्रकाश डालते हैं जैसे - {1} शील एवं सदाचार की पवित्रता {2} विनीतभाव {3} मनवचन एवं कर्मानुरक्तता {4} सर्वतोभावेन समर्पण {5} अपनी लघुता का विकास । षोडशोपचार, दशोपचार और पंचोपचार पूजन-प्रणाली भी प्रचलित है । वैधिविधि का पाँचवा अंग मंत्र जाप है । इसमें अपनी-अपनी आराधना-पद्धति के अनुसार आराधक 'ॐ चण्डिकाये नमः' या 'ॐ' जैसे प्रणव मन्त्र का जाप करता है ।

स्तोत्र काव्यों में प्राय: रागात्मिका भक्ति है । शुद्ध-भक्ति का उद्देश्य भगवान में अनन्य प्रेम की आस्था प्रकट करना है । इसको प्रेमस्वरूपा भी कहा जा सकता है । जब ज्ञान एवं कर्म आदि साधनों के आश्रय से रहित और सब ओर से स्पृहाशून्य होकर चित्तवृत्ति अनन्य भाव से भगवान् में लग जाती है, उस समय संसार के समस्त पदार्थ तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं । स्तुतिकारों ने इसी भक्ति का विवेचन अपने शाक्त-स्तोत्रों में किया है । प्रेमरूपाभक्ति अमृतस्वरूप है । इसे प्राप्तकर भक्त अत्यन्त तृप्त हो जाता है । शक्ति के प्रकट होने पर उन्मत्त की तरह आचरण होने लगता है और प्रेमी आनन्द में डूबकर प्रभु के रूपमाधुर्य या

उनके गुणों की उपासना करता है । वह भगवती को छोड़कर अन्य आश्रयों का त्याग कर देता है । इसी कारण कभी वह उनके गुणों एवं माहात्म्य का वर्णन करता है, कभी रूप का और कभी उनके विग्रह का । जब हृदय में देवी प्रेम का उद्रेक होता है तो अपार आनन्द की अनुभूति होती है ।

भाव-सम्पत्ति - शक्ति स्तोत्रों में भावों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है -

उपालम्भ भाव - स्तोत्र काव्य की अनेक विशेषताओं में कवियों की उपालम्भ सम्बन्धिनी विशेषतायें प्रमुख हैं । स्तोत्रकारों ने अपने स्तोत्रग्रन्थों में उपास्य को अनेक प्रकार से मधुर -मधुर उपालम्भ दिये हैं । उपालम्भावस्था में जिन भावों की अभिव्यक्ति होती है वे भाव मनोविज्ञान की दृष्टि से चाहे कम मूल्यवान हों पर साहित्य की दृष्टि से उनका पर्याप्त मूल्य है । जब कवि विनय पूर्ण निवेदन करते - करते क्लान्त हो जाता है और अपने आराध्य को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ रहता है तो वह उपालम्भ देकर उनके चित्त को द्रवीभूत करना चाहता है । वह प्रेम एवं स्नेह के वशीभूत हो आराध्य को व्यंग्यात्मक उपालम्भ देता है । जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार भक्त भी अपने विभिन्न भावों से उपास्य को मुग्ध कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है । सांसारिक आपदाओं में ग्रस्त व्यक्ति देवी - स्तुति में देवी सामीप्य को प्राप्त करता है । कवि उपालम्भभाव में कहता है -

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरूहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे ।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायते सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ।।[1]

1- शंकराचार्य कृत आनन्द-लहरी, श्लोक - ।।

इस स्तोत्र में कवि पार्वती को उलाहना देता है कि उसने देवी के चरणों के अतिरिक्त किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया । फिर भी यदि देवी उस पर दया नहीं करती तो वह अन्यत्र कहाँ जायेगा । इस प्रकार कवि मानवीय हृदय की गहरी और मार्मिक अनुभूति को प्रकट करता है । वस्तुत: उपालम्भ हमारी विशेष भाव स्तुति का परिणाम है जो भक्ति का अवशेष रूप है । उपालम्भ उलाहना मात्र नहीं है क्योंकि उसमें न तो वास्तविक शिकायत है और न प्रेमपात्र की निन्दा ही । इसका आधार गहरी आत्मीयता और प्रेम है । भक्त कवि अन्योक्तिपरक उपलम्भों द्वारा आराध्या की अनुकूलता प्राप्त करना चाहता है । इसमें भक्ति का आवेग पर्याप्त तीव्र रहता है, आशा और विश्वास पूर्णरूप से अभिव्यक्त होते हैं । दास्यभाव के भक्तों की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत उपालम्भभावना मिलती है । अपने भगवती के प्रति दृढ़ विश्वास साथ वह मधुर उपालम्भ देता है जिससे उपास्य की उदासीनता दूर होती है । श्रीमद्भागवत में भी इस प्रकार के उपालम्भ मिलते हैं । अत: भावात्मक अभिव्यक्तियों को सघन बनाने के लिये ही कवि को उक्त भाव की योजना करना पड़ती है ।

<u>दैन्यभाव</u> - भक्ति के क्षेत्र में दीनता के भाव का प्रदर्शन भी आवश्यक है । भक्त भगवती के समक्ष आत्मनिवेदन करते हुए अपने दैन्यभाव को प्रदर्शित करता है । उसकी यह दीनता लौकिक दीनता से उच्चकोटि की होती है । वह भगवती के दिव्य गुणों की प्राप्ति हेतु उनसे नाना प्रकार के अनुनय-विनय करता है । यह अनुनय-विनय ही तो दैन्य भाव हैं । भावसम्पत्ति की दृष्टि से दीनोक्तियाँ

का अत्यधिक मूल्य है । भक्त कवियों की दृष्टि में संसार के समस्त देवता स्वार्थ परिपूर्ण हैं । एकमात्र उसका आराध्य ही स्वार्थ से ऊपर रहता है । अत: वह उसके समक्ष अपने दैन्यभाव से सभी प्रकार का विक्रय करता है । स्तुतिकर्त्ता कहता है -

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो महाक्षीणदीन: सदा जाड्यवक्त्र: ।
विपत्तौ प्रविष्ट: प्रणष्ट: सदाहं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेकाभवानी ।।[1]

इस स्तोत्र में भक्त अपने को अत्यन्त अनाथ दरिद्र, जरा - शीर्ण, रोगी, दीन गूँगा और विद्ग्रस्त बताकर देवी से कहता है - हे भवानि ! तुम्हीं मेरी गति हो ।

<u>चाटुकारिताभाव</u> - भक्त कवि विभिन्न प्रकार से आत्मनिवेदन करते हुए चाटुकारिता का भी भाव प्रदर्शित करता है । वह अपने आराध्या को प्रसन्न करने के लिये नाना प्रकार की चाटुकारी करता है । यदि आराध्या में उसे कोई दोष भी दिखलायी पड़ता है तो उसे भी वह गुणों के रूप में ही ग्रहण करता है क्योंकि भक्त की दृष्टि में भगवती की प्रसन्नता से बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है । उसका यह विश्वास रहता है कि यदि भगवती प्रसन्न हो गयीं तो अन्य वस्तुएँ स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं । जब तक कोई भी भक्त अपने हृदय के गाम्भीर्य को निश्छलभाव से अभिव्यक्त नहीं करता तब तक उसे देवी की कृपा प्राप्त नहीं होती है । उदाहरणार्थ -

आपत्सु मग्न: स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथा: क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ।।[2]

1- शंकराचार्य रचित भवान्यष्टक, श्लोक - 8

2- शंकराचार्यकृत देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र, 10

इस स्तोत्र में भक्त देवी से कहता है मैं विपत्तियों में फँसकर आज जो तुम्हारी स्मरण करता हूँ इसे मेरी शठता न मान लेना, क्योंकि भूख-प्यास से पीड़ित बालक माता का ही स्मरण करते हैं ।

भयविह्वलता का भाव - कवि संसार के कष्टों से प्रताड़ित हो भयविह्वल हो जाता है और आराध्य के चरणों में दीनताभरी प्रार्थना करता है -

भवाब्धावपारे महादु:खभीरु: पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्त: ।

कुसंसारपाशप्रबद्ध: सदाहं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ।।[1]

इस स्तोत्र में भयविह्वलता का भाव है । भक्त महान् दुखों से भयभती तथा घृणायोग्य संसार के बन्धनों में बँधा हुआ है । वह एकमात्र देवी को ही रक्षक मानता है ।

कल्मषभाव - राग, द्वेष, घृणा और मोह आदि ऐसे विकार हैं जो आत्मा को कलुषित करते रहते हैं । जो कवि पूर्ण भावुकता की स्थिति में उपस्थित होकर अपने कालुष्यों का निरूपण करता है वह कवि भावचित्रण की दृष्टि से उत्तम माना जाता है ।

प्रपत्ति भाव - शदित रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपायहीन व्यक्ति की पर्यवसायिनी निश्चयात्मिका बुद्धि में ही प्रपत्ति का स्वरूप रहता है । अनन्यसाध्य देवी-प्राप्ति में महाविश्वास पूर्वक देवी को ही एकमात्र उपाय समझकर प्रार्थना करते रहना ही प्रपत्ति है और इसी को शरणागति कहते हैं ।

1- शंकराचार्यकृत भवान्यष्टक, श्लोक - 2

प्रपत्ति में उपायान्तरों का परित्याग रहने के कारण भक्त देवी के चिन्तन में अधिक तल्लीन रहता है । सांसारिक एषणाओं की इच्छा नहीं रहती और न मुक्ति ही उसके लिये काम्य होती है -

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानी ।।[1]

इस स्तोत्र में भक्त कहता है कि माता, पिता, तथा अन्य अभिजन कोई उसका नहीं है एकमात्र भवानी ही उसकी गति है ।

पंचरात्र की लक्ष्मी संहिता में प्रपत्ति के निम्नलिखित छ: अंगों का वर्णन आया है - §1§ आनुकूल्य का संकल्प §2§ प्रतिकूल्य का वर्जन §3§ रक्षक होने का विश्वास §4§ गोप्तृववरण §5§ आत्मनिक्षेप §6§ कार्पण्य ।

स्तोत्रों में रस-भाव योजना - काव्य जीवन के अनुभवों का कलात्मक अभिव्यंजन है । अत: कोई भी कवि अपने काव्य में विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यंजना करता है । किसी व्यक्ति की विशेष अवस्था में किसी दूसरे के प्रति जो मानसिक स्थिति होती है उसे भाव कहते हैं और जिस व्यक्ति के प्रति वह भाव उत्पन्न होता है वह विभाव कहलाता है । भाव एवं विभाव का क्रम प्रत्येक काव्य में जारी रहता है । दशरूपककार धनंजय ने आन्तरिक भावनाओं के व्यक्त होने को भाव कहा है ।[2] काव्यप्रकाशकार ने देवादिविषयक रति आदि स्थायिभावों का

1- शंकराचार्यकृत भवान्यष्टक, श्लोक - 1

2- दशरूपक, 4/4

वर्णन तथा प्रधानता से व्यंजित व्यभिचार को भाव कहा है ।[1] रसावस्था को प्राप्त न होने वाला स्थायीभाव - देवादिविषयक रति तथा उद्बुद्ध मात्र कान्ता - विषयक रति जो विभावादि से पुष्ट न हुई हो, भाव कहलाता है । संवेगात्मक प्रतीति जब बौद्धिक प्रतीति को बांधकर अनुभूति के रूप में प्रवाहित होती है तो भाव का जन्म होता है । सहृदयजनों (सामाजिकों) के हृदय में रति आदि भाव वासना रूप से सदा विद्यमान रहता है । आलम्बन और उद्दीपन विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से स्थायीभाव व्यंजनावृत्ति द्वारा व्यक्त हो जाता है अर्थात आस्वादन योग्य हो जाता है । रसवादियों ने उसी को रस कहा है । वास्तव में सहृदय अपनी मानसिक स्थिति और प्रवृत्ति के अनुकूल विभाव से अनुप्रेरित होता है। विभाव के संयोग से स्थायी भाव व्यक्त होता है । ये विभाव स्थायी एवं व्यभिचारी भावों को आस्वादन योग्य बनाते हैं । विभाव भावों को जगा देते हैं । काव्य सृजन के लिये भाव, अनुभूति एवं संवेग आदि का अनुभावन आवश्यक है परन्तु इससे भी आवश्यक है अनुभूति का अन्य लोगों तक पहुंचाना । यदि कवि के भावों का सहृदय भली भांति आस्वादन न कर सका, तो काव्य का मुख्य लक्ष्य ही अपूर्ण रह जाता है । स्तोत्रों में प्रेषणीयता का समावेश भी पूर्णरूपेण होना आवश्यक है । वास्तव में कवि अपनी अनुभूति के आधार पर अलौकिक एवं अगोचर आलम्बन को बुद्धिगम्य बनाता है ।

स्थायी और अस्थायी दो प्रकार के भाव रहते हैं । स्थायी भाव ही रस अवस्था तक पहुंचते हैं । स्थायी भावों के ही सहकारीकरण अस्थायीभाव

1- रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः भाव प्रोक्तः । - काव्य प्र० 4/35

कहलाते हैं, इनकी रसावस्था तक परिणति नहीं होती अपितु उन्मीलित एवं निमीलित होते रहते हैं । जिन भावों द्वारा रति आदि भावों का अनुभव होता है उन्हें अनुभाव कहते हैं । अस्थिर चित्तवृत्तियों को संचारिभाव कहा जाता है । ये भाव रस के उपयोगी होकर जलतरंग के समान संचरण करते हैं इसी कारण संचार कहे जाते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कोई भी कवि विभाव, अनुभाव और संचारिभावों के द्वारा पाठकों की रस स्थिति तक पहुँचता है । साहित्य के रसक्षेत्र में जो भाव होता है वह सम्बन्धीत होता है । रसावस्था में एक प्रकार से मुक्ति-स्वरूप ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है । काव्य - वैदिग्ध्य की दृष्टि से चमत्कार ही रस का प्राण है । रस-प्रतीति चाक्षुष नहीं, मानस है । कवि काव्य में वर्णित विभावादि द्वारा पाठकों को अलौकिक रूप से अभिभूत कर देता है जिससे काव्य-सौन्दर्य की प्रतीति सहज रूप में होती है ।

रस अवस्था तक पहुँचने के लिये रसनीय भावों की योग्यता इन पाँच सिद्धान्तों पर निर्भर करता है - §1§ मनोवेग की योग्यता, न्यायता और औचित्य का सद्भाव §3§ मनोवेग की स्थिरता या चिरकालिकता §4§ भावना की विविधता और व्यापकता §5§ भावों की उदात्तता का सद्भाव ।

किसी भी कृति को सफल तभी माना जा सकता है जब उसके भावों का साधारणीकरण हो । साधारणीकरण का अभाव में कोई भी रचना उपादेय नहीं हो सकती । जब कवि या साहित्यकार अपनी कृति के भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है, जिससे वे भाव सर्वसाधारण के लिये आस्वाद्य बन

जाय, तभी वह कृति सफल मानी जाती है ।

<u>भक्ति का रूप एवं प्रकार :-</u> सत्पुरुष के सत्कर्म या सदगुणों का भावात्मक मूल्य श्रद्धा कहलाता है ।[1] यह भाव सदा अपने से अधिक समर्थ के प्रति होता है । यही श्रद्धा या पूज्यबुद्धि जब प्रेम से संयुक्त होती है तो भक्ति कहलाती है ।[2] भक्ति भावना के उदय के साथ ही दैन्य की भावना अर्थात दूसरे के महत्व की स्वीकृति के साथ ही अपने लघुत्व की भावना का उदय हो जाता है । यह भावना केवल मानव हृदय में ही उठती है, पशुहृदय में नहीं । भक्ति प्राय: ऐसी प्रीति होती है जो प्रेमी को समाज से तथा परिवार से भी विच्छिन्न कर देती है । उसमें प्रियपक्ष का प्रबल राग जीवन के अन्य सब पक्षों से पूर्ण विराग की प्रतिष्ठा कर देता है । भारतीय साहित्य में गोपियों के प्रेम को प्राय: यही स्वरूप दिया गया है ।

आचार्य रूप गोस्वामी के भक्तिरस विवेचन - ग्रन्थ 'हरिभक्तिरसा - मृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' में इसका विस्तृत विवेचन है । कृष्ण की सेवा या आराधना को उत्तमा भक्ति कहते हैं, जो सभी प्रकार की अभिलाषाओं से रहित हो, ज्ञान, कर्म आदि के सिद्धान्तों से असम्बद्ध हो तथा जो आराध्य के अनुकूल हो ।[3] गोस्वामी के अनुसार प्रथमत: भक्ति दो प्रकार की होती है -

---

1- गुरुशास्त्रवचनेषु विश्वास: श्रद्धा ।

2- पूज्येषु अनुरागो भक्ति: ।

3- अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनंभक्ति रुत्तमा ।। - ह0 भ0 र0 - 1/1/11

साधनरूपा भक्ति दो प्रकार की मानी गयी है - वैधी तथा रागानुगा ।[1] जो भक्ति शास्त्रोपदिष्ट रूप में ही प्राप्त हो तथा जिसकी प्रवृत्ति में राग का उतना स्थान न हो उसे वैधी भक्ति कहते हैं ।[2] इस वैधी भक्ति के आचरण में शास्त्र-प्रतिपादित विधियों या मर्यादाओं का प्राबल्य रहता है । जपश्रवण - ध्यान आदि विविध उपचारों का सविधि पालन करना पड़ता है अत: इसे मर्यादामार्ग भी कहते हैं ।[3] इष्ट में स्वाभाविक राग तन्मयता को राग कहते हैं । उसी रागमयी भक्ति को रागात्मिका अथवा रागानुगा नाम दिया जाता है, जैसा कि ब्रजवासियों को कृष्ण के प्रति था ।

शुद्धसत्वगुणमय प्रेमरूपी सूर्य की किरणों के सदृश अपनी कान्तियों से चित्त में कोमलता उत्पन्न करने वाली भक्ति को भावभक्ति कहते हैं ।[4] अर्थात प्रेम की प्रथमावस्था अथवा पूर्वावस्था को भाव कहते हैं ।[5]

1- वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा । - ह0 भ0 र0 1/2/3

2- यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरूप जायते ।
शासनेनेवशास्त्रस्य सा वैधीभक्ति रूच्यते ।। - वही - 1/2/3,4

3- शास्त्रोक्तया प्रबलया तत्तन्मर्यादयान्विता ।
वैधीभक्तिरियं कैश्चिन्मर्यादामार्ग उच्यते ।। - ह0 भ0 र0 2/59,60

4- शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशु साध्यभाक् ।
रूचिभिश्चत्तमातृण्यकृदसौभावउच्यते । । - वही - 1/3/1

5- प्रेमणस्तु प्रथमावस्थाभाव इत्यभिधीयते । - तन्त्र

यही भाव सघन सान्द्र अथवा विकसित होकर प्रेमा कहलाने लगता है ।[1] यह भाव भक्ति दो प्रकार की मानी गयी है - साधनभिनिवेशजा तथा प्रसादजा ।[2] साधनाभिनिवेशजा भाव वैधी मार्ग तथा रागानुगामार्ग से दो प्रकार का माना गया है ।[3] जो भाव बिना साधन के कृष्ण अथवा उनके किसी भक्त की कृपा से सहसा उत्पन्न होता है उसे प्रसादज भाव कहते हैं ।[4] जब भावों की यह अवस्था हो कि उसमें चित्त भली प्रकार कोमल हो जाय तथा ममता का अतिशय आ जाय तब वही सघन भाव प्रेम कहलाने लगता है ।[5]

भक्ति रस - रूप गोस्वामी के अनुसार विभावों, अनुभावों, सात्त्विकों तथा व्यभिचारियों के द्वारा भक्तों के हृदय में यह कृष्ण के प्रति रति रूप स्थायी भाव भक्तिरस कहलाता है ।[6] स्थायी भाव का लक्षण है कि जो अविरूद्ध तथा विरूद्ध दोनों प्रकार के भावों को अपने वश में करता हुआ सुराजा की भांति

1- भाव: स एव सान्द्रात्मा बुधै: प्रेमा निगद्यते

2- ह0 भ0 र0 - 1/3/4

3- वही - 1/3/5

4- वही - 1/3/9

5- वही - 1/4/1

6- विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभि: ।
स्वाद्यत्वं हृदिभक्तानामानीता श्रवणादिभि: ।।
एषाकृष्णरति: स्थायीभावोभक्तिरसोभवेत् ।

सुशोभित होता है उसे स्थायी भाव कहते हैं ।[1] इस भक्ति रस का स्थायी भाव तो कृष्ण के प्रति भक्त की रति है । उसे रसज्ञों ने दो प्रकार का माना है - मुख्या तथा गौणी ।[2] इसमें जो शुद्ध सत्व विशेष रूप रति होती है, उसे मुख्यारति कहते हैं ।[3] जब कृष्ण के प्रति रतिभाव ही अपने को संकुचित करते हुये किसी अन्य भाव विशेष को जो विभवोत्कर्ष के कारण उत्पन्न, पोषित अथवा प्रकटित करता है तो वह गौणी रति-भाव कहलाता है ।[4] मुख्या रति के 5 भेद हैं - शुद्धा, प्रीति सख्य, वात्सल्य तथा प्रियता । ये अनुगृह्यमाण प्रसिद्ध सात अन्य स्थायी भाव ही है, जैसे हास, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा ।[5] ये हास आदि स्थायी भाव रतिभाव से संचालित होकरववारू बनकर किसी भक्त में कुछ समय के लिये स्थायी भाव का रूप प्राप्त करते हैं।ये वस्तुत: सात भाव केवल कुछ समय के लिये कभी अभिव्यक्त हो जाते हैं ।

1- अविरूद्धान्विरूद्धांश्च भावान्योवशता नयन् ।
सुराजेव विराजते स स्थायी भाव उच्यते ।। - ह0 भ0 र0 - 2/5/1

2- स्थायीभावात्र सम्प्रोक्त: श्रीकृष्णविषयरति: ।
मुख्या गौणी च सा द्वेधारसज्ञै: परिकीर्तिता ।। - वही - 2/5/3

3- शुद्ध सत्त्व विशेषात्मा रतिर्मुख्येतिकीर्तिता । - वही - 2/5/3

4- विभावोत्कर्षजो भावविशेषो योऽनुगृह्यते ।
संकुचन्त्या स्वयंरत्या स गौणी रतिरूच्यते ।। - वही - 2/5/3

5- वही - 2/5/3।

इनका आधार नियत नहीं है । सहज होते हुये जो बलवान रतिभाव से उत्पन्न विरोध दबाये गये रहते हैं ,[1] उन सब भावों की दशा में आत्यन्तिक स्थायी - भाव तो रति ही होती है । इसके बिना सभी भाव व्यर्थ होते हैं । इसके न रहने पर क्रोध आदि स्थायी भाव भक्ति रस कहलाने योग्य नहीं हो पाते ।[2] अर्थात ये हास आदि स्थायी भाव ऐसे हैं जो मूलत: रति के कारण इष्ट को आलम्बन बनाकर स्थायी रूप में प्रवृत्त होते हैं अतएव हास - भक्ति करुण-भक्ति आदि नामों से पुकारे जाते हैं । जब इष्ट के प्रति रति भाव से शून्य रहेंगे तो हास भक्ति आदि नहीं कहलायेंगे । निर्वेदादि संचारीभाव तो रति संवलित होकर भी रति में ही विलीन रहते हैं । उनकी स्थिति स्थायी रूप नहीं हो पाती ।[3] फलत: पूर्वोक्त हास आदि सात ही स्थायी बनकर सात प्रकार की गौणी भक्ति बनाने के अधिकारी होते हैं ।[4] इस प्रकार पूर्वोक्त विधि से मुख्य रति पाँच प्रकार की होकर भी केवल रति की ही सत्ता सबमें होने के कारण, एक प्रकार की कही जाती है तथा गौणी सात प्रकार की । अत: भक्ति रस तथा उसका स्थायी रति भाव आठ प्रकार का माना गया है ।[5] मुख्य भक्ति

1- तस्मादनियताधारा:, सप्तसामयिका इमे ।
सहजा अपि लीयन्ते बलिष्ठेनतिरस्कृता ।।

2- वही - 2/5/37-38

3- वही - 2/5/39-42

4- अष्टानामेवभावानां संस्काराधायिता मता ।
तत्तिरस्कृत संस्कारा: परे न स्थायितोचिता: ।। - वही - 2/5/42-43

5- वही - 2/5/95-96

रस के पाँच भेद हैं - शान्त, प्रीति, प्रेयान, वत्सल तथा मधुर ।[1] गौणी भक्ति रस सात प्रकार का माना गया है - हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स ।[2] इस प्रकार भक्ति रस बारह है किन्तु इन बारहों प्रकार के भक्ति रसों का आस्वाद पाँच ही प्रकार का होता है - पूर्ति, विकास, विस्तार विक्षेप तथा क्षोभ ।[3] शान्ति में पूर्ति, प्रीति, वत्सल, मधुर तथा हास्य में विकास, वीर, अद्भुत में विस्तार, करुण, रौद्र में विक्षेप तथा भयानक एवं वीभत्स में क्षोभ रूप आस्वाद होता है ।[4]

प्रीतिभक्तिरस दो प्रकार का कहा गया है - सम्भ्रम प्रीति तथा गौरव प्रीति । मुख्य भक्तिरस का तीसरा भेद प्रेयान् कहलाता है । इसमें सख्य - भाव आत्मोचित विभावों से पुष्ट होकर सत्सामाजिकों के हृदय में प्रेयान् रस रूप से आस्वाद्य होता है ।[5]

मुख्य भक्ति रस का चतुर्थ प्रकार है वत्सलभक्तिरस, जिसमें विभावादि से पुष्ट होकर वात्सल्य स्थायीभाव रस दशा को प्राप्त करता है ।[6]

1- अष्टानामेवभावानां संस्काराधायिता मता ।
तत्तिरस्कृत संस्कारा: परे न स्थायितोचिता: ।। - ह0 भ0 र0 2/5/96-97

2- वही - 2/5/97-98

3- वही - 2/5/102

4- वही - 2/5/103-4

5- स्थायीभावो विभावाद्यै: सख्यमात्मोचितैरिह ।
नीतश्चित्ते सतां पुष्टिं रस: प्रेयानुदीर्यते ।। - वही - 3/3/1

6- वही - 3/4/1

मुख्य भक्ति रस का पंचम तथा सर्वप्रधान भेद है मधुर भक्तिरस, जिसमें मधुरा रति आत्मोचित विभावादि से पुष्ट होकर सत्सामाजिकों के हृदय में रस दशा को प्राप्त होती है ।[1]

हास्य भक्तिरस गौण भक्तिरस का प्रथम भेद है । मूलत: तो ये सात रस हास्यादिक अपनी प्रकृति के अनुसार ही होंगे, भेद केवल इतना ही होगा कि हास्यरस आदि का स्थायी शुद्ध हास होता है जबकि हास्य भक्ति आदि का स्थायी हास रति आदि होता है । हास्य भक्ति में विभावादि से पुष्ट होकर हास रति हास्यभक्तिरस कहलाती है ।[2]

अद्भुत भक्तिरस में विस्मय रति स्थायी भाव रूप से रहती है । सब प्रकार के भक्त इस रस के आश्रय होते हैं । इसके साक्षात् तथा अनुमिति दो भेद किये गये हैं । प्रिय की थोड़ी भी असाधारण क्रिया विस्मयावह बनती है । फिर जो प्रिय से भी बढ़कर है उसकी सर्वलोकोत्तर क्रिया क्यों न विस्मय - कारिणी होगी ।[3]

वीरभक्ति रस में वही उत्साह रति (स्थायी रूप) उचित विभावादिकों के कारण स्वाद्य बनती है ।[4]

इसी प्रकार सत्सामाजिकों के हृदय में शोकरति अपने उचित विभावादिकों से परिपुष्ट होकर करूण भक्ति रस कहलाती है । हृदय में विद्यमान रति अपने अनिष्ट प्रक्षण अंश के शोक रूप में परिणत होकर शोकरति

1- वही - 3/5/1

2- वही - 4/1/6

3- वही - 4/2/6-7

4- वही - 4/3/1

बनती है और इस कारण करूण भक्ति रस में वही स्थायीभाव बनती है ।[1] कभी बिना रति के भी हासादि का उद्गम हो जाता है किन्तु इस शोक की सम्भावना तो बिना रति के ही हो नहीं सकती ।

भक्तजन के हृदय में अपने उचित विभावादिकों के द्वारा पुष्टि प्राप्त कर क्रोध - रति रौद्र-भक्तिरस बनती है ।[2] भयरहित अपने उचित विभावादिकों से परिपुष्ट होकर भयानक रति भक्तिरस कहलाती है । जब अपने उचित विभावा - दिकों के कारण जुगुप्सारति सामाजिकों के हृदय में पुष्टि प्राप्त करती है तो उसे वीभत्स भक्तिरस कहते हैं ।[3]

श्री कवि कर्णपूर गोस्वामी के 'अलंकारकौस्तुभ' नामक ग्रन्थानुसार - रति स्थायीभाव जब देवादिविषयक होती है तो 'भाव' कहलाती है इसी को भक्ति रस कहते हैं । श्रीनि:शंक शार्गदेव ने तो अपने 'संगीतरत्नाकर' में भक्ति रस की पृथक सत्ता ही नहीं स्वीकार की है अपितु उसे रति का भेद मानकर उसी में अनतर्भूत किया है ।

संस्कृत के अलंकारशास्त्रियों ने भक्तिरस को पृथक रस नहीं कहा है । उन्होंने इसका अन्तर्भाव शान्तरस में ही किया है क्योंकि देवता आदि विषयक रति भाव है, रस नहीं । रति ही भक्ति है, अत: प्राचीन परम्परा में इसे पृथक रस की श्रेणी में परिगणित नहीं किया गया है । परन्तु यह सत्य है कि

1- वही - 4/4/5-8

2- ह० भ० र० , 4/1/5

3- वही , 4/7/1

भक्ति में जितनी व्यापकता है, उतनी शायद ही किसी अन्य रस में हो । शान्तरस में शान्ति के उपासक मोक्ष चाहते हैं , पर भक्ति में भक्त की आकांक्षा मोक्ष की भी नहीं होती । अतएव सामान्यतया देवी विषयक प्रेम विभाव एवं अनुभावादि से परिपुष्ट होता है । अत: इसे भी रसकोटि में स्थान प्राप्त है ।

शंकराचार्य के शक्ति स्तोत्रों में भक्तिरस ही प्रधान है और देवविषयक रतिभाव उसका स्थायीभाव है । इस भक्ति में भी वीर भक्ति की प्रधानता है और उसका यहाँ कई स्थलों पर सफलता पूर्वक चित्रण किया गया है । सर्वशक्तिमती भगवती के वीरतापूर्ण कृत्यों का गुणगान करते हुये कवि ने श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक विविध रूपों में उनकी स्तुति की है और अपने उद्धार की कामना की है । सौन्दर्य लहरी स्तोत्र में भक्ति का अच्छा चित्रण भगवती के गुणों के भजन कीर्तन में मिलता है । जो भी भक्तगण भगवती के शरण में जाते हैं उनके लिये सम्पूर्ण चीजें प्राप्त करना सम्भव है । भगवती के स्वरूप का गान करते हुये कवि अपने ध्यान में प्रकट होने की प्रार्थना करता है ।[1]

भगवती के भजन की महिमा वस्तुत: अनन्त है जो भी भक्तगण भगवती का भजन करते हैं वे धन्य हैं । उनकी महिमा के प्रभाव से ही भक्तगण उच्चकोटि की रचना करने में समर्थ होते हैं । साधक की सम्पूर्ण क्रियायें देवी

1- हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजन सौभाग्यजननीं ।
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्त: प्रभवति हि मोहाय महताम् ।। - सौन्द० ल० - 5

का भाव रखकर ही होनी चाहिये इसका उपदेश करते हुये कवि कहता है - जप के समान वाणी की क्रिया, मुद्राओं की विरचना के समान सब कर्मकाण्ड प्रदक्षिणा के समान चलना, आहुति के समान भोजन करना, प्रणाम के समान शयन करना और सभी सुखों के उपभोग में आत्मसमर्पण की अवस्था यह सब मेरा विलास तुम्हारा ही पूजन क्रम होना चाहिये ।[1]

देवी बड़े-बड़े देवताओं से स्तुत्य हैं और उनकी परिचर्या में ब्रह्मा विष्णु, इन्द्र आदि देवता खड़े रहते हैं । अत: ऐसी भगवती निश्चय ही सेवा के योग्य हैं - अपने भवन में शिव को आता हुआ देखकर तुम्हारी परिचारिकायें उनके स्वागतार्थ खड़ी होकर जय हो, पुकारती हुयी कहती हैं कि सामने खड़े ब्रह्मा से मुकुट से टक्कर लग जायेगी, जम्भारि के मुकुट से भी बचें ।[2]

1- जपो जल्प: शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गति: प्रादक्षिण्यक्रमणं अशनाद्याहुतिविधि: ।
प्रणाम: संवेश: सुखमखिलं आत्मार्पणदृशा ।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ।। - सौन्द० ल० - 27

2- किरीटं वैरिंचं परिहर पुर: कैटभभिद:
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जंभारिमकुटम् ।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्ति: विजयते ।। - सौन्द० ल० - 29

भगवती के चरणों का पूजन चंचल चित्त वाले साधक के लिये सुलभ नहीं है क्योंकि कवि का उसके बारे में मन्तव्य है - हे देवि ! तुम पुजारी के अन्त:पुर की साम्राज्ञी हो, इसलिये तुम्हारे चरणों की सपर्या पूजन की मर्यादा चपल चित्त वालों के लिये सुलभ नहीं होती तथा इन्द्र के नेतृत्व में खड़े हुये सब देवता तुम्हारे द्वार पर खड़ी हुयी अणिमादि सिद्धियों से निकट तक ही पहुँचते हैं ।[1]

वस्तुत: भक्ति के चरणोदक में कवित्व शक्ति भरी हुयी है जिसका पान करके जन्म का गूँगा साधक भी वाणी को प्राप्त कर सकता है । अत: उसको पान करने की कामना से स्तुति करते हुये कवि कहता है । हे माता ! तुम्हारे चरणों का धोवन लाक्षारस अर्थात महावर से लाल हो रहा है, उसके पान करने का समय मुझे कब प्राप्त होगा ? वह चरणोदक सरस्वती के मुख कमल से निकले हुये पान के रस के समान जन्म से मूक को भी कवित्व शक्ति प्रदान करने में समर्थ है ।[2]

1- पुरारातेरन्त: पुरमसि ततस्त्वच्चरणयो:
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा ।
तथाह्येते नीता: शतमखमुखा: सिद्धिमतुलां
तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमरा: ।। - सौन्द० ल० - 95

2- कदा काले मात: कथय कलितालक्तकरसं
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम् ।
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया
कदा धत्ते वाणीमुखकमलताम्बूलरसताम् ।। - सौन्द० ल० - 98

भगवती से मिली हुयी वाणी के द्वारा ही उनकी स्तुति करना ऐसा कहकर साधक की अपनी असमर्थता और भगवती के सामर्थ्य के दिग्दर्शन में भक्ति की अभिव्यक्ति अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचती है और कवि अपने अहंकार का निराकरण करते हुये स्तुति करता है - हे जननि । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त वाक् शक्ति के द्वारा की गयी इस स्तुति के बाद दीपक की ज्वालाओं से दिनकर की आरती उतारने या चन्द्रकान्तमणि से स्रवते हुये जल-बिन्दुओं से चन्द्रमा को अर्घ्य देने अथवा समुद्र के जल से ही समुद्र का सत्कार करने के समान है ।[1]

भक्तिरस की मनोरम झाँकी महालक्ष्मी की पूजनीय मूर्ति के कल्याण प्रदान करने के वर्णन प्रसंग में भी मिलती है । कवि उनकी स्तुति करते हुये कहता है - जिस प्रकार मेघों की घनघोर घटा में बिजली चमकती है उसी प्रकार कैटभ दैत्य के शत्रु विष्णु के काली मेघपंक्ति की तरह मनोहर वक्षस्थल पर आप विद्युत के समान देदीप्यमान होती है तथा जो समस्त लोकों की माता भार्गवपुत्री श्रीलक्ष्मी की पूजनीय मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे ।[2]

1- प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम् । - सौन्द० ल० - 100

2- कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारेः धाराधरे स्फुरति या तडिदंगनेव ।
मातुस्समस्तजगतां महनीयमूर्तिः भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः । - कनक० 5

भगवती की कृपा से ही कवि श्रेष्ठ कविता करने में समर्थ होता है अन्यथा शरदपूर्णिमा की चाँदनी के समान श्वेत वर्णवाली द्वितीया का चन्द्रमा के समान जटाजूट रूपी मुकुट को धारण करने वाली, दो हाथों से त्राण करने के लिये अभयदायक और वरदायक मुद्रा प्रदर्शित करती हुयी स्फटिक मणिमाला और पुस्तक धारण किये हुये । भगवती को एक बार भी नमस्कार न करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ कवियों के समान मधु, क्षीर, द्राक्षा जैसे माधुर्य से परिपूर्ण कविता करने में कैसे समर्थ हो सकता है ।[1]

दानवीर भक्ति का एक और मनोरम चित्र द्रष्टव्य है - समस्त देवों के स्वामी इन्द्रपद का वैभव विलास {सुखोपभोग} देने में समर्थ है तथा मुर नामक दैत्य के शत्रु भगवान श्रीहरि को भी अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाली है एवं नीलकमल जिस लक्ष्मी का सहोदर भ्राता है, ऐसी लक्ष्मी के अधखुले नेत्रों की दृष्टि किंचित क्षण के लिये मुझ पर थोड़ा अवश्य पड़े ।

<u>शृंगार भक्ति :-</u> संस्कृत के काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने स्तोत्रों में रसानुभूति को गौण स्थान प्रदान किया है । देवविषयक रति का परिपाक रस रूप में न करके भावरूप में किया । भाव रूप होने के कारण नारी को रति का वास्तविक स्वरूप माना गया तथा कवियों एवं आचार्यों नें शृंगार को अत्यधिक महत्ता प्रदान की । ऐसे स्तोत्र साहित्य का निर्माण किया गया जिसमें अनुभूति की सघनता का स्थान अलंकरण प्रधान शैली को मिला ।

1- विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्षम् आनन्दहेतुरधिकं मुरविद्वषोऽपि ।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धम् इन्दीवरोदर सहोदरमिन्दिरायाः ।।
कनक0 - 7

दिव्य शृंगार को अलौकिक शृंगार भी कहा जाता है । देव वर्णन में शृंगार की परिपाटी प्रारम्भ से ही है । भक्ति में माधुर्य के समावेश होने के साथ-साथ स्तोत्र परम्परा पर भी इसका बहुत प्रभाव पड़ा । मध्यकालीन भक्ति के प्रचार आन्दोलन के साथ इसके मूलभावों में एक प्रकार की गुह्य शृंगार भावना का समावेश हो गया तथा यह उच्च कल्पना तथा लौकिक शृंगार भावना के साथ प्रकट की जाने लगी । इस प्रवृत्ति के कारण संस्कृत स्तोत्र साहित्य का विकास एक नयी दिशा में हुआ जहाँ भक्ति तथा शृंगार क्षितिज के समान मिल गये प्रतीत होते हैं । बाणभट्ट के चण्डीशतक में शृंगार समावेश का अवसर अपेक्षा - कृत अधिक था आगे चलकर विकसित होती हुयी यह परम्परा चण्डीकुचपंचाशिका जैसी रचनाओं में जिन्हें स्तोत्र कहने में संकोच ही नहीं खेद भी होता है, परा - काष्ठा को प्राप्त हो गयी । यह शृंगार वर्णन देवी के अनेक स्वरूपों से सम्बद्ध स्तोत्रों में प्राप्त होता है । शृंगार वर्णन में कवि अपने आराध्यदेव को दिव्य - कोटि का मानकर उसकी आराधना करता है ।

आराधक अपने शक्ति के प्रत्यंग वर्णन तथा सौन्दर्य में अपने को लीन कर देता है तथा उसी के वर्णन में अपनी चमत्कृति की सफलता समझता है । चूँकि कवि का प्रधान विषय देवी का सौन्दर्य ही होता है अन्य वस्तुएं गौण हो जाती है । अत: ऐसी दशा में रसवद् अलंकार की स्थिति आ जाती है । सौन्दर्य- लहरी शृंगार प्रधान काव्य है जिसमें नेपथ्यशृंगार के भव्य निदर्शन के साथ ही दिव्य शृंगार की सम्यक् अभिव्यक्ति की गयी है ।

मूकपंचशतीकार मूक कवि ने शंकर तथा पार्वती के संयोग को विशुद्ध तान्त्रिक भूमि पर शृंगाराद्वैत की संज्ञा प्रदान की है ।[1]

श्रीहरि (विष्णु) के रोमांच से शोभायमान लक्ष्मी की कटाक्ष लीला के वर्णन प्रसंग में भी शृंगार-भक्ति की अच्छी झलक मिलती है । कवि शंकराचार्य के शब्दों में प्रस्तुत है - जिस प्रकार भ्रमरी अर्धविकसित पुष्पों से अलंकृत तमालवृक्ष का आश्रय ग्रहण करती है, उसी प्रकार भगवान श्री हरि के रोमांच से शोभायमान लक्ष्मी की कटाक्षलीला श्री अंगों पर अनवरत पड़ती रहती हैं और जिसमें समस्त धन-सम्पत्ति का निवास है वह समस्त मंगलों की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी की कटाक्षलीला मेरे लिये मंगल प्रदायिनी हो ।[2]

महालक्ष्मी की कटाक्षलीला का विविध रूप में शृंगारिक वर्णन करते हुये कवि उनकी प्रभूत सम्पत्ति प्रदायक होने की कामना से स्तुति करते हुये कहता है कि - जिसकी पुतली एवं भौहें काम के वशीभूत हो अर्धविकसित एकटक नयनों से देखने वाले आनन्दकन्द भगवान मुकुन्द को अपने सन्निकट पाकर किंचित तिरछी हो जाती है ऐसे शेष शय्या वाले भगवान विष्णु की अर्धांगिनी श्री लक्ष्मी जी के

1- तुंगाभिरामकुचभरशृंगारितमाश्रयामि कांचिगतम् ।
गंगाधरपरतन्त्रं शृंगाराद्वैततन्त्रसिद्धान्तम् ।। - आर्याशतकम् - 10

2- अंगं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती भृंगांगनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अंगीकृताखिलविभूतिरपांगलीला मांगल्यदास्तु मम मंगलदेवतायाः ।। कनक० स्तो० ।

नेत्र हमें प्रभूत धन-सम्पत्ति प्रदायक हो ।[1]

जिस भगवान के कौस्तुभ मणि से सशोभित वक्षस्थल में इन्द्रनीलमयी हारावली की तरह सुशोभित होती है तथा उन भगवान के भी चित्त में काम संचारिणी कमल निवासिनी लक्ष्मी की कटाक्षलीला मेरा मंगल करे ।[2]

वात्सल्य भक्ति :- अपनी सन्तान या उस श्रेणी के अन्य प्रिय सम्बन्धी से जो स्नेह होता है उसे वात्सल्य कहते हैं इसमें भी रति भाव दूर से झाँकता मालूम पड़ता है । वात्सल्य भी रतिभाव का ही रूपान्तर कहा जा सकता है किन्तु इसमें भी कवि की देवविषयक भक्ति ही प्रधान है अत: इसमें वर्णित वात्सल्य रस प्रधान न होकर भक्तिभाव का ही अंग है । शक्ति-स्तोत्रों में विशेषकर शंकराचार्य के देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र में वात्सल्य भक्ति की कई स्थलों पर अच्छी झाँकी मिलती है । प्रस्तुत स्तोत्र में कवि कहता है - हे शिवे ! मुझे त्याग देना तुम्हें उचित नहीं, क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है परन्तु माता कुमाता नहीं होती ।[3]

1- आमीलितार्धमधिगम्य मुदा मुकुन्द
मानन्दमन्दमनिमेषनंगतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितकनीनकपक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजंगशयांगनाया: ।। - कनक० - 3

2- बाह्वन्तरे मधुजित:श्रितकौस्तुभे या, हारावली च हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला, कल्याणमावहतु मे कमलालयाया: ।।
कनक० - 4

3- पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहव: सन्ति सरला:
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुत: ।
मदीयोऽयं त्याग: समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति ।। - देव्यपरा० - 3

जैसे शस्त्र के प्रहार से चर्म अथवा धातु का बना हुआ कवच ॥ढाल॥ रक्षा करता है, उसी प्रकार दैवी आघात से ॥यान्त्रिक शक्ति॥ कवच रक्षा करता है ।

ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण में प्रकृतिखण्ड में नारद - नारायण संवाद में ब्रह्माण्ड मोहन कवच नाम 67 वाँ अध्याय है । ब्रह्मवैवर्त्त में 2 खण्ड 67 वें अध्याय में प्रथम श्लोक से प्रारम्भ होकर 27 वें श्लोक तक है । नारद नारायण से कहते हैं :-

इस कवच के धारण करने से, सभी तीर्थयात्रा और पृथ्वी का भ्रमण करने से जो फल मिलता है, वही फल मिलता है । कवच के सिद्ध होने पर पुत्र-पौत्र आदि होते हैं और घर में लक्ष्मी स्थिर रहती है ।

कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्नसंशय: ।
स्थाने च सर्वतीर्थानां, पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ।।
यत्फलं लभते लोकस्तदेव धारणान्मुने ।
पंचलक्ष जपेनैव सिद्धमेतद् भवेन्मुने ।।[1]

इस पुराण के इसी अध्याय में दुर्गा नाम है जैसे -'श्रृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गाया: कवचं शुभम्' । इस अध्याय के अन्त में दुर्गतिनाशिनी कवच है । ब्रह्मवैवर्त्त में महागणपति खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में दुर्गतिनाशिनी कवच नाम से एक चौथा अध्याय ही है ।

1- ब्रह्मवैवर्त्त पु0 2/67/16-19

<u>शान्त रस</u> :- शान्त भक्ति रस का शमी अथवा शमप्रधान पुरूष ही करते हैं ।[1] इस रस का स्थायी भाव शान्ति रति प्रसिद्ध है जो दो प्रकार की मानी गयी है - शमा तथा सान्द्र ।[2]

स्तोत्र काव्य में शान्त रस ही अंगीभूत रस माना जाता है । यद्यपि उसमें भक्ति एवं करूण रस भी पूणतया समाविष्ट रहते हैं पर चूंकि स्तोत्रकाव्य का लक्ष्य विकार और वासनाओं का शमन करना है । अत: शम या निर्वेद के व्याप्त रहने से शान्त रस ही आद्यन्त व्याप्त रहता है । भक्त अपने आराध्य से दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की निवृत्ति हेतु प्रार्थना करता है । फल - स्वरूप विकार और वासनाओं की निवृत्ति देवी प्रार्थना द्वारा ही सम्भव होती है ।

संसार की असारता का आलम्बन एवं प्रवृत्तिमार्ग के अनुयायियों के प्रवृत्तिजन्य दोषों का दिग्दर्शक होने से शान्तरस का अस्तित्व प्राय: समस्त स्तोत्रों में पाया जाता है । विनय सम्बन्धी और प्रार्थना सम्बन्धी स्तोत्रों में शान्तरस विशेष रूप से पाया जाता है ।

शान्त रस से शान्त भक्ति रस का वैशिष्ट्य है कि इसमें भगवत्स्वरूप का अनुभव ही सुखानुभूति के आधिक्य का कारण होता है । उदाहरणार्थ -

---

1- शमिनां स्वाद्यतां गता: - ह0 भ0 र0 सि0 - 3/1/3

2- अत्र शान्तिरति: स्थायी समा सान्द्रा तु सा द्विधा । - वही - 3/1/24

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं

कवीन्द्रा: कल्पन्ते कथमपि विरिंचप्रभृतय: ।

यदालोकौत्सुक्यात् अमरललना यान्ति मनसा

तपोभि: दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम् ।।[1]

इस स्तोत्र में भगवती विषयक रति ही स्थायी भाव है । इस श्लोक में भगवती का सौन्दर्य वर्णन होने से यद्यपि शृंगार रस होना चाहिये था किन्तु भगवती तो संसार की निर्माणकर्त्री तथा जगदम्बा है, उनके सौन्दर्य को देखने की शक्ति तो शिव के अतिरिक्त किसी अन्य देवता में भी नहीं है फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? इसलिये यहाँ शान्त भक्ति रस होगा । सौन्दर्य लहरी के सभी श्लोकों में इसी भक्ति रस का समावेश है ।

नि:सन्देह शक्ति स्तोत्रों में करुणा का चित्रण अनेक रूपों में किया गया है । करुण का विवेचन करुण अतिकरुण महाकरुण लघुकरण आदि करुणा के मात्रा-भेद के अनुसार किया गया है । यह रस बड़ा ही कोमल है प्रीति और वात्सल्य आदि की सहचरी भावनाओं का भी सुन्दर चित्रण किया गया है । यह रस बड़ा ही कोमल है । प्रीति और वात्सल्य आदि की सहचरी भावनाओं का भी सुन्दर चित्रण किया गया है । प्रीति केवल शोक को उत्पन्न नहीं करती बल्कि सहानुभूति को जागृत करती है । सहानुभूति के साथ सहृदयता हृदय को दिव्य बना देती है । स्तोत्रों में समाहित करुण प्रिय वियोगजनित नहीं है । देवी को प्राप्त करने की व्याकुलता का चित्रण सर्वत्र है ।

1- सौन्दर्य लहरी - 12

पंचम अध्याय

देवोपासना व्यवस्था में शक्ति का महत्व

पंचम अध्याय

देवोपासना व्यवस्था में शक्ति का महत्व

संसार में शक्ति पूजा कब से प्रचलित हुयी, इसका ठीक-ठीक ज्ञान न होने पर भी अनुमान से यह तो कहा ही जा सकता है कि जब से मानव जाति ने होश सम्भाला तभी से इसका श्री गणेश हो गया होगा। वास्तव में शक्तिपूजा मनुष्य के लिये नितान्त स्वाभाविक है। यह संसार के सभी देशों में रही है, अतः सार्वभौमिक है। प्रत्येक जाति अपना विकास और उन्नति चाहती है, उसकी प्राप्ति का उपाय शक्ति-पूजा ही है। यह प्राणिमात्र के लिये स्वाभाविक है कि उसकी पहली श्रद्धा और विश्वास की पात्र उसकी जननी होती है और मनुष्य तो बौद्धिक प्राणी है। इसलिये उसकी श्रद्धा भावनाओं से भरी रहती है। जगत एक कार्य रूप माना गया है जिसके कारण माता-पिता रूप में कल्पित किये गये पिता बीजप्रद ईश्वर हुआ और माता प्रकृति मानी गयी। पुरुष और प्रकृति की कल्पना भी सम्भवतः जगत के कार्य रूप की चिन्तन से ही हुआ और इसीलिये वेदों में पृथ्वी को माता कहा गया है 'माता पृथ्वी पुत्रोऽहम् पृथिव्या'। यहाँ पृथ्वी को सम्पूर्ण प्रकृति की प्रतिनिधि रूप में माना गया है और शक्ति प्रकृति की ही पर्यायवाची कही गयी है। अतएव प्रकृति या शक्ति की उपासना मानव ने सहज रूप में अपनी सभ्यता के अरुणोदय के क्षण से ही प्राप्त किया और शक्ति को आद्याप्रकृति कहा - 'प्रकृतिस्त्वमाद्या' और जितने अन्य देवों की उपासना परवर्ती काल में विकसित हुयी उसके मूल में वस्तुतः शक्ति की ही कल्पना थी और उस

विशिष्ट देवता को शक्तिमान अथवा समर्थ रूप में कल्पित किया गया ।
वस्तुत: देवों के आभ्यन्तर अथवा हृदय में शक्ति उपासना व्याप्त रही है ।

प्रकृति की जितनी शक्तियाँ हैं वे सब ईश्वरीय शक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं । इसी से उस मूलशक्ति को स्वसामर्थ्ययुक्त कहा गया है । विश्व में जहाँ कहीं शक्ति की अभिव्यक्ति होती है वहाँ सनातन प्रकृति अथवा जगदम्बा की ही सत्ता है । उस शक्ति को माता कहना युक्ति संगत है, क्योंकि जननी की भाँति वह सृष्टि को विकास के पूर्व अपने उदर में रखती है, उसका पोषण और प्रसार करती है तथा उत्पन्न होने पर उसकी रक्षा करती है । जैसे लोक में माँ अपने शिशु के पुकारने पर दौड़कर उसे गले लगा लेती है वैसे ही शक्ति भी मानव की कातर पुकार सुनकर या उसका अपनी ओर थोड़ा सा झुकाव होते ही उसकी रक्षा के लिये तैयार रहती है । ब्रह्म, परमात्मा, चित्ति, माया, शक्ति, प्रकृति आदि शक्ति के नाम हैं । अग्नि का दाहशक्ति के साथ जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध ब्रह्म की ब्रह्म शक्ति के साथ है । अग्नि की दाहशक्ति अग्नि से पृथक नहीं है उसी प्रकार ब्रह्म की शक्ति भी ब्रह्म से पृथक नहीं है । शक्ति चिदानन्दस्वरूपिणी परमात्मा की सत्ता से सृष्टि आदि सब कार्यों को करने वाली है ।

शक्ति के रूप की कल्पना प्राचीन साहित्य से ही मिलती आ रही है । किसी न किसी रूप में शक्ति का संकेत अवश्य मिलता है । वेदों में परम पुरूष के ब्रह्म और शक्ति दो रूप माने गये हैं । परम पुरूष स्रष्टा ने विश्व निर्माण की इच्छा से ही अपने को दो रूपों में प्रकट किया । ऋग्वैदिक मन्त्रों

के अनुसार सारा जगत शक्ति निर्मित है । चराचर विश्व के सभी पदार्थों का आदि और अन्त वही महाशक्ति है । संसार के सारे पदार्थ उसी के रूप हैं । अत: वही महाशक्ति परमेश्वर है जो सर्वभूतों में मातृ और शक्ति रूपेण संस्थित है ।[1] शक्ति के बिना सारे पदार्थ निष्क्रिय हैं अत: चराचर में प्रति - क्षण उसी महाशक्ति के विविध रूप चरितार्थ हो रहे हैं । शक्ति अदृश्य है किन्तु उसके विविध रूप अपना प्रभाव तथा चमत्कार प्रदर्शित करते हैं । शक्ति न तो शून्य में उत्पन्न की जा सकती है और न शून्य में उसका लय ही हो सकता है । अविनाशी द्रव्य अविनाशी शक्ति का रूपान्तरण है । अत: समस्त चराचर के स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ शक्ति के ही परिवर्तित रूप हैं ।

शक्ति के रूप की कल्पना भी महत्वपूर्ण है । लोगों का कहना है कि आर्यों ने शक्ति-पूजा द्रविड़ों से - अनार्यों से ग्रहण की । इस सिद्धान्त पर भी विश्वास किया जा सकता है, क्योंकि वेदों में भी शक्ति की आराधना के सम्बन्ध में में अनेक ऋचायें मिलती हैं । वास्तविकता चाहे जो हो इसमें सन्देह नहीं है कि आर्यों ने शक्ति का स्वरूप, शक्ति की चरितावली और शक्तिपूजा के उपचारों का जैसा उल्लेख किया है वह अवश्य ही अनूठा अद्वितीय और परम महत्वपूर्ण है ।

शिव के समान शक्ति के भी दो रूप सौम्य और उग्र है । जिस रूप में वह दानवों का संहार करती हैं, महामाता कहलाती हैं । यह एक प्रबल सत्य है कि पुराणकाल में देवी के इन दोनों रूपों के मौलिक भेद का

1- या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । - दुर्गा सप्तशती

भी कुछ-कुछ ज्ञान लोगों को अवश्य रहा । देवी की महामायी शक्ति ही योगनिद्रा और वैष्णवी कहलाती हैं । यही विन्ध्याचल निवासिनी अष्टभुजा दुर्गा हैं । महादेवी पार्वती का सामर्थ्य विलक्षण है । सर्वदा स्वतन्त्र होते हुये भी परमात्मा शिव उनके द्वारा परतन्त्र कर दिये जाते हैं ।[1] पुराणों के मनन से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम अम्बा की पूजा शिव के सहचरी के रूप में हुआ करती थी, किन्तु कालान्तर में शिव की सहचरी माने जाने के बावजूद देवी की उपासना स्वतन्त्र रूप से होती रही और होते -होते उसने एक अलग मत का रूप धारण कर लिया, जिसका अपना अलग साहित्य था और अपने आगम ग्रन्थ तक थे । इन्हीं आगम ग्रन्थों के अपरकालीन संस्करण 'तन्त्र' कहलाये इस मत में देवी की शक्ति के रूप में कल्पना करने के कारण इस मत का नाम 'शाक्त' मत पड़ा ।

उसकी एक क्रूर एवं भयावह देवता के रूप में भी कल्पना की जाती है । कभी-कभी उसे सम्पूर्ण देवों में श्रेष्ठतम बतलाया जाता है और ब्रह्मा, विष्णु एवं रूद्र भी उससे उत्पन्न बतलाये गये हैं । कालान्तर में उसकी शक्ति का इतना अधिक विकास हो जाता है कि सम्पूर्ण देवताओं की भी वही शक्ति मानी जानी लगती हैं । पुराणों में वर्णित देवी के इस स्वरूप का प्रमुख कृत्य

1- स्वतन्त्रः परतन्त्रश्च त्वया देविकृतो ह्यहम् ।
सर्वकर्त्री च प्रकृतिर्महामाया त्वमेव हि ।। - शिव महा० 2·3 29-30

दानवों का संहार करना था । इन दानवों में सबसे बड़ा महिषासुर था । इसके अतिरिक्त शुम्भ, निशुम्भ, मधु कैटभ आदि प्रमुख दानवों का संहार देवी ने किया था । इन सब वीर कार्यों में भी क्रूर रूप ही प्रमुख है । अत: उनको पार्वती से भिन्न रूप नहीं माना जाता था । देवी की उपासना का विशेष अवसर नवरात्र माना जाता है । उसमें भी अष्टमी एवं नवमी को विशेष रूप से इनकी उपासना होती है । देवी की इस पूजा वर्णन को देखकर यही भावना दृढ़ होती है कि जो देवी को इस प्रकार पूजते थे वे विशुद्ध ब्राह्मण धर्मानुयायी धार्मिक थे । देवी की उपासना शैव और वैष्णव भी समान रूप से किया करते थे । देवी के विजातीय रूप ज्ञान के लिये एक दूसरी उपासना-पद्धति है जिससे बड़ा अन्य प्रबल साधन नहीं है ।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि देवी की उपासना का दूसर प्रकार वह है जो प्रारम्भ में इनके प्राचीन आर्येतर उपासकों में प्रचलित था । वे और उनके वंशज आर्य प्रभाव के अन्तर्गत आ जाने के बाद भी उसी प्राचीन रूप से देवी की उपासना करते रहे।

भगवान की शक्ति यद्यपि नित्य और सर्वदा स्थायिनी है किन्तु समय पड़ने पर ब्रह्म की वह सर्वत्र व्याप्त शक्ति उद्भूत होकर विशेष कार्य किया करती है । दुर्गासप्तशती में उल्लेख है -

---

1- तया सर्वेषु देवेषु श्री परम्बा विशिष्यते ।। - शिव म0 5,11,17

त्रिदेवजननीं नित्यां भक्ताभीष्टफलप्रदाम् । - वही - 5,45,59

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याऽप्यभिधीयते ।। -दुर्गा स0अ0 1.66

पुराणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि संकट के समय साररूप से पृथक हुयी उस शक्ति से ही अनितरसाध्य, जो दूसरों से नहीं हो सकते वह कार्य शक्ति से आज तक हुये हैं । जिस समय मधु कैटभ का उपद्रव आरम्भ हुआ उस समय सर्वत्र व्याप्त हुयी उस ब्रह्म की शक्ति ने ही पृथक् उद्भूत होकर जगत की रक्षा की । इसी प्रकार महिषासुर के द्वारा त्रिलोक का क्लेश पहुँचने पर ब्रह्म के अंश भूता सब देवताओं के अन्दर से निकलती हुयी उस शक्ति ने एकत्र होकर सबकी रक्षा की थी । इसके अतिरिक्त शुम्भ निशुम्भ के त्रैलोक्य विजय कर लेने पर प्रकट हुयी उस शक्ति ने देवरक्षा का कार्य किया था । इसी शक्ति विशेष को महामाया, भगवती, देवी, जगदम्बा आदि से स्मरण करते हुये भावुक लोग उपासना किया करते हैं । उनका मानना है कि वही 'शक्ति' देवों से लेकर साधारण मनुष्य कीट पतंगादि तक को इस कार्य मार्ग में प्रेरणा दिया करती है -

शिवादीनपि कर्माणि कारयन्ती जनानिव ।

मायावलम्बयते सेयम्बा श्रीशिवसुन्दरी ।।

किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय में उस अदृश्य शक्ति के बिना किसी भी कार्य का होना नहीं माना गया है । उसकी प्रेरणा के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता ।

भारतीय चिन्तन धारा - वैदिक एवं पौराणिक सम्प्रदाय में, नाम-भेद के अतिरिक्त एक से ही रंग में प्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है । तथ्य यह है कि शक्ति का जहाँ प्राधान्य उभर पाया, वहाँ शाक्तधर्म या शाक्तशास्त्र प्रकाश में आ गया और जहाँ के समाज में शिव या विष्णु को प्रधानता दी गयी, नाम-भेद के चक्कर में न पड़ा जाय तो मूल में सभी विभिन्न देवरूपों और धर्मशास्त्रों का महत्वपूर्ण उद्देश्य एकमेव ही दिखायी देता है ।[1]

मातेश्वरी शक्ति परमेश्वर की उन प्रधान शक्तियों में से एक है, जिसका रूप आवश्यकतानुसार समय-समय पर विभिन्न रूपों में प्रकट होता रहा है । देवीभागवतमहापुराण में व्यवहृत देवी, माया, प्रकृति, शक्ति आदि अनेक शब्दवाच्य (प्राय:) ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य के लिये ग्रहण नहीं किये गये हैं, अर्थात माया विशिष्ट ब्रह्मरूप-भगवती-रूप का बोध कराने के लिये 'माया' आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा देवीभागवत में 'भगवती' की उपासना का विषय प्रकाशित हुआ है ।

पुराणमर्मज्ञों की ऐसी मान्यता प्रचलित रही है कि 'देवीभागवत' तन्त्रानुसारी है अर्थात इसमें तन्त्र का प्रचुर भाव संनिहित है । शाक्तों ने देवी भागवत के आधार पर अपने तन्त्रात्मक साहित्य का इतना विस्तार किया कि उनकी कृतियाँ भी शास्त्र बन गयीं । देवीभागवत में प्रकृति या शक्ति की

1- एकैव शक्ति: परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहारकाले ।
पुरुषेषु विष्णुर्भोगे भवानी समरे च दुर्गा प्रलये च काली ।।

प्रधानता को दर्शाया गया है और यह मान्यता प्रकट की गयी है कि महाशक्ति ब्रह्मरूपा है । भारतीय वाङ्गमय तत्व-विज्ञान के अनुसार महाशक्ति को मानव देह में भी साधक, अपने शरीर के अन्तर्वर्ती ब्रह्मरन्ध्र में संधानकर प्राप्त कर सकता है । 'ह्रीं' बीजमन्त्र , काली, तारा आदि की जो साधना करते हैं, वे जन ब्रह्मरूपिणी भगवती महाशक्ति की ही उपासना करते हैं ।[1] भगवती जगद्धात्री, बुद्धि-विद्यारूपिणी भगवती आराध्य है । प्रकृति पुरूषमय इस विश्व की उत्पत्ति शक्ति से ही होती है ।[2]

शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होने के कारण ब्रह्म और उसकी शक्ति दोनों एक ही हैं । दृश्यमान भेद केवल नाममात्र का है । ईश्वर का जो स्वरूप है, वही स्वरूप शक्ति का भी है । शास्त्रकारों ने अपने-अपने ढंग से नाना नामों की उपाधि देकर शक्ति की महिमा को प्रकाशित किया है ।

संसार में केवल हिन्दू-धर्म ही ऐसा है जिसमें पूजा को विशेष महत्ता दी गयी है । विशिष्ट योगियों और सर्वसाधारण के लिये शक्ति प्राप्ति के साधनों में पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है । धर्मग्रन्थों में उपासना के सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के विधानों के उल्लिखित होने पर भी सगुण

1- ब्रह्मविद्या जगद्धात्री सर्वेषां जननी तथा ।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।
सैव सेव्या च पूज्या - - - - - - - - - । - मार्कण्डेय पु0, देवीमाहात्म्य

2- सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थः कासि त्वं महादेवि ।
साब्रवीदहं ब्रह्मरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत ।{देवी-अथर्वशिरोभाग}

ने ही मनुष्यों का ध्यान आकर्षित किया । संसार में आसक्त साधकजन देवी के सगुण भाव को और निर्मल ज्ञानी एवं विवेकीजन देवी के निर्गुण-भाव को अपनाकर आराधना करते हैं ।

देवीभागवत पु0 में शक्ति के कथन से शक्ति और ब्रह्म का अभेद प्रमाणित होता है -

सदेकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मति विभ्रमात् ।।
नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये ।
सर्गे सति विभेदः स्यात् कल्पितोऽयं धिया पुनः ।।

मुझमें और उस ब्रह्म में तनिक भी भेद नहीं है । हम सदा एक ही हैं । जो वह है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वह है । - - - - - - - वस्तुतः संसार का अभाव होने पर मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न नपुंसक ही हूँ । फिर सृष्टि आरम्भ हो जाने पर यह भेद हो जाता है । बात बहुत ही युक्ति-युक्त है । निर्गुण, निर्विशेष, असंग, शक्ति रहित चिन्मात्र ब्रह्म से जगत के सृजन , पालन और संहार का कार्य हो ही नहीं सकता । इसके लिये शक्तिमान ब्रह्म की आवश्यकता है । अवश्य ही शक्तिमान और उसकी शक्ति का नित्य एकत्व है । शक्ति न हो तो शक्तिमान की सत्ता नहीं रहती और शक्तिमान न हो तो शक्ति के लिये कोई आधार नहीं रह जाता । एक ही परात्पर शक्तिमान् की विभिन्न शक्तियाँ समस्त लीला कार्य सम्पादन

करती हैं वह परात्पर ब्रह्म पराशक्ति की प्रेरणा से ही शक्तियों के द्वारा कार्य करवाता है । अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन - पालन - संहार करने वाला अनन्त ब्रह्मा, विष्णु और शिव एवं उनके सहयोगी समस्त देवजगत में शक्ति के प्रभाव से ही समस्त कार्य सुचारु रूप से चलते रहते हैं - त्रिदेवों की शक्ति देवी के प्रति वचन हैं । विष्णु का कहना है - "ब्रह्म सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रूद्र संहार करते हैं - यह बात लोक प्रसिद्ध है परन्तु तुम्हारी इच्छा से ही हममें शक्ति आती है, तभी हम इस कार्य के सम्पादन में समर्थ होते हैं ।[1]"

शिव का कथन है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप धारण करके तुम जिस जगत की रचना करती हो, वह सम्पूर्ण चराचर जगत तुम्हीं बन जाती हो । तुम अपनी रूचि के अनुसार कौतूहल से ही भाँति-भाँति के वेष बनाकर लीला विलास करती हो और शान्त हो जाती हो ।[2]

तुम्हारे संयुक्त होने पर ही मैं ब्रह्मा सृष्टि-रचना में, विष्णु पालने में और शंकर संहार करने में समर्थ होते हैं । यदि आज तुमसे पृथक

1- ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः ।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वैकर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः ।।
- भगवान विष्णु-श्रीदेवीभा०3/4/40

2- भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम् ।
विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि ।। -
शिव-श्रीदेवी भाग०पु0,3/5/6

हो जाय तो हमारी सारी क्षमता ही चली जाय ।[1]

भगवती स्वयं कहती हैं कि वही सब हैं और संसार में उसके सिवा और कुछ नहीं है ।[2] वह समस्त देवताओं के विभिन्न नाम धारण करके रहती हैं । वही शक्ति रूप से पराक्रम करती हैं । वही गौरी ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारूणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी सब कुछ है । यदि शक्ति संसार से पृथक हो जाय या शक्ति न रहे तो संसार में कोई भी प्राणी हिल डुल नहीं सकता । यह देवी निश्चयपूर्वक कहती हैं । शक्ति से पृथक हो जाने पर शंकर जी दैत्यों को मारने में असमर्थ हो जाते हैं । इसी प्रकार विष्णु, शंकर, रूद्र, अग्नि, चन्द्रमा आदि सभी शक्ति के सहयोग से ही सफलता पाते हैं । पृथ्वी जब शक्ति से युक्त होती है, तभी वह स्थिर रहकर सबाको धारण कर सकती है । शक्ति न रहे तो वह परमाणु तक को धारण करने में असमर्थ हो जाय

आर्य - ऋषियों की साधनालब्ध अनुभूति के अनुसार एक ही परम तत्व के अनेक लीलारूप हैं और जगत के अनन्त वैचित्र्य युक्त मानवों के विभिन्न

1- त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो हरिस्त्रातुमम्ब त्वया संयुतश्च ।
हर: सम्प्रहर्तुं त्वयैवेह युक्त: क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ता: ।। - ब्रह्मा-श्री देवीभाग पु0 3/5/38

2- किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि ।
सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज ।। - श्रीदेवी भागवत पु0 3/6/11

स्वभावों की दृष्टि से उन अनेक लीलारूपों का वर्णन हुआ है । सभी लोग अपनी-अपनी रूचि तथा अधिकार के अनुसार अपने साध्य तथा साधन-पद्धति का निर्णय करके साधनपथ पर अग्रसर हो सकते हैं । प्राप्त होने वाली परम वस्तु तो वस्तुत: एक ही तत्व है । आर्य साधन-जगत की यही विशेषता है कि यहाँ परात्पर भगवान की विभिन्न नारी रूपों में पूजा हुयी है - और यह कल्पना नहीं है । वस्तुत: यह नारी रूप में पूजित होने वाली सभी रूप अधिकारी भेदानुसार एक ही परमतत्व के सच्चे स्वरूप हैं । जहाँ जिस स्वरूप तथा उपासना पद्धति का वर्णन है वहाँ उसी को परम साध्य तथा उसी को प्रधान साधन बतलाकर उसकी विशेषता का प्रतिपादन करने के साथ-साथ अन्यान्य सभी स्वरूप उसी के विभिन्न स्वरूप हैं तथा उसी से प्रकट हैं, ऐसा कहकर सबकी एकता का प्रतिपादन किया गया है । इस दृष्टि से श्रीमद्देवी - भागवत में महादेवी के विभिन्न स्वरूपों तथा उपासना प्रणालियों का विशद वर्णन है, जो साधक के हृदय को खींचने वाला है परन्तु तात्त्विक स्वरूप के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है उसका अध्ययन करने पर जरा भी संदेह नहीं रह जाता । शक्ति की उपासना दो रूप में प्रचलित है - §1§ सहायिका के रूप में §2§ स्वतन्त्र रूप में सहायिका के रूप में शक्ति की उपासना शिव - पार्वती विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सरस्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा इत्यादि देवी देवताओं के साथ होती है । विष्णु,शिव, राम, कृष्ण तथा अन्यान्य छोट-बड़े किसी की भी उपासना शक्तिरहित रूप में हो ही नहीं सकती ।

जिस प्रकार अन्य देवों की शक्तियाँ उन-उन देवों पर ही निर्भर रहती थी अर्थात उनकी पूजा देवों के बिना स्वतन्त्र रूप से नहीं होती थी, किन्तु कालान्तर में देवी की उपासना आदि स्वतन्त्र रूप से भी होने लगी मंदिरों में भी दुर्गा की मुख्य स्थान पर स्थापना होती थी । जो शक्ति विष्णु को विष्णु, शिव को शिव, कृष्ण को कृष्ण बनाये हुये हैं जिनके बिना उनकी स्वरूप सत्ता ही नहीं रहती और वे शक्तिमान रूप ही नहीं रहते तब उनकी अकेले की उपासना कैसे हो सकती है । शक्ति न रहने पर तो उनका स्वरूप ही नहीं रहेगा । शक्ति की स्वतन्त्र रूप से भी उपासना होती है जैसे काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि ।

तान्त्रिकों में दशमहाविद्या रूप में शक्ति की स्वतन्त्र उपासना प्रचलित है । देवी के भक्त इस पंचभौतिक शरीर को छोड़ने के बाद उनके लोक को जाते हैं । इस प्रकार न केवल इस लोक में ही देवी की स्वतन्त्र उपासना होती थी, अपितु लोकान्तर में उनके एक स्वतन्त्र लोक की कल्पना की गयी है ।

शक्ति को साथ माना जाय या न माना जाय, उपासना में शक्ति को साथ रखा जाय या न रखा जाय उपासना के समय शक्ति अवश्य साथ रहेगी । उनके बिना उपास्य तथा उसकी उपासना सम्भव ही नहीं । जब शक्ति शक्तिमान में निवास करती है तब शक्ति की उपासना से शक्तिमान की उपासना भी स्वतः ही हो जाती है । चूँकि शक्ति {देवी} में समस्त

देवताओं की शक्ति एकत्रित है अतएव अकेले शक्ति की उपासना से समस्त देवताओं की उपासना हो जाती है । इसलिये वैष्णव, शाक्त और शैवों में वस्तुत: कोई भेद नहीं है । देवताओं की उपासना करने वाले स्वभावत: शक्ति की उपासना करते हैं, चाहे इसका ज्ञान उनको न हो और इसी प्रकार शक्ति की उपासना करने वाले शक्ति के आधार शक्तिमान की उपासना करते हैं । अतएव मुख्य या गौण भेद से किसी भी शक्तिमान या शक्ति की उपासना की जाय, यदि उसमें अनन्यभाव हैं तो वह एकमात्र सच्चिदानन्द-तत्त्व की ही उपासना है ।

तथापि पृथक-पृथक रूपों में तथा विभिन्न नामों से शक्ति की उपासना की जाती है । वैष्णव लोग लक्ष्मी, राधा और सीता की उपासना करते हैं शैव उमा, सती और दुर्गा की उपासना करते हैं । इसी प्रकार शाक्त भी भैरवी की उपासना करते हैं । विशेष - विशेष अवसरों पर भगवान स्वयं उपदेश देकर भगवती देवी की उपासना अपने भक्तों से कराते हैं और भगवती स्वयं उपदेश देकर भगवान की उपासना करवाती हैं तथा इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती हैं । राम, कृष्ण, विष्णु, शिव इत्यादि की उपासना से क्रमश: सीता, राधा, लक्ष्मी, पार्वती, इत्यादि देवियों को अनिर्वचनीय सुख की प्राप्ति होती है । उपासना में इष्ट का रूप एक होना चाहिए । यह परम आवश्यक है । तथापि उस एक रूप की प्रसन्नता या आज्ञापालन के लिये अन्य रूप की उपासना करना भी कर्तव्य होता है । अर्जुन ने दुर्गा की तथा 'एकानंशा' शक्ति की उपासना की, श्रीराम ने शक्ति तथा शिव की

उपासना की, शिव ने भी शक्ति की आराधना की, गोपों ने अम्बिका की पूजा की, गोपरमणियों ने कात्यायनी की पूजा की एवं सीताजी और रुक्मिणी जी ने अम्बिका पूजन किया । ये सब कथायें प्रसिद्ध हैं ।

शक्ति और शक्तिमान में अभेद मानते हुये जिनकी जिस रूप में, जिस नाम, जिस तत्व विशेष में रुचि हो, जिसका जो इष्ट हो, उसकी उपासना उसके अनुकूल पद्धति से करनी चाहिये परन्तु यह सत्य है कि हमारे इष्ट की उपासना सभी लोग विभिन्न नाम-रूपों से करते हैं तथा हमारे ही परम इष्टदेव विभिन्न नाना रूपों को धारण किये हुये हो । देवताओं को प्राय: श्यामवर्ण दिखाया गया है । काले रंग पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता लेकिन दूसरे रंगों पर काला रंग चढ़ जाता है । इस प्रकार काले रंग में सारे रंग समाहित हैं । काला रंग चढ़ जाने पर दूसरे रंग का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता । तात्पर्य यह है कि भक्ति का रंग चढ़ जाने पर अर्थात साधना में लीन होने पर साधक को अन्य व्यभिचार प्रभावित नहीं करते हैं ।

हिन्दू धर्म में देवताओं के चरित्र-चित्रण के अनुकूल आचरण करने के लिये उनकी पूजा की जाती है । इसी प्रकार स्त्रियों को भी देवियों के समान आचरण करने के लिये शिक्षा मिलती है । समाज में शक्ति उपासना प्रचलित होने का एक कारण यह भी है कि जिस प्रकार साधक अपनी आराध्या देवी के प्रति श्रद्धा और आदर-भाव रखता है । उसी प्रकार वह धर्म से प्रभावित होकर समाज की स्त्रियों के प्रति भी आदर रखे तथा सही मार्ग से चले । यही शक्ति-उपासना का रहस्य और नैतिक दृष्टिकोण है ।

उपसंहार

उपसंहार

संस्कृत विश्व की सर्वाधिक समृद्धशाली भाषा है जिसमें अनेक रूपों में विषय की अभिव्यक्ति हुयी है । महाकवियों ने जहाँ एक ओर किसी ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर महाकाव्य रचना का बीणा उठाया था वहीं दूसरी विधा खण्डकाव्य का भी विकास समानान्तर होता गया । गीतिकाव्य के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य का अनोखा विकास हुआ । संदेश काव्य, दूतकाव्य, ऋतु चित्रण सम्बन्धी काव्य, शृंगारी शतक-काव्य, धार्मिक-काव्य, गीति-काव्य आदि का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि इस वाङ्‌मय का महत्वपूर्ण साहित्य स्तोत्रकाव्य के अन्तर्गत समाहित है ।

संस्कृत के कवियों ने जहाँ एक ओर स्तोत्र परम्परा को समृद्धिशाली बनाया वहीं पर उनके ऊपर आचार्यों का भी प्रभाव पड़ा और उन्होंने काव्य का महनीय और मान्य प्रयोजन 'कान्तासम्मित' उपदेश का समादर किया ! स्तोत्रकाव्यों के माध्यम से भारतीय मनीषियों ने ऐसी उपदेशात्मक तथा नीतिपरक बातों की शिक्षा दी है जो शायद किसी भी भाषा के साहित्य में प्राप्त करना असम्भव है । इसका प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा । जिस प्रकार धार्मिक साधु सन्त कल्याण तथा साधुता के प्रतीक एक सौ आठ गुच्छिका के माला का जापकर परमात्मा को पाने की चेष्टा

की है, ठीक उसी प्रकार हमारे कवियों ने इन स्तोत्रों को, जिसमें प्रत्येक मोती की अपनी स्वयं की आभा है, एक लड़ी के रूप में पिरोकर स्तोत्र काव्य रचे जिनको हमारे समाज ने नतमस्तक स्वीकार किया तथा इन मुक्ताओं के समूह का अक्षय ज्ञान-प्रकाश आज भी समाज को दिशा प्रदान कर रहा है ।

यद्यपि स्तोत्रकाव्यों का विकास हमें धार्मिक, उपदेशात्मक तथा शृंगारिक सभी क्षेत्रों में प्राप्त होता है उन्हें अन्यत्र प्राप्त करना दुर्लभ है । उपदेश के भी दो प्रकार हैं - एक साक्षात रूप से तथा दूसरी परोक्ष रूप से । इन स्तोत्रों का यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि समाज के प्रत्येक युग में यथार्थ दिशा प्रदान करने का कार्य भारतीय मनीषी ही अपने काव्य के माध्यम से करते रहें हैं ।

स्तोत्र काव्यों में रमणी को सौन्दर्य का केन्द्र मानकर हृदयगत भावों को काव्यात्मक रूप दिया गया । रमणी सौन्दर्य का स्वाभाविक विकास इन काव्यों में प्राप्त होता है । सौन्दर्य केवल रूप में ही नहीं अपितु विचारों में भी पाया जाता है । विचारगत सौन्दर्यभाव वाह्य उद्दीपन के कारण काव्यात्मक रूप में प्रस्फुटित हुआ । समय तथा समाज के बदलते स्वरूप से कवि लोग अपने को वंचित न रख सके और यही कारण है कि बाद में नायिका के उद्दीपक स्वरूप ने ही विषय वस्तु का रूप लिया तथा एक-एक अंग को प्रधानता देते हुये मन्दस्मितशतक, कटाक्षशतक, सौन्दर्य - लहरी, लक्ष्मीलहरी जैसे काव्यों का प्रणयन हुआ । इन काव्यों में विषय के

संकुचित होने के कारण पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रभाव बढ़ा, कवि मात्र एक ही अवयव को अपना उद्देश्य मानकर अपने भावों का प्रदर्शन करता रहा, परवर्ती युग में यह भावना अधिक विकसित हुयी तभी एक-एक अवयव पर सैकड़ों श्लोकों की रचना की गयी । इस समय तक आते - आते भाषा तथा भाव ने अपने मूल रूप का परित्याग कर दिया था कवियों ने अपनी प्रतिभा के आधार पर एक ही अवयव का चित्रण विभिन्न उपमानों के माध्यम से किया तथा काव्य में पुनरूक्ति दोष आने लगा एवं उपमाओं में अनुचितार्थत्व का समावेश हो गया ।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत स्तोत्रकाव्यों का अपना एक अनोखा योगदान है । यद्यपि स्तोत्रकाव्यों का स्थान गीतिकाव्य के अन्तर्गत प्रतिष्ठित होता है किन्तु इनमें गीति, धर्म, शृंगार सभी का समावेश होने के कारण ये संस्कृत साहित्य के आधार स्तम्भ प्रतीत होते हैं । स्तोत्रकाव्यों में पौराणिक आख्यान, ऐतिहासिक विषय, समाज का यथार्थ चित्रण, नीति सम्बन्धी बातें, धार्मिक तथा मोक्ष सम्बन्धी बातों का चित्रण प्राप्त होता है । स्तोत्र काव्यों में जहाँ एक ओर शृंगारी बातों का चित्रण किया गया है वहीं दिव्य शृंगार के माध्यम से परम पद पाने की भी चेष्टा की गयी है । वैसे धार्मिक स्तोत्रकाव्य सद्गति के प्रतीक हैं यथा चण्डीशतक, देवीशतक, सौन्दर्यलहरी, लक्ष्मीलहरी आदि । इन शतकों में कवियों ने अपने को देवी के प्रति समर्पित करके उनके स्वरूप

ज्ञान में ही अपनी सद्गति की प्राप्ति समझी है । धर्म को प्राथमिकता प्रदान करने वाला कवियों का यह समुदाय अपने आराध्या के वर्णन में ही अपनी सार्थकता मानता है ।

उत्तम काव्य के निम्नलिखित प्रतिमान स्वीकृत किये जा सकते हैं :

ओज, प्रासाद और माधुर्य गुण का सद्भाव, विशुद्ध-संस्कार-संयुक्त भाषा, विशिष्ट रीति सम्पन्नता, सरसता अलंकारयुक्तता, अभिधा शक्ति के साथ लक्षणा और व्यंजना का सद्भाव, सुन्दर छन्दों का समावेश, कौशिकी आदि वृत्तियों का समावेश एवं उक्ति चमत्कार ।

स्तुतिकारों ने अपनी स्तुतियों में उत्तम काव्य के समस्त प्रतिमानों को अपने काव्य में स्थान दिया है । पदलालित्य और गेयत्व भी स्तुतियों में पूर्णतया समाहित है । जो रचनायें नोक की प्रधान गानकर सम्पन्न की जाती हैं वे रस काव्य कहलाती हैं और जिन रचनाओं में देवादिविषयक प्रेम सम्पादित रहता है उन रचनाओं को भावकाव्य कहते हैं । भावकाव्य में भी शब्द, अर्थ, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, गुण दोष, रीति और अलंकार आदि तत्व रसकाव्य के समान ही पाये जाते हैं । भावकाव्य प्रधानत: देवी - विषयक अनुराग को पुष्ट करते हैं और मोक्ष तक पहुँचने का साधन बनते हैं । रागात्मक प्रवृत्ति को संसार के विषयों से पृथक कर उसे अन्तर्यामी भगवती के चरणों में समर्पित करना कम महत्वपूर्ण नहीं है । स्तुतिकारों ने शब्दमाधुर्य और अर्थव्यंग्त्व दोनों का सन्तुलित रूप में नियोजन किया है ।

व्यंजना प्रधान काव्य ही सर्वोत्कृष्ट काव्य है । उदात्तवर्ण, सुन्दरवृत्त एवं लाक्षणिक पद रहने पर भी पूर्णतः काव्य का चमत्कार ध्वनि के बिना सम्भव नहीं । जहाँ ध्वन्यर्थ प्रतिष्ठित है वहीं उत्तमकाव्य का अस्तित्व पाया जाता है ।

काव्य में अनुभूति की प्रधानता होती है और कवि अपने मन के सौन्दर्यबोध को कला के माध्यम से व्यक्त करता है । अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक आदि काव्य के लिये त्याज्य माने गये हैं । रसपोषण के लिये कवि अनेक युक्तियों का प्रयोग करता है । उसकी अनुभूति के आवेग जितने अधिक तीव्र होते हैं, रस का उत्कर्ष भी उतना ही अधिक बढ़ता है । जो कवि अपने भावों को जितना अधिक तीव्र बनाता है वह प्रकृति की पार्श्वभूमि को भी उसी रूप में अभिव्यक्त करता जाता है । इसके लिये उसे सन्दर्भों और प्रतीकों का भी प्रयोग करना पड़ता है । स्तुतिकारों ने जहाँ जिस रस या सन्दर्भ की योजना की है वहाँ पर उन्होंने रस-परिपोषक वातावरण का भी संयोजन कर दिया है । गीतिकाव्य रहने के कारण वर्णन सांकेतिक और मधुररूप में उपस्थित हुए हैं । शक्ति स्तोत्रों में काव्यात्मकमूल्य शब्दचित्र काव्यरसिकों को विशेष आनन्दित करते हैं । क्योंकि उनके द्वारा सूक्ष्म सौन्दर्य बोध की प्रतीति होती है । अनुप्रास और यमकों की योजना ने इन स्तुतिकाव्यों (शाक्त काव्यों) को अत्यन्त सरस और उपादेय बना दिया है । स्तुतिकारों की प्रतिभा का विकास उन्नत रूप में उपलब्ध होता

है । कल्पना भावना एवं विचारों का संगठित रूप इन स्तोत्रों काव्यों में पाया जाता है । रोचकता, श्रुतिमधुरता एवं मसृणता का समन्वय इन स्तोत्रों में पूर्णतया हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्यात्मक स्तोत्र साहित्य के शक्ति स्तोत्रों का महत्व किसी भी संस्कृत विधा से काम नहीं है । कवि के विषय की अभिव्यक्ति की सीमा होने के कारण शैली ही उसके विषय के स्पष्टीकरण का माध्यम बनता है तथा कवि सीमाबद्ध होता हुआ भी अपने काव्य में विषय की अभिव्यक्ति कर लेता है ।

यदि हम संस्कृत साहित्य में स्तोत्रों का स्थान निर्धारिण करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि गीतिकाव्य की समृद्धता केवल स्तोत्रकाव्यों के कारण ही है । स्तोत्र काव्यों की विषय वस्तु, वर्णन शैली तथा भाषा महाकाव्यों का अनुकरण करती है ।

शक्ति स्तोत्रों के पूर्णतया अध्ययन के आधार पर यह निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि अनवरत काल से निरन्तर प्रवाहमान धर्म भागीरथी से भारतीय जनमानस को सराबोर करके, उन्हें आनन्दामृत की अनुभूति कराने और नवजीवन प्रदान करने में, शक्ति स्तोत्र एवं तद्विषयक स्तोत्र साहित्य की परम आवश्यकता है । धर्मभीरू मानव जब अपनी शक्ति का पूर्णतया प्रयोग करके परास्त हो जाता है, तब उसमें फिर से चैतन्यता जाग्रत करने के लिये शक्ति तत्व की कल्पना की गयी है । जिनकी स्तुति पाठ करने पर

मृत शरीर में भी जीवन के लक्षण फिर से प्रकट होने लगते हैं । शक्ति की उपासना के द्वारा मानव अलौकिक शक्ति-लाभ की कामना करते हैं । लोकव्यवहार में भी हम लोग अपनी शक्ति के वर्द्धन एवं रक्षण के लिये भाँति-भाँति के यथासम्भव उपाय करते हैं । शक्ति स्तोत्र साहित्य इस लोक प्रचलित परम्परा को अलौकिक पद प्रदान करता है ।

संसार का समस्त मानवेतर प्राणी 'भोगयोनि' में उत्पन्न बताये गये हैं क्योंकि उन्हें केवल उत्पन्न होकर सुख-दुख को सहना है । वे अपनी मुक्ति का उपाय नहीं सोच सकते और न ही उस दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं ।

अकेला मनुष्य ही कर्म योनि में उत्पन्न हुआ है । 'बड़े भाग मानुष तन पावा' । मानव देह एक प्रयोगशाला है एक स्वर्णिम अवसरोपलब्धि है । क्योंकि एक मात्र मनुष्य ही उचित एवं अनुचित का ज्ञान (विवेक) रखता है । उचित में प्रवृत्ति तथा अनुचित से निवृत्ति मनुष्य ही सोच सकता है । पूर्वजन्म आचारित दुःसंस्कारों के कारण कभी - कभी होम करते भी हाथ जलते हैं, उपकार करते हुये भी कलंकित होना पड़ता है, प्रीति निभाते हुये भी प्रवंचित होना पड़ता है , धनार्जन करते हुए भी लुट जाना पड़ता है । संसार सागर के दुस्सह थपेड़े शरीर की स्वस्थता समाप्त कर देते हैं, चित्त उद्भ्रान्त हो उठता है ।

हृदय में दुश्चिन्ता दावानल का प्रतिभागी धूम्रबिम्ब उठता है और मनुष्य की सारी योग्यतायें समाप्त होने लगती हैं । ऐसे ही संकटापन्न क्षणों में

विवेकी पुरूष का सन्तप्त प्रधर्षित, पीड़ित, प्रताड़ित एवं आहतमन ग्राहग्रस्त गजेन्द्र बनकर अपने दष्टदेव के लिये क्रन्दन करने लगता है । ब्राहमाण्ड का कण - कण देवमय है, ईश्वरमय है । अग्नि चाहे शर्मी की लकड़ी से निकाल लीजिये, चाहे दो शिला खण्डों को परस्पर आहत कर चाहे दियासलाई से और चाहे विद्युत से है वह सर्वत्र ।

इसी प्रकार एक ही परमशक्ति विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान किसी भी नाम से आवाहित अभिमन्जित और प्रार्थित की जाने पर आर्तजन की रक्षा के लिये दौड़ पड़ती है । कवियों की दृष्टि में स्तोत्र-काव्य का यही मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है ।[1]

अब प्रश्न ये उठता है कि स्तोत्रों का देवशक्तियों के साथ सम्बन्ध क्या है ? स्तोत्र देवशक्तियों के साथ मानवशक्तियों के मंजुल समन्वय के वाचिक माध्यम हैं । जिनके द्वारा मनुष्य अपने अन्तर्भावों को उन तक पहुँचाता है और अपने अनिष्टनाम एवं इष्टप्राप्ति की कामना करता है । मेरी अपनी दृष्टि में स्तोत्रों का देवशक्तियों के साथ यही सम्बन्ध है ।

हमारी आज की सभी समस्याओं का मूल कारण यह है कि हम धर्म के व्यापक अर्थों के व्यावहारिक प्रयोग से वंचित हो गये । पुराणों में सभी वर्णों को ईश्वर स्तवन का अधिकारी घोषित करके मनुष्यमात्र को अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्त करने का सफल प्रयास किया गया है । दूसरे शब्दों में यह मानव को सम्प्रदाय विरोधी होने के लिये नहीं अपितु सम्प्रदाय

1- नवाष्टमालिका - राजेन्द्र मिश्र, पृ0 3-4

निरपेक्ष होने के लिये प्रेरित करता है । इस स्तुति वाचन से महात्मा गांधी की उस प्रियतम कीर्तन ध्वनि का पूर्वाभास होता है जो उनकी प्रार्थना सभाओं की आत्मा बनकर यूं करती थी "ईश्वर अल्लाह तेरे नाम सबको सन्मति दे भगवान ।"

शाक्त स्तोत्र का आनन्द उसके तन्मयतापूर्ण आचरण में निहित होता है । यह तन्मयता विकसित होकर मनुष्य को लोकमंगल की साधना में तन्मय होने के संस्कार जगाती है । सभी स्तुतियों में देवी से रक्षा की प्रार्थना यही सिद्ध करती है । इस दृष्टि से स्तुति विधान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही साधनों के माध्यम से मनुष्य में सच्ची मानवता को भासित करने में प्रयत्नरत है । स्तुतियां मानव मन में सबके प्रति आत्मवत व्यवहार की प्रेरक सिद्ध होती हैं ।

परोक्षत: स्तोत्र विश्व कल्याण की भावना को ही मोक्षदायिनी घोषित करते हैं । यह भक्तों के मन तथा प्राण को विषयों से हटाकर शक्ति में ही केन्द्रित कर देता है । इन स्तोत्रों का उद्देश्य प्राणियों में अवतारवाद में विश्वास जगाना है । ये शक्ति स्तोत्र मनुष्य को आत्मज्ञानोन्मुखी कराते हुये सबके प्रति आत्मवत व्यवहार का परामर्श देते हैं । ऐसा लगता है कि स्तुति विधान का आयोजन प्राणियों के मानसिक विकास के लिये किया गया है । विश्व में यदि कण्ठस्थ होने वाली कोई वस्तु है तो वह ईश्वर की स्तुति है । सामान्य से सामान्य बुद्धि वाला शक्ति प्रेमी तुलसी की वाणी

में वाणी मिलाकर पुकार उठता है -

"तुलसी इस संसार में सबसे मिलिये धाय,

न जाने किस रूप में नारायण मिल जाय ।।"

स्तुति के माध्यम से सबके प्रति आत्मवत व्यवहार का यह अमर संदे स्तुति विधान में ईश्वर प्राप्ति से प्रेरित है क्योंकि जिसमें विश्व विराजमान है वह किसी भी रूप में विराज सकता है ।

शोध-प्रबन्ध के पूर्वोक्त अध्यायों एवं वर्णनों में शक्ति की कल्पना और उपासना के विषय में जो कुछ भी विवरण दिया है । वह वस्तुत: एक शक्ति के स्वरूप और कल्पना के विषय में एक अंश ही कहा जा सकता है क्योंकि शक्ति के अनन्त स्वरूप और अनन्त उपासना के प्रकार हैं । फिर भी लघु शक्ति स्तोत्रों में शक्ति-स्वरूप महान आध्येय को विन्यस्त करने का कवियों एवं भक्तों ने जो प्रयत्न किया है उसे हम गागर में सागर भरना ही कहेंगे । उससे वारापार रूप की कल्पना यद्यपि कठिन होगी लेकिन संकेत तो मिल ही जायेंगे । जैसे 'ॐ' में परब्रह्म की कल्पना की जाती है वैसे ही इन लघु शक्तिस्तोत्र-काव्यों की कल्पना की गयी है ।

शब्द संकेत - सूची

सौ० ल०	- सौन्दर्य लहरी
कटाक्ष श०	- कटाक्ष शतकम्
कनक०	- कनकधारा स्तोत्र
मन्द० श०	- मन्दस्मित शतकम्
का० मा० गु०	- काव्यमाला गुच्छक
के० सं० वि०	- केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
मा० पु०	- मार्कण्डेय पुराण
अ०	- अध्याय
कुमार०	- कुमार सम्भवम्
नैषध०	- नैषधीयचरितम्
ह० भ० र० सि०	- हरिभक्तिरसामृतसिन्धुः
उप०	- उपनिषद
शत० ब्रा०	- शतपथ ब्राह्मण
आ०	- आरण्यक
पु०	- पुराण
महा०	- महाभारत
रामा०	- रामायण
बौ० गृ० सू०	- बौधायन गृह्यसूत्र
ल० तं०	- लक्ष्मी तन्त्र
शा० द०	- शाक्त दर्शन
ब्र० वै०, वि०, ब्र० ब्रह्माण्ड	- ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, ब्रह्म,,ब्रह्माण्ड इत्यादि पुर
देवी भाग० पु०	- देवीभागवत पुराण
त० सि० सा०	- तन्त्र सिद्धान्त और साधना

सहायक ग्रन्थ - सूची

1- आगम और तन्त्रशास्त्र - पं0 वज्र वल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशन, 1984

2- काश्मीर शैव दर्शन - डॉ0 भवर लाल जोशी , चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1968

3- तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त - डा0 गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1901

4- तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि - डॉ0 गोपीनाथ कविराज, बि0 रा0 प0, पटना, 1963

5- तन्त्र और आगम शास्त्रों का दिग्दर्शन - डॉ0 गोपीनाथ कविराज, बि0रा0प0,पटना, 1963

6- साधना और संस्कृति - डॉ0 गोपीनाथ कविराज, बि0 रा0 प0 , पटना, 1963

7- तान्त्रिक साहित्य - डॉ0 गोपीनाथ कविराज, बि0रा0प0,पटना, 1972

8- तन्त्र सिद्धान्त और साधना - पं0 देवीदत्त शास्त्री, स्मृति प्र0 इलाहाबाद, 1980

9- तन्त्र साधना और सार- पं0 देवीदत्त शास्त्री, स्मृति प्र0,इलाहाबाद, 1980

10 -मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य - डा0 शिवशंकर, विद्या भवन, वाराणसी, 1986

11- लक्ष्मी तन्त्र और दर्शन - डॉ0 अशोक कालिया, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद, लखनऊ, 1972

12- वैष्णव धर्म और दर्शन - डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड, लखनऊ

13- शिव पुराण में शिव - साहित्याचार्य, जितेन्द्र, निर्मोही बन्धु प्रकाशन,
दर्शन तत्व वाराणसी,

14-शाक्त दर्शन और हिन्दी - डा० सुरेन्द्र मोहन प्रसाद, अनुपम प्रकाशन, पटना
के वैष्णव कवि

15- साधना - साधु शान्ति नाथ, ओरियन्टल बुक ऐजेन्सी, 1938

16- सर्वदर्शन संग्रह - डा० उमाशंकर शर्मा, चौ० सं० सी०, विद्याभवन, वाराणसी , 1908

17- त्रिपुर रहस्य के आलोक- डा० माधवराम यादव, अभिनवगुप्त संस्थान, लखनऊ
में तान्त्रिक ज्ञान मीमांसा

18- तंत्रकला के प्रतीक - डा० रवीन्द्र नाथ मिश्रा

19- सन्त वैष्णव काव्य पर - डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय
तान्त्रिक प्रभाव

20- कश्मीर शैव दर्शन : मूल - कैलाश पति मिश्रा, अर्धनारीश्वर प्र० वाराणसी -
सिद्धान्त 1982

21- वैदिक देवता उद्भव और - डा० गया चरण त्रिपाठी, भारतीय विद्या
विकास प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी

22- रूद्रयामल उत्तरतन्त्र धर्म - डा० रमाशंकर मिश्रा, परिमल प्रकाशन, शक्तिनगर
और दर्शन लखनऊ वि० वि, दिल्ली 1989

23- मार्कण्डेय पुराण : एक - आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल, चौखम्बा विद्याभवन, 1960,
अध्ययन प्रथम संस्करण

24- ब्रह्मवैवर्त पुराण :एक अध्ययन - सत्य नारायण त्रिपाठी, गायत्री प्रकाशन, राजा - बाजार बस्ती, 1981, प्रथम संस्करण

25- मन्त्र महोदधि - शुकदेव चतुर्वेदी, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1981, संस्करण प्रथम

26- महाकाल संहिता कामकला खण्ड, भाग 1 गुह्यकाली खं0, भाग 2 - डा0 किशोर नाथ झा, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1977

27- भारतीय वांगमय में श्री राधा - पं0 बल्देव उपाध्याय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-14, 1981, प्रथम संस्करण

28- शक्ति एण्ड शक्ता - सर जॉन वुडरफ, गनेश एण्ड कम्पनी, 1975

29- हिन्दू गॉड्स एण्ड गॉडेसेस - एच0 ए0 रोज, हरदीप एस0 जुनेजा, अमर प्रकाशन, 1986

30- पौराणिक साहित्य में मातृभाव - रामचन्द्र राव, 1989, प्रथम संस्करण

31- भारतीय दर्शन - बल्देव उपाध्याय, चौ0 सं0 सी0, वाराणसी, 1979

32- महाभारत में हिन्दू प्रतिमा विज्ञान के मूल स्रोत - डा0 (श्रीमती) इन्दुमती मिश्रा, अक्षयवट प्रकाशन, इला0 1987

33- पौराणिक धर्म एवं समाज - डा0 सिद्धेश्वर नारायण राय, पंचनन्द प्रकाश, नया कटरा, इला0 1968

34- मार्कण्डेय पु0

35- देवीभागवत पु0 - पं0 राम तेज पाण्डेय, पण्डित पुस्तकालय, काशी, 1956

36- ब्रह्माण्ड पु0 - आ0 जगदीश शास्त्री, मो0 ला0 ब0 दा0

37- महाभारत - डा0 पं0 श्रीपाद दामोदर, स्वाध्याय मण्डल

38- वृहत्स्तोत्ररत्नाकर - जावजी दादाजी , निर्णय सागर प्रेस, 1922

39- शाक्त प्रमोद - प्रो0 खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, स्टीम प्रेस, बम्बई, 1973

40- शाक्त दर्शन - पं0 चन्द्रेश्वर भट्टाचार्य, चौ0 विश्वभारती, वाराणसी, 1971

41- स्तोत्ररत्नावली - गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2049

42- तन्त्रसार - अभिनवगुप्त, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1918

43- तन्त्रालोक - अभिनवगुप्त, जयरथ कृत टीका सहित, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1938

44- शिव महापुराण की दार्शनिक तथा धार्मिक समालोचना - डा0 रमाशंकर त्रिपाठी, प्रका0 एच0 एस0 टी0, अस्सी, वाराणसी, 1976

45- महर्षि दुर्वासा रचित ललितस्तवरत्न, काव्यमाला गुच्छक 10 में प्रकाशित

46- देवीशतक - आनन्दवर्धन, काव्यमाला गुच्छक - 1 में प्रकाशित

47- मूकपंचशती - मूककवि का0 मा0 गु0 5 में प्रकाशित

48- संस्कृत साहित्य का इतिहास - - आ0 बल्देव उपाध्याय, शारदा निकेतन वाराणसी, द0 सं0 , 1978

49- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा0 सूर्यकान्त, ओरिएण्टल लांगमैन लिमिटेड नयी दिल्ली, 1972

50- नैषध परिशीलन - प्रो0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद. प्र0 सं0 , 1960

51- शृंगारपरिशीलन - प्रो0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल हिन्दुस्तान एकेडेमी, इला0 प्र0 सं0 1960

52- सौन्दर्य तत्व - - डा0 दास गुप्त, अनु0 डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इला0, 1969

53- सौन्दर्य का तात्पर्य - रामकीर्ति शुक्ल, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इला0 सं0 1969

54- रस सिद्धान्त के आलोच्य पक्ष - अजन्ता पब्लिकेशन, दिल्ली, 7 प्र0 सं0 1978

55- रस-राज शृंगार - डा0 रामलाल वर्मा, सूर्य प्रका0, नयी सड़क, दिल्ली-7, 1911

56- दुर्गासिप्तशती - चण्डी कार्यालय कल्याण मंदिर, प्रका0, अलोपीबाग, इला0, और गीता प्रेस , गोरखपुर

57- श्रीभगवती मानसपूजा स्तोत्र, श्रीललिता सहस्रनाम, श्रीललिताम्बा, श्रीविद्या - कालीतारा, स्तव-मंजरी इत्यादि फुटकर स्तोत्र चण्डी कार्यालय, इला0

58- पंचदेवता-स्तोत्राणि - सुरेन्द्र नारायण त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रकाशन, बैंग्लो रोड, दिल्ली - 7, प्र0 सं0 1974 ।

59- त्रिपुरभारती लघुस्तव - राजस्थान पुरातत्त मंदिर, जयपुर राजस्थान,.. सन् 1952

60- बाणभट्ट कृत चण्डी शतकम, राज0 रा0 सं0, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1968

61- पण्डितराज जगन्नाथ की कृतियाँ, आर्येन्द्र शर्मा, गंगानाथ झा के० रु० वि० इला०

62- संस्कृत में श्रृंगारी कवियों के उपलब्ध शतक काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन (शोध-प्रबन्ध) दुर्गा प्रसाद

63- कल्याण शक्ति अंक, 1-2 सं0, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर

64- संक्षिप्त-देवीभागवतांक वर्ष 34 सन0 1960, गीता प्रेस, गोरखपुर

65- काव्य प्रकाश, श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, दशम सं0 1991

66- साहित्यदर्पण - विश्वनाथ - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1976

67- दशरूपकम- श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ, पंचम संस्करण, 1983

68- संस्कृत-साहित्य में सरस्वती की कतिपय झाँकिया, ले0 मुहम्मद इसराइल खाँ, क्रीसेण्ट पब्लिशिंग हाउस, गाजियाबाद, पं0 सं0 1985

69- उज्ज्वलनीलमणि - रूपगोस्वामी, काव्यमाला, 95, 1913

70- काव्यमीमांसा - राजशेखर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,पटना, 1965

71-काव्यानुशासन - हेमचन्द्र, आर0 सी0 पारिख, श्रीमहावीर जैन, विद्यालय, बाम्बे, 1956

72- सौन्दर्य लहरी - शंकराचार्य - गणेश एण्ड कम्पनी (मद्रास) प्रा0 लि0 मद्रास-17, 1957

73- संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, 1977

74- हरिवंश पुराण में धर्म - डा0 ओम प्रकाश, 'नीखरा' प्रका0, इस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर, नयी दिल्ली ।

75- रामकथा उत्पत्ति और विकास, फादर कामिल बुल्के, हि0 परि0 प्र0,प्रयाग वि0 वि0 प्र0 सं0 1950

76- मन्त्रमहार्णव - खेमराज - श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

77- महानिर्वाणतन्त्र - श्रीमन्महेश्वर प्रोक्त प्रका0 खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1903 ई0

78- हिन्दू धर्मकोश - डा0 राजबलि पाण्डेय, चौ0 स0 सी0 वाराणसी

79- हिन्दी विश्वकोश - नागेन्द्र नाथ वसु 1-25 भाग, चौ0 स0 सी0,वाराणसी